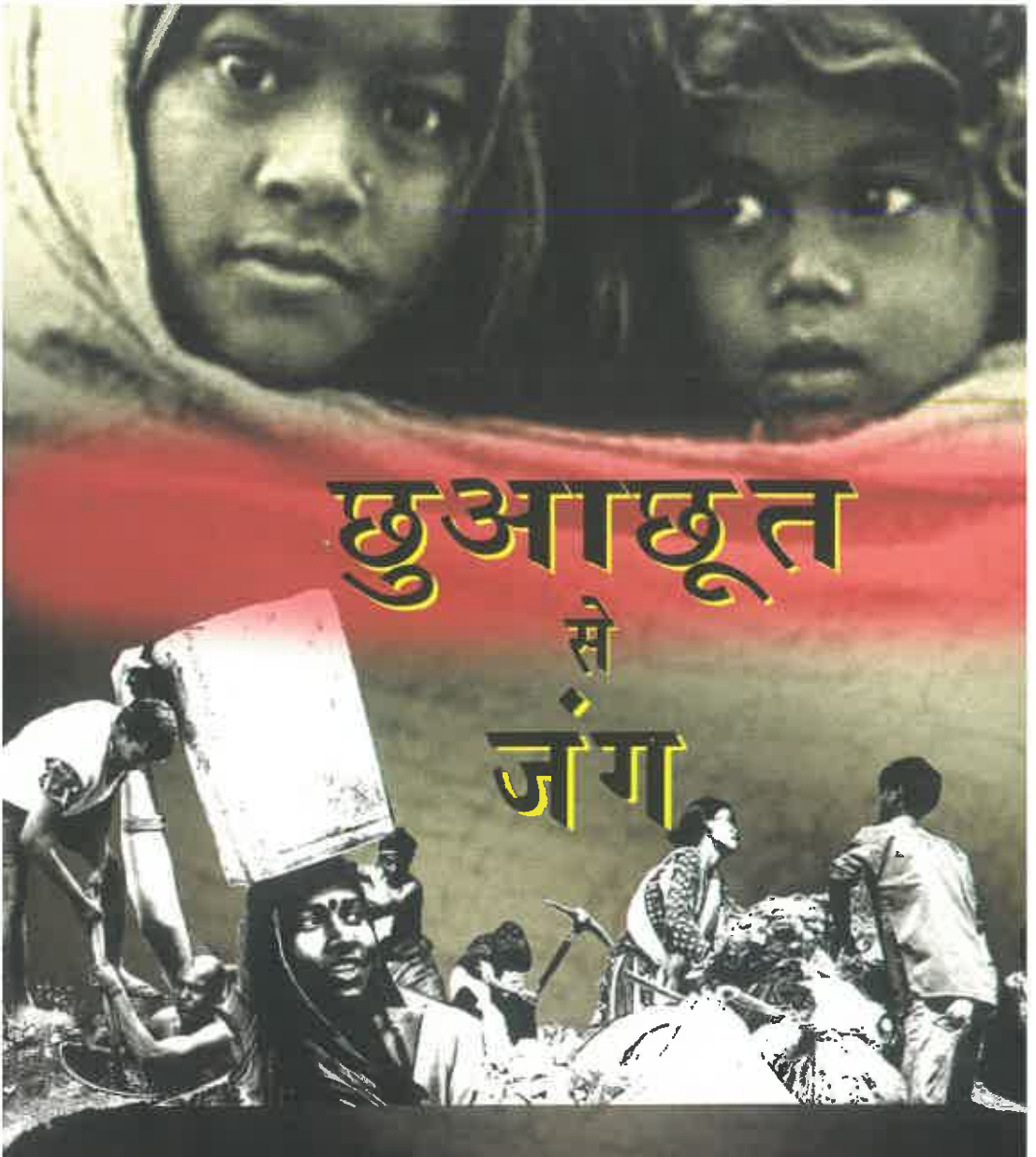

छुआछूत से जंग

ipt
www.iptinda.org

छुआछूत पर भारतीय जन न्यायाधिकरण

सहयोगी संगठन

राष्ट्रीय संगठन

● ऑल इंडिया दलित महिला अधिकार मंच, दिल्ली ● अनहद, दिल्ली ● सेंटर फॉर बजट गवर्नेंस एंड एकाउंटेबिलिटी, दिल्ली ● ईआइडीएचआर – सिविल सोसाइटी इनिशिएटिव ● ह्यूमन राइट्स लॉ नेटवर्क, दिल्ली ● इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ दलित स्टडीज, दिल्ली ● इंडियन सोशल इंस्टीट्यूट, दिल्ली ● नैशनल कैम्पेन ऑन दलित ह्यूमन राइट्स, दिल्ली ● नैशनल कॉन्फेड्रेशन ऑफ दलित ऑर्गेनाइजेशन्स, दिल्ली ● नैशनल दलित फोरम, हैदराबाद ● नैशनल फेडरेशन ऑफ दलित वीमेन, बंगलौर ● पीपुल्स वॉच, मदुरै ● सफाई कर्मचारी आंदोलन, दिल्ली ● सोशल इक्विटी ऑडिट ● साउथ एशियन पीपुल्स इनिशिएटिव, दिल्ली

राज्य संगठन

● आम्बेडकर लोहिया विचार मंच, उड़ीसा ● बिहोवियरल साइंस सेंटर, गुजरात ● सीएडीएएम, दिल्ली ● कम्पेन ऑन ह्यूमन राइट्स, महाराष्ट्र ● सेंटर फॉर दलित राइट्स, राजस्थान ● सेंटर फॉर सोशल जस्टिस, गुजरात ● दलित एक्शन ग्रुप, उत्तर प्रदेश ● दलित बहुजन फ्रंट, आंध्र प्रदेश ● दलित बहुजन श्रमिक यूनियन, आंध्र प्रदेश ● दलित दासता विरोधी आंदोलन, पंजाब ● दलित मन्नुरमै कुटामाइप्पू, तमिलनाडु ● दलित मुक्ति मिशन, बिहार ● दलित मुक्ति मोर्चा, चंडीगढ़ ● दलित स्त्री शक्ति, आंध्र प्रदेश ● डेवलपमेंट इनिशिएटिव्स, उड़ीसा ● डायनेमिक एक्शन ग्रुप, उत्तर प्रदेश ● एविडेंस, तमिलनाडु ● गरिमा अभियान, मध्य प्रदेश ● ह्यूमन राइट्स फोरम फॉर दलित लिबरेशन, तमिलनाडु ● आइईडीएडीएस, केरल ● जोगिनी व्यवस्था व्येतिरेका पोराता संगठन, आंध्र प्रदेश ● कच्च वाहतुक संघर्ष समिति, महाराष्ट्र ● नारी गुंजन, बिहार ● नवसर्जन, गुजरात ● न्यू एन्टिटी फॉर सोशल एक्शन, कर्नाटक ● पीपुल्स विजिलेंस कमिटी ऑन ह्यूमन राइट्स, उत्तर प्रदेश ● साक्षी ह्यूमन राइट्स वॉच, आंध्र प्रदेश ● सोशल वॉच, तमिलनाडु ● सोशल अवेयरनेस सोसाइटी फॉर यूथ, तमिलनाडु ● तमिलनाडु दलित वीमेन मूवमेंट ● त्रुंबूर लिबरेशन मूवमेंट, तमिलनाडु ● विकल्प, उड़ीसा ● वर्किंग पीजेंट्स मूवमेंट, तमिलनाडु ● यूथ फॉर सोशल जस्टिस, महाराष्ट्र

छुआछूत से जंग

छुआछूत पर भारतीय जन न्यायाधिकरण की रिपोर्ट

12–13 मई 2007, नयी दिल्ली

ह्यूमन राइट्स लॉ नेटवर्क (एचआरएलएन) के उद्देश्य

- मूलभूत मानवाधिकारों की सुरक्षा करना, आवश्यक संसाधनों तक वंचित समुदायों की पहुंच बढ़ाना और भेदभाव दूर करना
- ऐसी सदाशय न्याय प्रणाली विकसित करने में योगदान करना जो समाज के कमजोर और वंचित तबकों के लिए सुलभ हो और साथ ही जवाबदेह, पारदर्शी, चुस्त–दुरुस्त और आम जन की आर्थिक पहुंच के भीतर हो
- गरीबों के लिए प्रभावी कानूनी सहायता प्रणाली विकसित करने में योगदान करना
- जनहित में रुचि रखने वाले वकीलों और कानून से किसी न किसी रूप में जुड़ी नयी पीढ़ी के लोगों को उचित प्रशिक्षण देना ताकि सामाजिक आंदोलनों को समझने और जरूरतमंद लोगों, समुदायों को कानूनी सहायता देने के अलावा नयी विधिक संकल्पनाएं और रणनीतियां विकसित करने में दक्षता हासिल हो सके।

छुआछूत से जंग
(Chhuachhoot Se Jung, Hindi title)
आईएसबीएन न. 81–89479–42–3
© सोशियो लीगल इन्फॉरमेशन सेन्टर*
मार्च 2008

अनुवाद : वीना तनेजा
आलेख संपादन : सुरेश नौटियाल
संपादन सहयोग : भुवनचन्द्र खंडूरी, अनुपमा चतुर्वेदी
मुखपृष्ठ डिजाइन : पवित्र तुलाधर
लेआउट : बीरेन्द्र कुमार गुप्ता

प्रकाशक
ह्यूमन राइट्स लॉ नेटवर्क (एचआरएलएन)
576, मस्जिद रोड,
जंगपुरा, नयी दिल्ली–110014, भारत
फोन 91–11–24374501, 24379855
ई–मेल publications@hrln.org

शिवम सुन्दरम, ई–9, ग्रीन पार्क एक्सटेंशन, नयी दिल्ली 110016 द्वारा मुद्रित

इस प्रकाशन में व्यक्त मत या राय आवश्यक रूप से एचआरएलएन के नहीं हैं। हर तरह की कोशिश की गयी है कि गलतियों, विसंगतियों और अपूर्णताओं से बचा जा सके। फिर भी कोई अपरिहार्य त्रुटि या विसंगति रह गई हो तो एचआरएलएन इसकी जिम्मेदारी लेता है।

* इस संकलन के किसी भी हिस्से को सर्वजन हित में उद्धृत किया जा सकता है लेकिन अपेक्षा की जाती है इस प्रकाशन और एचआरएलएन को उचित क्रेडिट के साथ ऐसा किया जाएगा।

आभार

दिल्ली में मई 2007 में दो दिन की जन न्यायाधिकरण सुनवाई का श्रेय सचमुच उन सभी कर्मठ लोगों को जाता है जिन्होंने निर्णायक मंडल के सामने अपने कष्ट, पीड़ा, उत्पीड़न तथा अपने प्रति हिंसा और भेदभाव के वे वृतांत सुनाये जो उन्हें दलित होने के कारण भुगतना पड़े उनके संगठनों का जिक्र इस प्रकाशन में है और हम उनके प्रति विशेष धन्यवाद अर्पित करते हैं। सुनवाई में आए सभी लोगों ने बड़े साहस का काम किया, पहली बार उन्होंने सदियों की घेराबंदी से निकल कर अपनी खामोशी तोड़ी। राष्ट्रीय दलित मानव अधिकार अभियान – एनसीडीएचआर ने न्यायाधिकरण के सामने आपबीती सुनाने वालों की इस कार्य में सहायता की। इस संगठन के कार्यकर्ताओं और पदाधिकारियों ने सुनवाई के दौरान और रिपोर्ट तैयार करने में भी योगदान दिया। अन्य सहयोगी जो विशेष आभार के पात्र हैं उनमें युहो सिल्तानेन, सुबीर डे, अर्जुन नटराजन और जसमीन मान शामिल हैं जिन्होंने आईपीटी की कार्रवाई, बयानों और गवाहियों को लिखने और अनुवाद करने में खूब मेहनत की। ये सभी दुनिया के विभिन्न विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी हैं और एचआरएलएन में प्रशिक्षण के लिए आए हैं। एचआरएलएन के दलित राइट्स इनिशिएटिव में कार्यरत एलिजाबेथ अब्राहम, राहुल काम्बले और सुरेखा राहल के समर्थन और दिशा–निर्देश से यह कार्य आसान हुआ। रिपोर्ट के प्रकाशन से जुड़े सभी लोगों के प्रति आभार व्यक्त करना शायद संभव भी नहीं है पर हम उन सभी लोगों और संगठनों को धन्यवाद देते हैं जिन्होंने अस्पृश्यता पर आईपीटी के आयोजन और रिपोर्ट के प्रकाशन में मदद दी। अंत में हम स्पष्ट करना चाहते हैं कि मूल रूप से अंग्रेजी में लिखी गयी यह रिपोर्ट हालांकि सभी के योगदान का परिणाम है फिर भी यदि इसमें कोई गलती या कमी होगी तो उसके लिए केवल हम जिम्मेदार हैं।

दलित राइट्स इनिशिएटिव
ह्यूमन राइट्स लॉ नेटवर्क, इंडिया
मार्च 2008

निर्णायक मंडल के सदस्यों की सूची

- **जस्टिस के. रामास्वामी**
  भारत के उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश, एनएचआरसी के पूर्व सदस्य
- **जस्टिस एच. सुरेश**
  मुम्बई उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश
- **डा. एस. बालारामन**
  पूर्व अध्यक्ष, केरल राज्य आयोग
- **डॉ. ए. रमैया**
  प्रोफेसर, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज
- **स्वामी अग्निवेश**
  संयोजक, बंधुआ मुक्ति मोर्चा
- **डॉ. माजा दारूवाला**
  निदेशक, कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव
- **श्री के.बी. सक्सेना**
  पूर्व वरिष्ठ आइएएस अधिकारी
- **श्री हर्ष मंदर**
  पूर्व आइएएस तथा संस्थापक निदेशक, अमन बिरादरी
- **प्रो. नन्दू राम**
  प्रोफेसर समाजशास्त्र, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय
- **श्री संदीप पांडे**
  निदेशक, आशा

प्रस्तावना

"विसंगतिपूर्ण इस जीवन को हम कब तक झेल सकते हैं? हम कब तक अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में समानता को नकारते रहेंगे? यदि हम लम्बे समय तक इसे नकारते रहे तो अपने राजनीतिक लोकतंत्र को खतरे में रख कर ही ऐसा कर सकेंगे। हमें इस अंतर्विरोध को जल्द से जल्द खत्म करना होगा अन्यथा असमानता के शिकार लोग इस लोकतंत्र के ढांचे को नेस्तनाबूत कर देंगे जिसे इस संविधान सभा ने बड़ी मेहनत से बनाया है।" **-डॉ. बाबा साहेब भीमराव आम्बेडकर**

जातिवादी व्यवस्था दलित समुदायों को निम्न और गर्हित स्थिति में बनाए रखने का आकर्षण बनी हुई है। इससे वे सामाजिक अलगाव, आर्थिक शोषण और राजनीतिक पिछड़ेपन के शिकार हो जाते हैं। मंदिरों में प्रवेश पर रोक, जल स्रोतों को लेकर भेदभाव, निम्नस्तरीय काम करने को मजबूर करना। शौचालय की सफाई, देवदासी प्रथा जैसी पुरानी प्रथाएं आज भी परम्परा के रूप में जानबूझकर कायम रखी गयी हैं। ये प्रथाएं निर्बाध चल रही हैं। अलगाव और अस्पृश्यता हमारी संस्कृति में रच–बस गए हैं। दलितों के साथ इरादतन भेदभाव किया जाता है और उन्हें नई एवं उभर रही सुविधाओं, संसाधनों और अवसरों से वंचित रखा जाता है। दलितों की सम्मानजनक पेशों में जाने की कोशिश में विधायी और प्रक्रिया संबंधी बाधाएं उत्पन्न होती हैं और इसकी हिंसक प्रतिक्रिया भी होती है।

भेदभाव, अस्पृश्यता और अत्याचार जाति आधारित मानवाधिकार उल्लंघन हैं जो एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं और अत्याचार का स्वरूप ज्यादा हिंसक और स्पष्ट करते हैं। इस जन न्यायाधिकरण में 12–13 मई 2007 को पेश किए गए मामलों से पता चलता है कि ये बुराइयां दलितों के लिए लगातार खतरा बनी हुई हैं। दलित समुदायों और खासतौर पर दलित महिलाओं को अशुद्ध माना जाता है और यदि वे गरिमा और समान अवसर की मांग करते हैं तो उन्हें हिंसा का शिकार होना पड़ता है।

इस जन न्यायाधिकरण ने देशभर से आये 60 दलितों को अस्पृश्यता और जातिवादी हिंसा की जानकारी सरकार और समाज को उपलब्ध कराने का मौका दिया। न्यायाधिकरण में दलित महिलाओं की जटिल परेशानियों और दलित बच्चों की स्थिति का भी पता चला। यह न्यायाधिकरण

उन 56 संगठनों का संयुक्त प्रयास है जो पिछले 20 वर्ष से लगातार दलितों को नागरिक, राजनीतिक और विकास संबंधी अधिकार दिलाने में मदद दे रहे हैं।

दलित समुदायों की मांग है कि अस्पृश्यता और जाति आधारित भेदभाव समाप्त किया जाए तथा सरकार एवं दलितों तथा दलितों एवं गैर–दलितों के बीच अच्छे संबंध, आज़ादी, और बाधारहित विकास का आधार न्याय, समानता, स्वतंत्रता और भाईचारा होना चाहिए, जिनका संविधान में भरोसा दिलाया गया है। अस्पृश्यता और हिंसा को जारी रखने के पीछे जाति व्यवस्था के जो दो प्रमुख आधार हैं वे हैं – दलितों के लिए अलग बस्ती और जमीन पर उनका मालिकाना हक न होना। दलितों के अलग आवास से अस्पृश्यता और कलुषता, भेदभाव, भेदभावपूर्ण सेवाओं, सूचना से वंचित करने और हमलों की आशंका की मानसिकता को बढ़ावा मिलता है।

जातिगत आधार पर भूमि का वितरण और भूमि के मालिकाना अधिकार से दलितों को वंचित रखना जाति आधारित हिंसा की जड़ हैं। अंग्रेजी शासन काल और आजादी के बाद के दलितों को भूमि के बंटवारे के कई फैसलों के बावजूद भूपतियों के आर्थिक और सामाजिक हितों तथा निर्णय लेने वालों की लापरवाही और बेरुखी के कारण अब भी 60 से अधिक प्रतिशत दलित भूमिहीन हैं या उनके पास 0.4 हेक्टेयर से कम जमीन है।

इन प्रथाओं को समाज के बड़े हिस्से ने स्वीकार कर लिया है और इसे अपना लिया है। इससे वह संस्कृति पैदा हुई है जिसने ज्यादती करने वालों को माफी और निर्णय लेने वालों को जिम्मेदारी से मुक्त मान लिया है। चाहे वे पुलिसकर्मी हों, प्रशासन या राजनीतिक दल हों। दलितों के खिलाफ अस्पृश्यता और हिंसा बदस्तूर जारी है। जाति प्रथा में आस्था में कोई कमी नहीं आ रही है क्योंकि भेदभाव और हिंसा का सिलसिला जारी है। कई मामलों में ज्यादती करने वालों को माफ कर दिया जाता है तथा कानून लागू करने और सुरक्षा देने वालों के कार्य के प्रति अनदेखी और कोताही बरती जाती है। छुआछूत और हिंसा के मामलों से निपटने वाले अधिकारियों की मिलीभगत और मौन सहमति भी गहरी चिंता का विषय हैं। राजनीतिक और नागरिक प्रशासन प्रणालियां दोनों यह सुनिश्चित करने में नाकाम रही हैं कि सम्बद्ध अधिकारी बिना पूर्वाग्रह के नियमों और प्रक्रियाओं का पालन करें। प्रभावशाली वर्गों और सरकार की मिलीभगत या जबरन जारी अन्यायपूर्ण प्रणाली हमारे देश में समतावादी और लोकतांत्रिक समाज के विकास में बाधा है।

दलित महिलाएं और बच्चे कई तरीके से असहाय समझे जाते हैं और जाति प्रथा के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष शिकार हो जाते हैं। दलित महिलाओं के साथ यौन हिंसा के जरिए इस समुदाय को आदेश या परम्परा को मानने के लिए मजबूर किया जाता है। दलित बच्चों के साथ भेदभाव या हिंसा की अलग से पर्याप्त छानबीन नहीं की गई है। हाल के कुछ अध्ययनों से इस पर प्रकाश डाला जा रहा है।

दलितों ने सदियों से अन्यायपूर्ण प्रथा को बर्दाश्त किया है और आज संघर्ष का नारा है – "और नहीं बस और नहीं" अर्थात हम इस अमानवीय प्रथा को और सहन करने को बिल्कुल तैयार नहीं है। न्यायाधिकरण का उद्देश्य दलित समुदाय के साथ हो रहे भेदभाव और हिंसा को उजागर करना ही नहीं अपितु यह आह्वान करना भी है कि सभ्य समाज और प्रशासन इसे समाप्त करें। यह हमारी प्रबल कामना और मांग है कि हम सब मिलकर जाति आधारित भेदभाव और खामियों को मिटा दें तथा अपने समाज और शासन व्यवस्था में समतावादी, न्यायपूर्ण और लोकतांत्रिक मूल्य फिर से स्थापित करने के प्रयास करें।

एन पॉल दिवाकर	डॉ. विमल थोरात	विंसेंट मनोहरन
संयोजक	सहयोगी संयोजक	महासचिव

राष्ट्रीय दलित मानवाधिकार अभियान
(एनसीडीएचआर)

विषय सूची

	आभार	iii
	निर्णायक मंडल के सदस्यों की सूची	iv
	प्रस्तावना	v
अध्याय 1:	दलित : जातिवाद के कड़े शिकंजे में	1
	जाति और समाज	4
अध्याय 2:	अस्पृश्यता पर भारतीय जन न्यायाधिकरण	25
	(i) स्वागत भाषण	28
	(ii) जमीन और साझा प्राकृतिक संसाधनों से वंचित	29
	(iii) आवास संबंधी भेदभाव	42
	(iv) शिक्षा संस्थाओं और कार्य–स्थल पर भेदभाव	47
	(v) जबरन मजदूरी कराना और भेदभाव	57
	(vi) धार्मिक मामलों और सामाजिक संबंधों में भेदभाव	67
	(vii) पंचायतों में राजनीतिक अधिकारों से वंचित	75
	(viii) सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों में भेदभाव	81
	(ix) साझा सेवाओं से वंचित	87
	(x) यौन उत्पीड़न और मारपीट	92
	(xi) आपराधिक न्याय प्रणाली एवं न्यायपालिका में अस्पृश्यता	105
	(xii) भेदभाव की अन्य प्रथाएं और हिंसा	112
	(xiii) निर्णायक मंडल के सदस्यों की राय/टिप्पणी और भाषण	123
अध्याय 3:	अस्पृश्यता पर निर्णायक मंडल के सदस्यों की प्रारंभिक टिप्पणियां और सिफारिशें	131
	(i) अस्पृश्यता का स्वरूप	131
	(ii) अस्पृश्यता और संबंधित हिंसा	134
	(iii) समग्र सिफारिशें	135
	(iv) अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम, 1989 को लागू करने के संबंध में विशिष्ट सिफारिशें	138

1 दलित : जातिवाद के कड़े शिकंजे में

दलितों का स्थान भारतीय समाज में सबसे नीचा माना जाता है। उन्हें अपनी आकांक्षाओं को सीमित करना पड़ता है और निचले स्तर के काम करने पड़ते हैं। उनका स्तर निम्न सुनिश्चित रखने के लिए उनसे भेदभावपूर्ण और दंडात्मक बर्ताव किया जाता है जो कानून की दृष्टि में सही नहीं है परंतु समाज ने कुल मिलाकर ऐसे बर्ताव को मान्यता दे रखी है। दलितों पर असंख्य अत्याचारों से संबंधित कई मामले देश की विभिन्न अदालतों में लम्बित हैं। सरकारी अधिकारियों की बेरुखी के कारण बहुत कम मामले ही दर्ज हो पाते हैं। ऐसे में समाज के ईमानदार, सही दृष्टिकोण वाले, स्वतंत्रता और न्याय के प्रति समर्पित वर्ग द्वारा दलितों के प्रति सही और निष्पक्ष रवैया अपनाये जाने की आवश्यकता महसूस की जा रही है। एक अरब से अधिक लोगों को प्रभावित करने वाले सामाजिक, राजनीतिक, कानूनी और नैतिक बंधनों को तोड़ने के लिए कोई खास ठोस प्रयास नहीं किया गया है। इससे सामाजिक प्रगति में बाधा उत्पन्न होती है, क्योंकि दलित वर्ग के अंतर्गत अत्यंत धैर्यशील और मेहनती लोगों को विकासशील समाज में अपना वास्तविक योगदान देने से वंचित रखा जाता है। ऐसे व्यापक भेदभाव को समाप्त करने के लिए इस प्रवृत्ति को छोड़ना होगा। इससे न केवल दलितों को बल्कि समस्त भारतीय जनता को नुकसान हो रहा है। इसी व्यथा को महसूस करते हुए कुछ संगठनों और व्यक्तियों ने मिल कर उन दलितों के लिए जन सुनवाई आयोजित की जिन्हें अपने निकट संबंधियों की जान, घर, गरिमा और सम्मान का नुकसान सहना पड़ा है। उनके साथ ऐसा व्यवहार अपवाद के तौर पर नहीं अपितु लगभग परम्परा और स्थापित नियमों के अनुरूप किया गया या किया जाता है। पुरातन काल से अब तक जारी जातिवादी व्यवस्था के कारण बंटे हुए समाज के दबाव से मुक्त हो कर दलितों ने उन पर किए जा रहे अत्याचारों, जातिवादी व्यवस्था के कुचक्र और ज्यादतियों की आपबीती सुनाई और बताया कि इससे किस प्रकार उनकी प्रगति और विकास की गति रुकी है। उन्होंने बताया कि किस प्रकार संविधान और कानून के घोर उल्लंघन के बावजूद अधिकारी और पुलिस हरकत में नहीं आई। यह भी बताया कि किस प्रकार प्रभावशाली लोगों की मिलीभगत

ने दलितों की दशा में सुधार लाने की सरकारी योजनाओं के लाभ से उन्हें वंचित रखा। दलितों के खिलाफ जारी अमानवीय प्रवृत्ति ने निर्णायक मंडल के सदस्यों तथा सुनवाई के दौरान मौजूद लोगों को झकझोर दिया।

इस पुस्तक में, दिल्ली में जबर्दस्त गर्मी के दो दिनों के दौरान हुई जनसुनवाई (आईपीटी) का विवरण देने का प्रयास किया गया है। पुस्तक में वस्तुतः दलित प्रसंग को प्रस्तुत किया गया है जो सदियों से समाज में कायम है। न्यायाधिकरण के सम्मिलित प्रयास से साधनहीन लोगों ने निर्भयता से सत्य उजागर कर बड़ा काम किया है। आईपीटी ने अत्याचारों के गंभीर वृत्तांत को सही रूप में दर्ज करने की कोशिश की है मगर इस दस्तावेज को पूरी तरह त्रुटिहीन नहीं माना जा सकता। सुनवाई के दौरान सामने आये अकल्पनीय वृत्तांत को भाषा की सीमाओं के कारण शायद पूरी तरह से इस पुस्तक में उजागर न किया जा सका हो, लेकिन दलितों को जिन कष्टों और ज्यादतियों का सामना करना पड़ता है उनकी सुनवाई के लिए ऐसी और जनसुनवाइयों का आयोजन किया जाना जरूरी है ताकि लोगों को झकझोरा जा सके।

भारत के दलितों को अपने निम्न, घृणित और कलुषित दर्जे के कारण अत्यधिक भेदभाव और बदनामी का सामना करना पड़ता है। दलितों पर अत्याचार में – गालियों से लेकर बलात्कार, मानव मल–मूत्र का जबरन सेवन, पीने के पानी, सड़कों, बस स्टॉप, बाजार और मंदिर जैसी सार्वजनिक सुविधाओं और संसाधनों तक पहुंच न होना, नागरिक अधिकारों से वंचित रखना और शारीरिक कष्ट से लेकर सामाजिक बहिष्कार तक के अत्याचार शामिल हैं। किसी विशेष जाति के दलितों के लिए 'निर्धारित' काम करने से उनके इंकार का मतलब हिंसा को बुलावा देना है।

दलित समुदाय बहुनस्लीय और बहु–सांस्कृतिक है। ये लोग हालांकि अपने आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक निर्वासन के कारण एक ही तरह से प्रताड़ित हैं तथा वे सदियों से समाज की मुख्यधारा से अलग हैं। व्यापक रूप से प्रचलित अस्पृश्यता की प्रथा, भारत में अधिकतर लोगों के दिलो दिमाग में किसी न किसी रूप में समाई हुई है। इस प्रथा की सार्वजनिक तौर पर हालांकि निंदा की जाती है। इतना ही नहीं सभी पाठ्यपुस्तकों और साहित्य में जातिवादी व्यवस्था को बीते दिनों की बात बताया जाता है। किसी साहित्य में हालांकि यह दावा नहीं किया जाता कि किसी भी स्तर पर अस्पृश्यता मौजूद नहीं है लेकिन परोक्ष रूप से यह संकेत दिया जाता है कि आधुनिक भारत में इसके लिए कोई स्थान नहीं है। वास्तविकता मगर इससे काफी अलग है। संविधान के अनुच्छेद–16 के अंतर्गत 1950 में अस्पृश्यता समाप्त किए जाने के बावजूद कई प्रकार की दमनकारी नीतियां भारत में मौजूद हैं। भारत के अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में जातिवादी प्रथायें खुले रूप से चलन में हैं, जबकि शहरी क्षेत्रों में शोषण अधिक व्यवस्थित रूप में किया जाता है। दलितों की रोजमर्रा की सेवाओं तक पहुंच में भेदभाव, शिक्षा में भेदभाव, अलगाव की व्यापक भावना, धर्मपालन में भेदभाव, न्यायिक प्रणाली तक पहुंच तथा न्याय प्राप्त करने में भेदभाव और सिर पर मैला ढोने के अपमानजनक काम जैसी अनेक असमानताओं का सामना करना पड़ता है।

अस्पृश्यता के विचार का स्रोत और उसके पीछे का तर्क हिन्दू समाज की जातिवादी व्यवस्था में मौजूद है। जाति के आधार पर सामाजिक संबंधों, विवाह, खान–पान और रोजगार के चुनाव पर नियंत्रण और प्रतिबंध किया जाता है। दरअसल संक्षेप में यह सामाजिक नियंत्रण का संस्थागत तरीका है जो कुल मिला कर किसी न किसी तरह अधिकतर भारतीयों की सामाजिक वास्तविकता निर्धारित करता है। समकालीन भारत में अस्पृश्यता के उद्गम, विकास और उसके जारी रखे जाने के तरीकों पर जोरदार बहस जारी है और इसे राजनीतिक रंग भी दिया जाता है। दलित लोगों को, खास तौर पर ग्रामीण भारत में, अब भी दमनकारी जातिवादी नियमों से नियंत्रित किया जाता है। गांवों में जारी इस तरह की प्रथा लाखों लोगों को प्रभावित करती है। जातिवादी नियमों के उल्लंघन, जैसे कि जाति आधारित पेशे का काम करने से इंकार और अंतर्जातीय विवाह, के लिए सार्वजनिक तौर पर पीट–पीट कर मारने या कड़ी सजा का दंड दिया जाता है। अक्सर पंचायतें ऐसा दंड खुलेआम देती हैं। किसी भी तरह से जातिवादी व्यवस्था को चुनौती का संकेत देने वाली घटनाओं को यथास्थिति के लिए बड़ा खतरा माना जाता है। विवाह के जरिए विभिन्न जातियों के मिलन को अगर स्वीकार किया जाए तो इससे जाति व्यवस्था का मूल आधार डगमगाने में खूब मदद मिले। पर, इस व्यवस्था का कोई भी उल्लंघन होता है तो अक्सर उसका जवाब किसी न किसी प्रकार की हिंसा से दिया जाता हैं। यह हिंसा अक्सर साम्प्रदायिक स्वरूप ले लेती है और समुदाय या उसका महत्वपूर्ण भाग न्याय प्रणली को दरकिनार करके अलग से सजा देने लगता है। किसी एक दलित या इस समुदाय के कुछ लोगों को बलि का बकरा बनाकर असल में समूचे समुदाय को चेतावनी दी जाती है। आमतौर पर महिलाएं ऐसे दंड की शिकार होती हैं। यह अलग बात है कि महिला का उस घटना में कोई हाथ हो या न हो। उच्च जाति के लोगों द्वारा अपने को प्रभावशाली साबित करने और दलितों को अपने अधीन दिखाने के प्रयास में अक्सर दलित महिलाओं का अंधाधुंध यौन शोषण होता है।

दिल्ली में 12 और 13 मई 2007 को 56 मानवाधिकार संगठनों द्वारा आयोजित, अस्पृश्यता पर जन न्यायाधिकरण की इस रिपोर्ट में दलित लोगों के सामाजिक–आर्थिक हालात को संक्षेप में उजागर किया गया है। इसमें अस्पृश्यता की मौजूदा स्थिति, इसके स्वरूप और अभिव्यक्ति तथा सबसे महत्वपूर्ण सुनवाई में शामिल लगभग 70 दलितों की आपबीती शामिल है, जिसमें दलितों पर थोपी जा रही शारीरिक, मानसिक और संगठित हिंसा को उजागर किया गया है। सुनवाई के पूर्ण सत्र में पीड़ितों, मृतकों के आश्रितों और रिश्तेदारों के बयानों से ग्रामीण और दलितों की व्यथापूर्ण स्थिति का पता चलता है। इस पुस्तक के मुख्य अंश के रूप में शामिल ये बयान न केवल दलितों के अधिकार सुनिश्चित कराने में उठाए गए अपर्याप्त कदमों अपितु मूल अधिकारों के घोर और स्वच्छंद उल्लंघन की ओर संकेत करते हैं। निर्णायक मंडल के सदस्यों ने इन बयानों पर आधारित प्रारम्भिक निष्कर्षों और सिफारिशों को तैयार किया, ताकि इसे न्यायाधिकरण के निष्कर्ष के बाद अस्पृश्यता उन्मूलन के राष्ट्रीय आह्वान के रूप में भारत के राष्ट्रपति को पेश किया जा सके। इसमें

कहा गया है हमारी (निर्णायक मंडल, पीड़ित और हादसों से बचे लोग तथा एकजुटता जाहिर करने वाले व्यक्ति) की मांग है कि देश यह स्वीकार करे कि जाति प्रथा और छुआछूत विभिन्न रूपों में अब भी मौजूद हैं जिसके कारण 16 करोड़ दलितों को मूलभूत नागरिक अधिकारों से वंचित रहना पड़ता है"। (अनुलग्नक–ए)

जाति और समाज

"भारतीय आज दो अलग विचारधाराओं से शासित हैं। संविधान की प्रस्तावना में निर्धारित राजनीतिक आदर्श उन्हें स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के जीवन पर जोर देता है, जबकि उनके धर्म में समाहित सामाजिक आदर्श उन्हें इनसे वंचित रखते हैं।"[1]

भारत में आजादी के बाद से ही यथार्थ के दो स्वरूपों में लगातार टकराव रहा है, जो विश्व स्तर पर बारी–बारी से सुर्खियों में रहे हैं। पहला, तेजी से आधुनिक बन रहे भारतीय लोकतंत्र की छवि से संबंधित सुर्खियां हैं जिनके अनुसार भारत ने अपनी अनूठी सांस्कृतिक विरासत को बरकरार रखते हुए आधुनिकता के लाभ उठाए हैं। दूसरा, सुर्खियों में भारत की भूख और दमनकारी नीतियों की छवि दिखाई देती है। पिछले दशक में इन दोनों छवियों के बीच टकराव बढ़ा है और इसका दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम है कि अमीर शहरी भारत की प्रतिष्ठा बढ़ी है जो कि सदियों से जाति प्रथा और भूख से प्रभावित शेष भारत को अलग–थलग रख कर बनी है। मीडिया तथा प्रशासनिक और न्यायिक व्यवस्था भूख और अन्याय वाले भारत की अनदेखी कर रहे हैं। कथित अछूतों, धार्मिक अल्पसंख्यकों और अन्य गरीबों के साथ बार–बार अन्याय की घटनाओं से राष्ट्र शर्मसार और विचलित हुआ है परंतु ये खबरें धीरे–धीरे राष्ट्रीय समाचारपत्रों के भीतर के पृष्ठों में गुम हो गयीं" या जांच के लिए गठित कछुआ चाल समितियों के कामकाज में विलीन हो गयीं। शेष भारत का मतलब है– जातिप्रथा का चलन और इससे जुड़े अत्याचार। इन दो पक्षों के बीच वास्तविक सम्पर्क की अनदेखी की गई है। ऐसा कब तक होता रहेगा? यह विरोधाभास क्यों बना हुआ है?

सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न आसान भी लगता है: अन्याय उन्मूलन की संवैधानिक गारंटी के लगभग छह दशक के बाद भी दलितों की दयनीय स्थिति की व्यापक समस्या क्यों बनी हुई है? अस्पृश्यता प्रथा को 1950 में समाप्त कर दिया गया था तथा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को सरकारी नौकरियों में आरक्षण भी दिया गया था। नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम ने 1955 में अस्पृश्यता प्रथा के चलन और प्रचार को दंडनीय बना दिया था। 1989 में अत्याचार निरोधक अधिनियम लागू किया गया। इतना ही नहीं 1991 में मंडल आयोग ने पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए केन्द्र की सरकारी नौकरियों में आरक्षण प्रदान किया। इन सब अधिनियमों के बावजूद, आंकड़ों से पता चलता है कि इन्हें लागू करने के लिए पर्याप्त रूप से गंभीर उपाय नहीं किए गए।

---

1 डॉ. भीमराव आम्बेडकर का 3.10.1954 का आकाशवाणी पर दिया गया भाषण। यूआरएल संदर्भ 19.07.07 http://www.ahrchk.net/pub/mainfile.php/demo_and_hope/96

जाति प्रथा और इससे जुड़े अत्याचारों ने कभी भी भारत का पूरी तरह पीछा नहीं छोड़ा। भारत में प्रमुख राजनीतिक घटनाओं की पृष्ठभूमि में ये बने रहते हैं। हाल में ऐसा कई बार हुआ, क्योंकि राजनीतिक मुख्यधारा और सामाजिक क्षेत्र में दलितों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री मायावती का उदाहरण इसके लिए पर्याप्त है। इस राज्य में देश की 15 प्रतिशत जनसंख्या रहती है जिसमें उच्च जातियों की संख्या और अन्य राज्यों की तुलना में अधिक है। उच्च शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण के मुद्दे पर भी राष्ट्रव्यापी राय के ध्रुवीकरण के पीछे भी यही आग्रह था। देश भर में सामाजिक न्याय के पक्ष और विपक्ष में लगभग हर शहर में प्रदर्शन हुए और तो और हरेक नुक्कड़ और चाय की मेज पर भी गर्मागर्म बहस हुई। दोनों पक्षों के पास कई दलीलें हैं लेकिन आजादी के पचास वर्ष बाद भी संविधान में प्रदत्त आरक्षण के अधिकार के सार्थक नतीजे नहीं मिले हैं, क्योंकि सरकार इस दिशा में पूर्ण लक्ष्य हासिल करने के लिए निर्धारित शर्तें पूरा करने में विफल रही है। व्यापार के अंतर्राष्ट्रीय आकर्षक केन्द्र और आर्थिक विकास की बेहतर दर के बीच विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों के आंकड़े सामाजिक असमानता और मौलिक मानवाधिकारों के लगातार उल्लंघन की ओर चिंताजनक संकेत करते हैं। यहां अस्पृश्यता का केवल मूल परिचय शामिल किया गया है। जाति और छूआछूत की कई बारीकियों को इसमें शामिल नहीं किया गया है, जैसे कि जाति प्रथा को मजबूत बनाने में औपनिवेशिक प्रक्रिया की भूमिका।[2]

अस्पृश्यता के मूल उद्गम की सही जानकारी नहीं है, लेकिन यह निश्चित है कि इसका संबंध जाति की अवधारणा से है। अस्पृश्यता पर किसी सार्थक चर्चा को जाति प्रथा के व्यापक ढांचे पर आधारित रखा जाना चाहिए। जाति के उद्गम की सही जानकारी के बारे में भी हालांकि यही कहा जा सकता है, लेकिन इस बारे में कुछ सहमति है। हिन्दू धर्म के प्राचीन धार्मिक ग्रंथों यथा वेदों की कथाओं में सामाजिक स्तर की इस प्रथा के लिखित प्रमाण मिलते हैं। भारतीय और दक्षिण एशियाई संस्कृति में धार्मिक प्रवचन के जरिए सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने की परम्परा रही है। विशेष वर्ग के लोगों को उपेक्षित स्थिति में लाने और इसी मान्यता के अन्य प्रभावशाली लोगों द्वारा इसे उचित ठहराने के उदाहरण हर प्रकार के संगठित धर्म से मिलते हैं। भले ही लिंग आधारित अल्पसंख्यकों या मठाधीशों द्वारा दिए गए विशेष अधिकारों का मामला हो, इस बारे में हिन्दू धर्म अनूठा नहीं है। समकालीन भारत में इस प्रथा के आम प्रचलन के काफी उदाहरण मिलते हैं। 'निम्न जाति' के लाखों भारतीय, जिन्हें सिद्धांत रूप से व्यापक संवैधानिक अधिकार प्राप्त हैं, नागरिक, सांस्कृतिक और आर्थिक न्यूनतम अधिकार प्राप्त करने के लिए हर रोज संघर्ष करते हैं, क्योंकि ये अधिकार ऐसे सामाजिक ढांचे में सीमित हैं जो ऊपर से नीचे तक असमान व्यवहार की व्यवस्था पर आधारित हैं। इस व्यवस्था में सबसे नीचे लगभग 16 करोड़ दलित लोग हैं। इस शब्द का अर्थ है दमित, दबे हुए, कुचले हुए। दलित शब्द को अब सभी 'अछूत' लोगों ने अपना उपेक्षित स्तर जाहिर करने के लिए स्वीकार कर लिया है लेकिन इससे दलितों की भाषाई, नस्लीय

2 इस विषय पर कई खंडों में चर्चा की गई है। उदाहरणार्थ देखे डर्क्स 2001

और सांस्कृतिक बहुलता की अनदेखी हो रही है। समाजशास्त्रीय शोध में इसकी अधिक परिष्कृत परिभाषा की आवश्यकता है, लेकिन इस पुस्तक के संदर्भ में यह परिभाषा पर्याप्त है भले ही यह पूरी तरह पूर्ण नहीं है। ह्यूमन राइट्स वॉच की रिपोर्ट 'हिडन अपार्थाइड : कास्ट डिस्क्रिमनेशन अगेस्ट इंडियाज अनटचेबल्स' – में भारतीय जनसंख्या के इस भाग के लिए दी गई व्यावहारिक परिभाषा के अनुसार कुछ जातियों में जन्म के आधार पर व्यक्तियों पर सामाजिक प्रतिबंध लगाया जाता है।[3] यह सोचना शायद अच्छा लगता है कि 'निचली जाति' के लोग लगातार परेशानियों का सामना करने के कारण समतावादी और एकजुट होंगे, लेकिन यह सोचना गलत होगा, क्योंकि दलित तकनीकी रूप से जाति प्रथा यानी वर्ण से बाहर या वाह्य हैं – इस पर बाद में चर्चा की जा सकती है, लेकिन वे कई उप–जातियों में विभाजित हैं और इनमें से कुछ उप–जातियों की अन्य उप–जातियों की अपेक्षा अधिक प्रतिष्ठा है। अतः सत्ता के लिए सामाजिक व्यवस्था का हथकंडा अपनाने वाले सक्रिय हैं और वे दलितों के बीच उप–जातियां बना रहे हैं।

जैसा कि पहले बताया गया है धार्मिक ग्रंथ वेद जैसे कि ऋगवेद में पुरातन काल की सामाजिक व्यवस्था का उल्लेख है और इसमें जातियों के वर्गीकरण के लिए धार्मिक तर्क दिया गया है। यह नहीं माना जा सकता कि हिन्दू धर्म अकेले जाति प्रथा की शुरुआत के लिए जिम्मेदार है। सदियों पुराना यह धर्म नई विचारधाराओं, दार्शनिक अवधारणाओं, अनेक सामाजिक आंदोलनों और विदेशी आक्रमणों के बीच सभी प्रकार के प्रभाव को आत्मसात करता रहा है और यह इस धर्म की उदारता और दूसरों को बर्दाश्त करने की प्रवृत्ति का सबूत है। यह संस्कृति और धर्म में गतिशील परिवर्तन से संभव हुआ है। भारतीय संदर्भ में धर्म से संस्कृति को अलग करना व्यर्थ प्रयास है। हिन्दू धर्म ने अपने धार्मिक–सांस्कृतिक स्वरूप से भारतीय उप–महाद्वीप का इतिहास रचने में जो महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है वह सचमुच निर्विवादित है। इसलिए अगर यह कहा जाए कि जातियां हिन्दू धर्म की देन हैं तो इस तथ्य को उपरोक्त संदर्भ में समझा जाना चाहिए। और अगर यह कहा जाए कि जाति प्रथा हिन्दू धर्म का अभिन्न अंग है तो यह हिन्दू धर्म की आसान परिभाषा होगी। हिन्दूवाद की धर्म के रूप में परिभाषा देना अनावश्यक और साथ ही असंभव होगा, क्योंकि इसमें बेहद लचीलापन है और इसका वर्गीकरण नहीं किया जा सकता है। इस पुस्तक के परिप्रेक्ष्य यह एक ऐसी धार्मिक–सामाजिक–राजनीतिक अस्तित्व वाली चीज है जो भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। जाति प्रथा के मूल उद्गम का प्रश्न इस पुस्तक के लिहाज से कम महत्व रखता है। तथ्य यह है कि जातिवादी अलगाव और इससे जुड़ी अत्याचार की घटनाएं दरअसल हर दिन लाखों भारतीयों के लिए कष्टदायक होती हैं। भेदभावपूर्ण गतिविधियों को सही ठहराने वाली जाति प्रथा का उद्गम कुछ भी रहा हो, निस्संदेह इस प्रथा के उन्मूलन पर जोर दिया जाना चाहिए न

---

3 ह्यूमन राइट्स वाच, हिडन अपार्थाइड : कास्ट डिस्क्रिमनेशन अगेंस्ट इंडियाज 'अनटचेबल्स' शैडो रिपोर्ट टु दि यूएन कमेटी ऑन दि एलिमिनेशन ऑफ रेशियल डिस्क्रिमनेशन। यूआरएल संदर्भ 02.08.07 http://www.hrw.org/reports/2007/india0207/india0207web.pdf

कि इसके उद्‌गम का पता लगाने पर। जाति की धारणा अत्यंत जटिल मुद्दा है, क्योंकि भारत की सांस्कृतिक पहचान विविधतापूर्ण है और इस पर समाजशास्त्री कम से कम दो शताब्दी से मनन कर रहे हैं। लेकिन जब जातिवाद पर चर्चा होती है तो कुछ ही मुद्दों पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। इस कारण भारत में अस्पृश्यता के मुद्दे के संदर्भ में भारतीय समाज के वर्गीकरण का विवरण सतही और अवास्तविक होता है।

जैसा कि पहले कहा गया है, भारत में जाति प्रथा का सही उद्‌गम अज्ञात है। अब तक सबसे अधिक स्वीकार्य और सबसे अधिक आलोच्य विचार यह है कि भारत में इंडो–आर्यन प्रवासियों ने जाति प्रथा की शुरुआत की थी और इसलिए इस का उद्‌गम भारतीय उपमहाद्वीप से कहीं बाहर था। यह इस तथ्य पर आधारित है कि इंडो–यूरोपियन प्रवासियों ने मौजूदा उत्तर–भारत पर हमला किया था और वे अपने साथ तीन वर्गों में विभाजित तीन अलग श्रेणियां – पुजारी वर्ग, संपन्न वर्ग और मजदूर वर्ग लाए। मूल भारतीय जनसंख्या को इस सामाजिक स्तर के तहत नौकर यानी मजदूर की श्रेणी में मान लिया गया। काले रंग के मूल द्रविड़ लोगों और गोरे रंग के आर्य हमलावरों को अलग–अलग रखने के लिए श्रेणी वर्गीकरण को सामाजिक/नस्लीय अलगाव की स्थिर प्रथा में बदल दिया गया। भारतीय–आर्य हमले की विचारधारा मुख्यरूप से भाषाई प्रमाण पर आधारित है और इसकी पुष्टि नहीं की गई। इसलिए जाति प्रथा के इंडो–आर्यन उद्‌गम की भी अभी पुष्टि की जानी है। संस्कृत भाषा के वेदों में जाति प्रथा का पहला लिखित प्रमाण मिलता है। धार्मिक ग्रंथों के जरिए जाति प्रथा को मान्यता दी गई क्योंकि पवित्र धर्म ग्रंथों में कही बात सबको स्वीकार्य थी। हिन्दू धर्म का कोई एक ऐसा आधिकारिक ग्रंथ नहीं है जिसे ज्ञान का मूल स्रोत माना जा सके जैसा कि इस्लाम और ईसाई धर्मों में है, फिर भी एक ऐसी साझा समझबूझ है जो हिन्दू सिद्धांत का आधार है। इन पुस्तकों की कुछ टिप्पणियों से पता चलता है कि किसी स्तर पर जाति प्रथा थी। यह गौरतलब है कि विभिन्न लेखों में जाति के बारे में अलग–अलग राय है। कुछ मामलों में इसकी प्रतिकूल चर्चा की गई है या इस पर शुरू में कम महत्व दिया गया है। इन लेखों में किसी प्रकार का एकसमान विवरण न मिलने से यह निष्कर्ष निकलता है कि हिन्दू सिद्धांत के बारे में लेख अलग–अलग समय काल में, अलग–अलग क्षेत्रों में और अलग–अलग संदर्भों में लिखे गए थे। इस बात को भी स्पष्ट किए जाने की आवश्यकता है कि वैदिक ग्रंथ का हिन्दूवाद ग्रामीण स्तर पर व्यवहार में लाए जा रहे हिन्दू धर्म से बहुत भिन्न था, क्योंकि ये ग्रंथ संस्कृत भाषा में होने से इस भाषा को अधिकतर हिन्दू जानते नहीं और इस भाषा तक उनकी पहुंच भी नहीं थी।

सामाजिक अलगाव की प्रथा का स्पष्ट उल्लेख हिन्दुओं के पवित्र ऋग्वेद ग्रंथ में मिलता है, इसे विश्व का सबसे पुराना धार्मिक ग्रंथ माना जाता है। इसमें पुरुष के आदिकालीन बलिदान का उल्लेख है। कहते है इस पुरुष के शरीर से ब्राह्मण बना हुआ है। इसलिए सामाजिक क्रम का विचार हिन्दू विचारधारा में मौजूद है। इसमें मनुष्य के जन्म का विवरण इस प्रकार दिया गया है–

- जब उन्होंने पुरुष के शरीर को विभाजित किया तो उसके कितने भाग किए?

- उसके मुंह, दो बांहों और जंघाओं तथा पांवों को कैसे पुकारा गया?
- उसका मुंह ब्राह्मण बना, बांहें योद्धा क्षत्रिय बनीं, उसकी जांघ से वैश्य बने और उसकी जंघाओं से शूद्र पैदा हुए।

वर्ण में मानव के लिए अलग–अलग भूमिका निर्धारित की गई है। संस्कृत का वर्ण शब्द मानव के रंग–रूप आदि के आधार पर तय किया गया।[4] प्रत्येक वर्ण का विवरण एक रंग से भी दिया गया है जैसे ब्राह्मणों को सफेद, क्षत्रियों को लाल, वैश्यों को पीला और शूद्रों को काला दिखाया गया। प्रत्येक वर्ण को एक विशेष रंग से दिखाए जाने का वर्णन हिन्दुओं के प्रसिद्ध ग्रंथ महाभारत में भी है।

ब्राह्मणों का रंग सफेद, क्षत्रियों का लाल, वैश्यों का पीला और शूद्रों का काला रंग था।

समकालीन भारत में किसी व्यक्ति के शरीर के रंग और जाति का कोई आपसी संबंध नहीं है। यह विचार कि गोरे रंग का आदमी 'उच्च जाति' का है केवल कुछ हद तक ही सही हो सकता है। रंग और इसके जातीय अर्थ यानी नस्लीय भेदभाव और जातिवाद के बीच आपसी संबंध है।[5] चारों वर्णों की निम्नलिखित रूप में पहचान होने लगी :

- ब्राह्मणों की पुजारी वर्ग के रूप में
- क्षत्रियों की सैनिक एवं शासक वर्ग के रूप में
- वैश्यों की व्यापारी या भू–स्वामी वर्ग के रूप में
- शूद्रों की श्रमिक वर्ग के रूप में

इस प्रकार वर्णों के तहत व्यवसाय का वर्गीकरण कर दिया गया, जो यूरोपीय वर्ग प्रथा से भिन्न था। अक्सर यह दलील दी जाती है कि वर्ण व्यवस्था वंशानुगत नहीं थी बल्कि व्यक्ति की योग्यता पर आधारित थी जो उसके वर्ण को निर्धारित करती। चाहे जो कुछ भी रहा हो लेकिन ये प्रथा धीरे–धीरे जाति पर आधारित हो गई। प्रत्येक वर्ग कई जातियों में बंट गया, जिनकी परिभाषा

---

4 वर्ण शब्द के सही अर्थ पर बहस जारी है और इसका राजनीतिकरण कर दिया गया है।

5 प्रत्येक वर्ण के साथ रंग का संबंध है और इसे वर्ण का प्रतीक माना गया जो समाजशास्त्रियों आदि के लिए रुचि का विषय बन गया है। तथ्य यह है कि कास्ट यानी जाति शब्द पुर्तगाली के कास्ता शब्द से लिया गया है जिसका संबंध नस्ल से है और जिससे पता चलता है कि जाति और नस्ल दो अलग सामाजिक वर्ग हैं जिनमें समानता है। जाति के नस्लीय स्वरूप और अस्पृश्यता पर बहस धार्मिक कारणों या फिर इन कारणों के अभाव से प्रभावित रही है। इस बहस को कई कारणों से राजनीतिक रंग भी दिया गया है। प्रत्येक वर्ण के लिए रंगों के प्रतीक को ऐतिहासिक तौर पर उत्तराधिकारी प्रवृत्ति से नहीं जोड़ा गया था,लेकिन वर्ण उत्तराधिकार पर आधारित थे। निष्कर्ष निकालने के लिए मान लें कि सफेद रंग ब्राह्मणों का प्रतीक था क्योंकि यह वर्ण सामाजिक व्यवस्था में सबसे ऊंचा था और इसी तरह काला रंग शूद्रों का प्रतीक था क्योंकि वह सामाजिक व्यवस्था में सबसे नीचे थे। दूसरी तरफ जैसे कि पहले बताया गया है कि यह धारणा समकालीन भारत में भी प्रचलित है कि गोरे रंग का व्यक्ति ऊंची जाति का होगा। यह बहस का विषय है कि इसे क्या नस्लीय प्रभुत्व और जाति के बीच किसी संबंध का प्रमाण माना जा सकता है।

जन्म से या वंशानुगत आधार पर जातियों या सामाजिक–पारम्परिक समूह के अनुसार दी गई है।[6] किसी एक जाति के भीतर उपजाति का संबंध अक्सर पेशे से होता है जैसे कि गांधी का अर्थ फल–सब्जी के व्यापारी से है और इस उपजाति का संबंध जन्म और पेशे से जुड़ा माना जाता है। जाति की अवधारणा का कोई धार्मिक मूल नहीं है और इस का किसी धार्मिक ग्रंथ में उल्लेख नहीं है। आम तौर पर जाति ही दरअसल 'कास्ट' के बराबर मानी जाती है। वर्ण प्रथा हमेशा धार्मिक अवधारणा पर आधारित थी और केवल सैद्धांतिक थी जबकि जाति प्रथा सामाजिक व्यवस्था का अंग है और इससे व्यक्ति विशेष के दर्जे का पता चलता है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जाति प्रथा ने वर्ण व्यवस्था की कुरीति को वंशानुगत बना दिया, जिसके तहत एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी वही पेशा अपनाती रही। विभिन्न जटिल सामाजिक–आर्थिक प्रक्रियाओं, मुख्यरूप से वंशानुगत पेशे से मिलने वाले फायदों के कारण वह जाति अपने आप में एक अलग जाति बन गई। प्रत्येक जाति का अपना अलग सामाजिक शिष्टाचार बन गया जो उस जाति विशेष का सांस्कृतिक प्रतीक माना गया। इसलिए 'कास्ट' जाति और वर्ण का इस्तेमाल एक दूसरे के स्थान पर गलती से किया जाता है।

जाति प्रथा के एक अन्य प्रमुख स्रोत का संदर्भ 'मनुस्मृति' पुस्तक में भी मिलता है। इसमें मनु ने जाति प्रथा के आधार का वर्णन किया है, जो प्रत्येक वर्ण के लिए निर्धारित आचार संहिता है और जिसने जाति प्रथा को लगभग कानून जैसा स्वरूप दे दिया। इस पुस्तक में अंतर्जातीय संबंधों पर बल देते हुए कई मामलों में शूद्रों के मुकाबले ब्राह्मणों की श्रेष्ठता की पुष्टि की गई है, जैसा कि इन वाक्यों में दिया गया है–

- ब्राह्मण इस धरती पर सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति के रूप में जन्म लेता है और वह सभी का मालिक और कानून का संरक्षक होता है।
- शूद्र के लिए केवल ब्राह्मण की सेवा करना सबसे श्रेष्ठ व्यवसाय है, इसके अलावा वह जो भी कर्म करेगा उससे उसे फल नहीं मिलेगा।
- यदि कोई शूद्र किसी श्रेष्ठ व्यक्ति का गाली देकर अपमान करेगा तो उसकी जीभ काट दी जाएगी, क्योंकि वह नीची जाति का है।

मनुस्मृति को हालांकि हिन्दू कानून के रूप में माना जाता रहा, लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि क्या इसका कोई विशेष कानूनी स्तर था। इतना ही नहीं इसे ऋग्वेद की तरह धार्मिक ग्रंथ भी नहीं माना गया। बावजूद इसके, लिखित प्रमाण से यह पुष्टि होती है कि इस पुस्तक की पुरातन भारत में प्रभावशाली भूमिका थी, भले ही इसकी आधिकारिक भूमिका नहीं थी। (इस तथ्य को जान लेना जरूरी है कि अधिकतर अधिकार क्षेत्र का मकसद गतिविधियों को सीमित या नियंत्रित करना था जो कि व्यापक हो सकती थीं; और जाति आधारित बटवारा कानून द्वारा स्वीकृत होना जरूरी

---

6 सरकि 1986

था जिसका अर्थ है कि जाति प्रथा सामाजिक तौर पर इतनी कठोर नहीं थी कि उससे सामाजिक गतिशीलता रोकी जा सके।)

किस प्रकार जाति का प्रभुत्व बना और किस प्रकार यह सामाजिक व्यवस्था में प्रभावशाली इकाई बन गई इसकी मुख्य अवधारणा को समझने के लिए वर्णाश्रम धर्म के विचार को समझना होगा। इसका संबंध इस विश्वास से है कि किसी व्यक्ति को अपने जीवन को पूरा करने के लिए उसकी भूमिका और धर्म निर्धारित है। इसे हिन्दू धर्म में महत्वपूर्ण माना गया है। व्यक्तिगत धर्म में जन्म की जाति के अनुरूप नैतिक और व्यावहारिक जीवन का निर्वहन करना सम्मिलित है। इसका अर्थ है कि व्यक्ति को अपनी जाति के लिए निर्धारित आदर्श व्यवहार का पालन करना होगा। इस विचार का वर्णन कई धार्मिक ग्रंथों और तो और गीता में भी भगवान कृष्ण ने किया है–

"अपना ठीक ढंग से नहीं किया गया काम भी दूसरे के सही काम से बेहतर होता है। अपना काम करते हुए मरना अच्छा है, दूसरे का काम करना अनुचित है।"

"अपने स्वधर्म यानी कर्म में लगे रहना बेहतर है भले ही उसे सही तरीके से न किया गया हो। यह दूसरे का काम सही तरीके से करने से भी बेहतर है। अपने निर्धारित दायित्वों का पालन करने से पाप नहीं होता।"

धर्म का सार यह है कि यदि कोई व्यक्ति नैतिक जीवन व्यतीत करता है और व्यक्तिगत रूप से तथा जाति के सदस्य के नाते अपेक्षानुसार काम करता है तो उसका पुनर्जन्म सफल होगा। पुनर्जन्म और जाति के बीच संबंध पर भी धार्मिक ग्रंथों में जोर दिया गया है। छंदोग्य उपनिषद के अनुसार–

"जिन लोगों का व्यवहार सही होता है वे पुनर्जन्म के लिए किसी ब्राह्मण महिला, किसी क्षत्रिय या किसी वैश्य महिला के गर्भ में प्रवेश कर सकते हैं। मगर गलत व्यवहार करने वाले लोग किसी कुतिया, किसी सुअरनी या निचली जाति की औरत के गर्भ में प्रवेश कर सकते हैं।"

भारतीय संस्कृति में अस्पृश्यता की अवधारणा शुरू होने के सही समय की कोई निश्चित जानकारी नहीं है, हालांकि सामाजिक–नृवंशीय विज्ञानों और इतिहासविदों ने हिन्दू समाज की सामाजिक क्रम व्यवस्था पर व्यापक शोध किया है। अस्पृश्यता की शुरुआत के बारे में सर्वाधिक मान्य सिद्धांत निर्विवाद रूप से फ्रांस के नृविज्ञानी लुई दयूमों ने प्रतिपादन किया है। उन्होंने दलील दी कि हिन्दू धर्म का सामाजिक ढांचा शुद्धता और अशुद्धता के आधार पर सीधे बटवारे के अनुसार है। शुद्धता/अशुद्धता का यह द्विध्रुवीय ढांचा हिन्दू संस्कृति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह भूमिका इतनी जोरदार है कि यह एक ऐसी ढांचागत व्यवस्था बनाती है जिसमें पूरी व्यवस्था अपने सभी हिस्सों को नियंत्रित करती है।[7] यह द्विविभाजन सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं पर लागू होता है। इसमें शुद्ध और अशुद्ध खान–पान के अलावा वस्त्र और धातुएं भी शामिल हैं। यह प्रवृत्ति वेद ग्रंथों में भी है जो पारम्परिक शुद्धता पर बहुत जोर देते हैं।

---

7 दयूमों 1980

विभिन्न हिन्दू परम्पराएं, पारम्परिक शुद्धता के विभिन्न मानकों और शुद्धीकरण के अनुसार हैं और कोई समुदाय जितना अधिक रूढ़िवादी होगा तो उससे उतनी ही कठोर पारम्परिक शुद्धता की उम्मीद की जाती है। ऐसा प्रवचन हिन्दू धर्म में आम तौर पर पाया जाता है। ब्राह्मण वर्ण में सबसे अधिक शुद्धता पाई जाती है, जिन्हें पारम्परिक रूप से अपने आप में शुद्ध माना जाता है। वे अस्थाई तौर पर अशुद्ध बन भी गए तो पारम्परिक अनुष्ठान के जरिए शुद्ध बन सकते हैं। तीन अन्य वर्णों पर भी यह शुद्धता घटते क्रम में लागू होती है। व्यवस्था के बारे में दयोमों के शोध के अनुसार ब्राह्मण को अपनी शुद्धता परिभाषित करने के लिए दोहरे विरोध का सामना करना पड़ता है। ब्राह्मण की शुद्धता का विरोध उच्च जाति के लोगों को अशुद्ध करने वाले मजदूर वर्ग में पाया जाता है। ऐसे पेशों में वह अशुद्ध कार्य शामिल है जो मृत्यु और गंदगी से जुड़े होते हैं। कसाई, मोची या सिर पर मैला ढोने का काम करने वाले पेशों से जुड़े मजदूर सामाजिक व्यवस्था में सबसे नीचे माने जाते हैं, क्योंकि अशुद्ध वस्तुओं के साथ सम्पर्क में आने से उनका शुद्धता का स्तर गिर जाता है। धर्म के अनुसार पीढ़ी दर पीढ़ी व्यवसाय का निर्धारण होता है, इसी तरह अशुद्धता भी पीढ़ी दर पीढ़ी निर्धारित होती है। जन्म की अशुद्धता का अर्थ है कि इसे पारम्परिक तरीके से शुद्ध नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यह अलग नहीं की जा सकती और विरासत में मिली है। इन लोगों को पारम्परिक तरीकों से शुद्ध नहीं किया जा सकता है और इनके छू जाने मात्र से उच्च जाति के लोगों को लगातार अशुद्ध हो जाने का खतरा बना रहता है इसलिए इन्हें जाति व्यवस्था से अलग रखा गया है और अछूत कहा जाता है। दयूमों के अनुसार–

> *इस विरोध में निहित संदर्भ के कारण जाति आधारित समाज में रहने वालों के लिए यह व्यवस्था स्थाई और तर्कसंगत लगती है। यह विरोध उस क्रम व्यवस्था को उजागर करता है जो अशुद्ध पर शुद्ध की श्रेष्ठता, शुद्ध और अशुद्ध को अलग रखने की आवश्यकता और शुद्ध और अशुद्ध के आधार पर मजदूरी के बटवारे और इन पेशों को अलग रखने की आवश्यकता पर जोर देता है।*[8]

जाति वर्गीकरण के बाहर रहने अर्थात किसी वर्ण में न होने का मतलब है कि अछूतों का उद्गम उस पुरुष से नहीं हुआ जिसके शरीर से वर्ण बने थे और जो हिन्दू समाज का आधार है। इस तरह दलित न केवल सामाजिक व्यवस्था से बाहर रह रहे हैं बल्कि इसका असर यह भी है कि उन्हें हिन्दू धर्म के दायरे में समाहित ही नहीं किया गया है। अछूत माने जाने वाले समूह के बारे में प्राचीन लिखित सबूत हालांकि दुलर्भ हैं लेकिन दयूमों का मानना है कि छूआछूत भी उतनी ही पुरानी प्रथा है जितना ब्राह्मण वर्ग। "अछूत की अशुद्धता को ब्राह्मण की शुद्धता से अलग नहीं किया जा सकता... खास तौर पर तब तक अस्पृश्यता समाप्त नहीं होगी जब तक ब्राह्मणों की शुद्ध ता विद्यमान है और इसका व्यापक अवमूल्यन नहीं होता।"[9] दयूमों के सिद्धांत की दलील सीधी है कि जाति सदैव जाति प्रथा से जुड़ी होती है और इस प्रथा की व्यवस्था समझने के लिए जरूरी है कि इसे विभिन्न जातियों के बीच क्रमव्यवस्था के मद्देनजर देखा जाए।

---

8 दयूमों 1980

9 दयूमों 1980

जाति का प्रचलन भारतीय समाज में इतना गहरा है कि इसके धार्मिक उद्गम से संबंधित प्रश्नों का इसके वास्तविक सामाजीकरण से कोई ताल्लुक नहीं है और गैरवैदिक धर्मों—ईसाई और इस्लाम के समुदायों में भी अस्पृश्यता के चलन के स्पष्ट उदाहरण मिलते हैं। इन समुदायों में भी जाति आधारित भेदभाव मौजूद होने से न केवल इनसे संबंधित विश्वास मजबूत होता है बल्कि यह भी स्पष्ट होता है कि किस स्तर तक जाति भारतीय समाज का अभिन्न अंग बन गई है, भले ही उस जाति का संबंध किसी भी धर्म से क्यों न हो। दयूमों धार्मिक उद्गम पर अधिक जोर देने के कारण कुछ हद तक इस पहलू को अपने विश्लेषण में शामिल नहीं कर सके।

जाति क्रम व्यवस्था का प्रदर्शन सत्ता के साथ संबंध में भी दिखाई देता है और जब यह परम्परा का हिस्सा बन जाती है तो सामाजिक स्तर पर इसके वास्तविक प्रभाव दिखाई देने लगते हैं। इसलिए जाति की अवधारणा का विश्लेषण करने में कठिनाई आती है। इस प्रथा का उद्गम धार्मिक ग्रंथों से बताया जाता है इसलिए निस्संदेह इसके साथ धार्मिक मान्यता जुड़ी है। यह प्रथा सामाजिक क्षेत्र में, विभिन्न समुदायों के बीच संबंधों को नियंत्रित करने के लिए कुछ समुदायों को कमजोर बनाने की कई कारगर नीतियों के जरिए प्रचलन में है। इसलिए अस्पृश्यता के धार्मिक–सैद्धांतिक पहलू पर अधिक ध्यान केन्द्रित करने से जाति के पारम्परिक पहलू पर अधिक जोर देने के कारण राजनीतिक आर्थिक नुकसान का जोखिम शामिल है। वर्तमान में भी अस्पृश्यता की जड़ें धार्मिक तर्क के साथ जुड़ी हैं जैसा कि जातिवाद के इतिहास के दौरान रही हैं। अस्पृश्यता का प्रचलन व्यावहारिक संबंधों का केन्द्र रहा है। धार्मिक रूढ़िवादिता के प्रचलन में निहित स्वार्थ अस्पृश्यकता की जड़ में हैं। भारतीय संविधान के निर्माता और दलितों की मुक्ति के मसीहा डॉ. भीमराव आम्बेडकर ने कहा था, "विश्व में केवल हिन्दू लोग ही ऐसे हैं जिनकी आर्थिक व्यवस्था – मजदूर से मजदूर का संबंध – धर्म पर आधारित है और इसे पवित्र, शाश्वत और अनुल्लंघनीय बनाया गया है।"[10]

ऐतिहासिक भौतिकवाद को विश्लेषणात्मक उपकरण बनाए जाने के बाद से जाति को श्रम बटवारे की प्रणाली के शोध में इस्तेमाल किया गया है। मार्क्स ने भी एशियाई गांव के स्वरूप और उसमें श्रम बटवारे पर जोर दिया था। तभी से जाति और अस्पृश्यता पर मार्क्स के विचार आज तक अस्पृश्यता बने रहने के कारण के विश्लेषण में काफी प्रभावशाली साबित हुए हैं। अस्पृश्यता की अवधारणा में कृषि दासता की असाधारण प्रथा शामिल है जिसमें धार्मिक तरीके से मजदूरों को नियंत्रित किया जाता है। इसके अंतर्गत उस वर्ग की सेवाएं प्राप्त की जाती हैं जिनकी समानता और सामाजिक विकास की आकांक्षा उन्हें विरासत में मिली असमानता और सामाजिक आर्थिक बंधनों में जकड़ी हुई है। भूपतियों की जातियों को बड़ी संख्या में सस्ते मजदूर हासिल करने में वर्णाश्रम धर्म की अवधारणा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वे भले ही अपनी

10 शाह में 2001 में आम्बेडकर की उक्ति

स्थिति से संतुष्ट नहीं हैं बावजूद इसके वे उस विचारधारा के पालन को मजबूर हैं जिसके तहत उनकी मुक्ति का कोई मार्ग नहीं है। प्रत्येक जाति का धर्म है पेशे की भूमिका निभाना, लेकिन शिक्षा हासिल करने के लिए दलितों के रास्ते में बाधा खड़ी की जाती है, क्योंकि इससे उनके लिए आर्थिक और आकर्षक पेशों का मार्ग प्रशस्त होगा जिससे उनकी सामाजिक स्थिति में सुधार होगा।

पेशे की स्थिति में सुधार से किसी विशेष जाति की पहचान में भी कठिनाई उत्पन्न होती है। किसी की पहचान पर काफी हद तक उन सामाजिक नियमों का असर पड़ता है जिन्हें एक विशेष जाति मानती है और जिन पर जोर देती है। विरासत के पेशे से हटने का मतलब होगा इन मूल्यों से पीछे हटना। इस प्रवृत्ति में हालांकि पिछले कुछ दशकों से परिवर्तन आ रहा है और माता–पिता अपने बच्चों की शिक्षा पर ध्यान दे रहे हैं, फिर भी गांवों में यह 'विरासत' वाली प्रवृत्ति कुछ हद तक कायम है जहां 72 प्रतिशत जनसंख्या रहती है।[11]

ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच के अंतर को उजागर करने पर जोर दिए जाने की जरूरत है। शहरी क्षेत्रों में दलितों को अब भी भेदभाव का सामना करना पड़ता है और ग्रामीण क्षेत्रों में स्थिति और भी गंभीर है। दूसरी ओर ग्रामीण गरीब कृषि मजदूर गांवों में खेती के केवल मौसमी काम होने के कारण काम की तलाश में शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं, इसलिए यह अंतर अब उतना स्पष्ट नहीं है। व्यापक स्थिति के मद्देनजर दलित जनसंख्या भी व्यावसायिक गतिशीलता से जुड़ी है और शिक्षा, शहरीकरण, लिंग के मुख्यधारा में शामिल होने (दलित महिलाओं के संदर्भ में ही नहीं) जैसे अत्यंत महत्वपूर्ण मुद्दे भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के साथ जुड़े हुये हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था के खुलेपन से निस्संदेह दलित जनसंख्या की व्यावसायिक गतिशीलता में बड़ा परिवर्तन आएगा। राजनीति विज्ञानी घनश्याम शाह के अनुसार–

> *उन दलितों के लिए जिनके पास निवेश के लिए कुछ संपत्ति और बाजार के लायक दक्षता है और जिन्होंने विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा लेकर व्यवसायी, उद्यमी, कार्यालय में कर्मचारी, राजनेता आदि बनने में कामयाबी पा ली है, उनके लिए आर्थिक उदाहरीकरण और वैश्वीकरण की मौजूदा कार्यसूची से कुछ हद तक समाज में व्यवसाय के विविधिकरण की प्रक्रिया में तेजी आ सकती है और इससे उन्हें भी फायदा मिल सकता है।*[12]

लेकिन उन्होंने जोर दिया है कि इस प्रक्रिया से दलितों के एक छोटे वर्ग को लाभ मिलेगा और गरीबी रेखा से नीचे के दलितों की संख्या में कमी आएगी।[13] वैश्वीकरण, जिसे पश्चिमीकरण के रूप में भी अक्सर देखा जाता है, से अवश्य दलित जनसंख्या की व्यावसायिक गतिशीलता में बढ़ोत्तरी होगी, क्योंकि इसमें व्यक्ति पर ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है, जिससे भारत पर अब तक

---

11 हाउस आफ कॉमन्स लाइब्रेरी, अ पोलिटिकल इंट्रोडक्शन टु इंडिया, रिसर्च पेपर 07/41, यूआरएल संदर्भ 7.07.07 http://www.parliament.uk/commons/lib/research/rp2007/rp07-041.pdf

12 शाह 2001

13 शाह 2001

शासन करने वाली ब्राह्मणवादी विचारधारा की पारम्परिक अवधारणा के महत्व में कमी आएगी। पश्चिमीकरण के प्रभाव के जरिए लाभ उठा रहे दलितों की संख्या बहुत कम है। शहरी मध्यम वर्ग की सामाजिक–आर्थिक घटनाओं का ग्रामीण स्तर पर कम असर पड़ता है। इसके विपरीत ग्रामीण दलितों समेत ग्रामीण गरीबों पर नव–उदार नीतियों का सबसे ज्यादा प्रतिकूल असर पड़ेगा।

भारत अब भी आम तौर पर कृषि प्रधान है और लगभग 75 प्रतिशत दलित जनसंख्या कृषि क्षेत्र में काम करती है। तथ्य यह है कि 50 प्रतिशत से अधिक दलित मजदूर भूमिहीन हैं और 25 प्रतिशत लगभग भूमिहीन मजदूर हैं जो कम मेहनताने पर मजदूर के रूप में भूपतियों के शोषण के लिए उपलब्ध हैं। भूपति ऐसी कमखर्चीली और विनम्र मजदूरी पर निर्भर रहते हैं।[14] कृषि आधारित समाज में भूमि के स्वामित्व, जीवन स्तर और राजनीतिक सशक्तिकरण के बीच आपसी संबंध हैं और व्यावहारिक तौर पर इन्हें अलग नहीं किया जा सकता है। भारत में आजादी के बाद के भूमि सुधार का उद्देश्य गरीब किसानों की आमदनी बढ़ा कर उन्हें सशक्त करना था। गरीब भूमिहीन किसान ज्यादातर दलित वर्ग के थे और यदि भूमि सुधार कारगर रूप से अमल में लाए गए होते तो इससे सामाजिक–राजनीतिक परिवर्तन में बड़ा और महत्वपूर्ण योगदान मिलता। इस दिशा में छिटपुट कामयाबी को छोड़कर कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं आया है। इस असफलता के व्यापक परिणाम हुए। बिहार जैसे राज्य में भूमि सुधार की लगभग शुरुआत ही नहीं हो सकी। इस राज्य में भूमि सुधार की असफलता के कारण कई बड़ी सामाजिक–आर्थिक समस्याएं उत्पन्न हुईं। मौजूदा कानून के बावजूद जिन दलितों को जमीन मिली है उनकी तादाद बहुत कम है। इस असफलता के कई कारण हैं। इस असफलता के पीछे कानून लागू करने में केन्द्र और राज्य सरकार की नाकामी और भूपतियों का विरोध भी है क्योंकि भूपति अपनी उपजाऊ भूमि बांटना नहीं चाहते थे। ग्रामीण क्षेत्रों में भूपतियों का रवैया निरंकुश और प्रतिकूल था जहां दलितों के लिए दूरदराज में रहने और जाति प्रथा के कारण अदालती मदद हासिल करना अक्सर मुश्किल होता था। दलितों को जब कभी भूमि का कब्जा मिला भी उन्हें उच्च जाति के भूपतियों की तरफ से अत्यधिक भेदभाव का सामना करना पड़ा। ये भूपति गांव के भीतर दलित भूपतियों को कुछ बेचने और खरीदने की मनाही के जरिए उनके सामाजिक और आर्थिक अलगाव का अभियान चलाते हैं। इस प्रकार वे उन्हें मजबूर कर देते हैं कि दलित अपनी जमीन पर खेती न करें। इतना ही नहीं वे दलितों पर हिंसा भी करते हैं। अतः उच्च जाति के भूपतियों के लिए कम मेहनताने पर लगभग बंधुआ मजदूर के रूप में काम करने की तुलना में दलितों को जमीन का स्वामित्व बोझ लगता है। बंधुआ मजदूरी और भूमि सुधार की असफलता के बीच आंतरिक संबंध है। बंधुआ मजदूरी 'दास व्यापार और दासता जैसी प्रथा के उन्मूलन के पूरक समझौते' के अनुच्छेद–1 का स्पष्ट उल्लंघन है। इसकी भारत ने 1960 में पुष्टि की थी। समझौते के अनुच्छेद–1 के अनुसार कृषि दासता ऐसी स्थिति है जिसमें "कोई व्यक्ति जो

14 तेलतुम्बडे आनन्द, ग्लोबलाइजेशन एंड दि दलित्स, यूआरएल संदर्भ 28.06.07 http://ambedkar.org/research/GLOBALISATIONANDTHEDALITS.pdf

कानून, रिवायत या किसी सहमति की वजह से वहां रहने और मजदूरी करने को मजबूर हो और वह दूसरे आदमी के लिए कुछ निश्चित काम करता हो, भले ही उसे कुछ मेहनताना मिले या वह मुफ्त काम करे तथा वह इस स्थिति को बदल नहीं सकता हो।"[15] प्रवासी मजदूरों की बढ़ती संख्या खास तौर पर कई किस्म की मुफ्त मजदूरी, जबरन या बंधुआ मजदूरी के हालात पैदा करती है। भारत में बंधुआ मजदूरी पर अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट के अनुसार –

> *षि के आधुनिकीकरण की असमान गति ने स्थिर और दास जैसे मजदूरों की मांग पैदा की है, जिन्हें कुछ मामलों में कर्ज के कारण या बल प्रयोग, कपट या मजबूरी के कारण बंधुआ बनना पड़ता है। प्रवासी मजदूरों के कारण भी बंधुआ मजदूरी को बढ़ावा मिलता है। जिस स्थान के पुरुष बाहर चले जाते हैं वहां महिलाओं और बच्चों को बंधुआ मजदूर बनना पड़ता है। दूरदराज के क्षेत्रें में प्रवासी मजदूरों को मजबूरन बंधुआ बनना पड़ता है।*[16]

अटलांटिक–पार दास प्रथा जैसी स्थिति समकालिक भारत में मौजूद है। इस स्थिति के कुछ अपवाद हैं कि इससे पीड़ित लोग न केवल स्वतंत्र भारत के मुक्त नागरिक हैं अपितु उनके साथ किए जा रहे व्यवहार से संविधान ने उन्हें संरक्षण दे रखा है। यह विरोधाभास है कि दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के समूचे शासनकाल के दौरान भारत इसका बहुत बड़ा आलोचक था और उसने वहां के मूल निवासियों के साथ दक्षिणी अफ्रीकी सरकार की भेदभावपूर्ण नीतियों की निन्दा की मगर उसी समय बड़ी संख्या में भारतीय महज अपनी आनुवांशिक स्थिति के कारण इसी तरह के भेदभाव का सामना कर रहे थे। हाल में मूल नस्ल और जाति के आधार पर भेदभाव, विशेष तौर पर दलितों की स्थिति, के बारे में बहस शुरू हो गई है।[17] यह दलील दी जाती है कि अस्पृश्यता और नस्लीय आधार पर भेदभाव, दोनों पीढ़ी–दर–पीढ़ी से मिले हालात की देन हैं और यही भेदभाव के कारण हैं। इस बहस का केन्द्र बहुत हद तक डर्बन में 2001 में नस्लवाद, नस्लीय भेदभाव, विदेशी द्वेष

---

15 दासता, दास व्यापार एवं संस्था और दासता जैसी प्रथा उन्मूलन पर पूरक संधि, यूआरएल संदर्भ 10.07.07 http://www.unhchr.ch/html/menu3/b/30.htm

16 अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, भारत में बंधुआ मजदूरी, उदाहरण और प्रवृत्ति, यूआरएल संदर्भ 05.10.07 http://www.ilo.org/wcmsp5/groups/public/---ed_norm/---declaration/documents/publication/wcms_081967.pdf

17 जाति और नस्ल के बीच संबंध पर बहस के प्रमाण बहुचर्चित इंडो–आर्यन हमले के सिद्धांत से भी मिलते हैं जो यह दलील देते हैं कि गोरे रंग के आर्य लोगों ने उत्तर भारत में आकर काले रंग के मूल द्रविड़ लोगों को महत्वहीन बना दिया। वेदों में विभिन्न वर्णों के लिए अलग–अलग रंग का उल्लेख है। इस तथ्य को नस्लीय भेदभाव पर आधारित सामाजिक व्यवस्था का प्रभाव माना गया है। जाति वर्ग पर आधारित कड़े नस्लीय भेदभाव का हालांकि कोई प्रमाण नहीं मिलता। ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि इन क्षेत्रों के बीच कोई संबंध नहीं है। इस जनं न्यायाधिकरण में बयान देने वाले लोगों के रंग को लेकर प्रमुख भारतीय मीडिया द्वारा दिखाए गए विरोधाभासी व्यवहार से रंग के सामाजिक महत्व का पता चलता है। जाति और नस्ल के बीच स्पष्ट घातक टकराव की स्थिति से बचने की आवश्यकता है। अनेक जातीय समूहों के होने तथा जाति के बाहर विवाह करने की मनाही के बावजूद विभिन्न जातीय समूह के एक दूसरे के साथ रिश्ते हुए हैं और इसकी हाल में भारतीय लोगों के जीन परीक्षण से पुष्टि हुई है।

और संबंधित असहिष्णुता के विरुद्ध विश्व सम्मेलन की कार्य योजना में वंश आधारित भेदभाव के पैरा–73 में संभवतः जाति को शामिल करने पर था। नस्लवाद पर संयुक्त राष्ट्र विश्व सम्मेलन में दक्षिण एशिया में जाति–आधारित भेदभाव के बारे में संयुक्त राष्ट्र नस्लीय भेदभाव उन्मूलन समिति की आलोचना में निस्संदेह प्रभावशाली अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार संगठनों के समर्थन से कार्यरत कई दलित संगठनों का भी योगदान था। वंश आधारित भेदभाव के औपचारिक घोषणापत्र में ऐसे भेदभाव के लिए जाति को एक प्रकार के रूप में शामिल किए जाने पर भारत के जबर्दस्त विरोध पर काफी दलित संगठनों को निराशा हुई थी, क्योंकि मसौदा घोषणापत्र में इसे पहले ही सम्मिलित कर लिया गया था।[18] 1996 में सीईआरडी ने पहले ही कह दिया था कि हर प्रकार के नस्लीय भेदभाव उन्मूलन की अंतर्राष्ट्रीय संधि के अनुच्छेद एक में वंश की दी गई परिभाषा महज नस्ल का उल्लेख नहीं करती है[19] और समिति का यह मानना है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की स्थिति संधि के अंतर्गत आती है।[20] 1999 में प्रकाशित पेपर में नस्लवाद, नस्लीय भेदभाव, विदेशी द्वेष और संबंधित असहिष्णुता पर संयुक्त राष्ट्र की विशेष रिपोर्ट में जाति और नस्ल की एक जैसी प्रवृत्ति के बारे में निष्कर्ष दिया गया वंश आधारित भेदभाव की किस्म में जाति को शामिल करने या नस्लवाद के संभावित कारण के रूप में वंश को माने जाने के खिलाफ हालांकि भारत सरकार का कड़ा रवैया है लेकिन भारत पर अंतर्राष्ट्रीय समुदाय कड़ा दबाव डाल रहा है कि वह अपने रवैये में तब्दीली लाए।

भारत सरकार की अस्पृश्यता के बारे में क्या स्थिति है? दलितों के संवैधानिक अधिकारों को सुनिश्चित कराने के लिए बनाए गए व्यापक कानूनों का असर अस्पष्ट लगता है। ये कानून तब तक अपर्याप्त हैं जब तक इन्हें लागू करने की इच्छाशक्ति न हो। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि भारतीय संदर्भ में यही स्थिति है। भेदभाव विरोध और मानवाधिकार के क्षेत्र में कार्यरत गैरसरकारी संगठन

---

18 जातिवाद के उन्मूलन में लगे सभी लोगों ने जाति और नस्ल की अवधारणा को एक मानने का स्वागत नहीं किया है। कई समाजशास्त्रियों ने, मुख्य रूप से भारतीय जाति के विषय पर बेहद ज्ञान रखने वाले आन्द्रे बेते ने हालांकि दलील दी है कि जातिवाद आधारित भेदभाव को नस्लवाद की किस्मों के समान माना जा सकता है लेकिन दोनो श्रेणियों को एक समान मानने के नतीजों से बड़ी समस्याएं उत्पन्न होंगी। बेते ने लिखा है कि जातिवाद और नस्लवाद की समानताओं के बावजूद "हम उस समय नस्ल की अवधारणा को आगे के दरवाजे से बाहर नहीं फेंक सकते जब इसका सामाजिक प्रभुत्व स्थापित करने के लिए दुरुपयोग हो रहा हो और दलितों के हितों के दुरुपयोग के लिए इसे पिछले दरवाजे से फिर अंदर नहीं ला सकते।" दि हिन्दू "कास्ट एंड रेस" 10.03.01

19 हर प्रकार के नस्लीय भेदभाव उन्मूलन की अंतर्राष्ट्रीय संधि "इस संधि में नस्लीय भेदभाव का मतलब होगा कि नस्ल, रंग, पीढ़ी या राष्ट्रीयता या जातीय मूल पर आधारित कोई भेदभाव जिसका मकसद राजनीति, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या सार्वजनिक जीवन के किसी अन्य क्षेत्र में मानवाधिकारों या मौलिक स्वतंत्रता की मान्यता या समान अधिकार के व्यवहार में बाधा उत्पन्न करना या इसे बेअसर बनाना हो"। यूआरएल संदर्भ 09.07.07 http://www.unhchr.ch/html/menu3/b/d_icerd.htm

20 "कॉनक्लूडिंग ऑब्जर्वेशन ऑव द कमिटी ऑन द एलिमिनेशन ऑव रेशियल डिस्क्रिमिनेशन : इंडिया"। यूआरएल संदर्भ 09.07.07 http://www.unhchr.ch/tbs/doc.nsf/0/30d3c5041b55e561c12563e000500d33?Opendocument

और अंतर्राष्ट्रीय समितियों की विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय रिपोर्टों में व्यापक छानबीन और तथ्यों का पता लगाने के बाद बार–बार उजागर किया गया है कि दलितों को हर रोज ज्यादतियों और अत्याचारों का सामना करना पड़ता है। न्यायपालिका की इन दस्तावेजों और व्यापक सांख्यिकी आंकड़ों तक हालांकि पहुंच है मगर दलितों के मानवाधिकारों के हनन पर काबू पाने के लिए पुलिस और न्यायपालिका द्वारा कदम न उठाया जाना चिंताजनक है। दलितों को सशक्त बनाने के व्यापक कानूनी प्रावधानों का न्यायपालिका के सभी स्तर पर बेहद कम इस्तेमाल किया जाता है। केन्द्रीय गृह मंत्रालय के अंतर्गत राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो एनसीआरबी की 2005 की रिपोर्ट में कहा गया है कि देश में हरेक 20 मिनट में अनुसूचित जाति के सदस्य के खिलाफ अपराध होता है। एनसीआरबी रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि इन अपराधों के लिए दंडित किए जाने की दर बहुत कम है। 94.1 मामलों में आरोप पत्र दाखिल किये गये, लेकिन दंडित किए जाने की दर 29.8 प्रतिशत थी। रिपोर्ट में यह भी बताया गया है :

पुलिस जिसमें कि ज्यादातर उच्च जाति के सदस्य भर्ती किए जाते हैं, अक्सर अत्याचार निरोधक अधिनियम के अंतर्गत मामले दर्ज करने में आनाकानी करते हैं, जबकि न केवल अपराधी अपितु कार्रवाई न करने वाले अधिकारी के खिलाफ भी भारी दंड के प्रावधान है। पुलिस अक्सर पीड़ितों की जानकारी के अभाव का फायदा उठाते हुए कम सजा के प्रावधान वाली भारतीय दंड संहिता के तहत मामले दर्ज करती है। 2005 में दर्ज 26,127 मामलों में से केवल 8,497 अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम में दर्ज किए गए, जिससे स्थिति का साफ पता चलता है। पुलिस द्वारा मामले दर्ज नहीं करना और शिकायतें नहीं स्वीकार करना तो आम बात है। पुलिस लोगों को बेधड़क और लगभग किसी प्रकार की कार्रवाई न किए जाने के आश्वासन के साथ उन्हें दलितों पर अत्याचार करने की अनुमति देती है और कई बार ऐसे लोगों का साथ भी देती है। इतना ही नहीं अत्याचार निरोधक अधिनियम 1989 और नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1995 के अंतर्गत पुलिस इन अपराधों को सही तरीके से दर्ज न करने में जानबूझ कर नाकामयाब रहती है।[21]

जाति प्रथा में पूर्वाग्रह रखने वाली पुलिस और न्यायपालिका राज्यतंत्र के व्यापक संदर्भ में केवल एक भाग की भूमिका निभाती है। सरकार को आखिरकार कानून को लागू करने की जिम्मेदारी निभानी होती है। दलितों, जिनको सिर पर मैला ढोने वाले काम जैसे अशुद्ध और अपमानजनक पेशे करने को मजबूर होना पड़ता है, को हालांकि राज्य की ओर से ऐसे कामों से संरक्षण मिला हुआ है फिर भी ऐसे मामलों में उनके साथ राज्य का दुर्व्यवहार जारी है। सिर पर मैला ढोने की प्रथा पर नजर डालने से पता चलता है कि दलितों के संरक्षण का कानून लागू करने में राज्य उदासीन है। ह्यूमन राइट्स वॉच की रिपोर्ट में कहा गया है कि सिर पर मैला ढोने पर प्रतिबंध लगाने जैसे कानूनी उपाय कई वर्षों तक कागज पर ही रहे–

---

21 राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी), 2005 वार्षिक रिपोर्ट, यूआरएल संदर्भ 02.08.07 http://ncrb.nic.in/crime2005/home.htm

शोषणकारी मजदूरी को समाप्त करने के कानून – जैसे कि सिर पर मैला ढोने का काम कराने और शुष्क शौचालय निर्माण (प्रतिबंध) अधिनियम 1993, बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम 1976, अंतर्राज्य प्रवासी मजदूर (रोजगार और सेवा स्थिति नियमन) अधिनियम 1979, बाल मजदूरी (प्रतिबंध और नियमन) अधिनियम 1986, न्यूनतम वेतन अधिनियम 1948, समान वेतन अधिनियम 1976, कर्नाटक देवदासी (प्रतिबंध) अधिनियम 1992 और इन अधिनियमों के संबंधित पुनर्वास कार्यक्रम कुल मिलाकर बेअसर हैं।[22]

सरकार काम की उन शोचनीय स्थितियों की अनदेखी नहीं कर सकती जिनमें काफी दलित समुदाय लगे हुए हैं। सिर पर मैला ढोने वाले विशेष तौर पर मैनहोल मजदूरों को दिल्ली और मुम्बई जैसे बड़े शहरों की नगर निगमों और भारतीय रेल ने अब भी गैरकानूनी तरीके से नियुक्त कर रखा है और उन्हें मैनहोल की जहरीली गैसों से बचाव के लिए कोई उपकरण नहीं दिए जाते हैं। ये मजदूर सिर से पांव तक मानव मल में भी सने रहते हैं। शहरों में सिर पर मैला ढोने वालों को शहर में तो अपने लिए कोई अन्य रोजगार न होने के कारण यह काम करना पड़ता है जबकि गांवों में वे इस काम से मना नहीं कर सकते, क्योंकि इससे इंकार करने पर उन्हें मारा–पीटा जाता है। ऐसे मामलों में पुलिस और न्यायपालिका उन्हें उच्च जाति के सदस्यों के अत्याचार से कोई संरक्षण नहीं देती है और वे सामाजिक–आर्थिक हिंसा के कुचक्र में फंसे रहते हैं। मैनहोल में जहरीली गैस के कारण मैनहोल मजदूरों की मौत की खबरों या इस खतरनाक काम को उजागर करने वाली खबरों के बावजूद सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित नहीं हुआ है। मानवाधिकारों के इस मूल उल्लंघन के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की गई। इन मजदूरों के अधिकारों के लिए जनता की ओर से भी कोई कारगर आवाज नहीं उठाई गई। कुछ एनजीओ ही केवल उनके अधिकारों की लड़ाई लड़ रहे हैं। यह बड़ा अजीब लगता है कि भारत जो विश्व में एक ओर महाशक्ति बनने को तैयार है, सिर पर मैला ढोने की प्रथा के उन्मूलन के लिए आसान और व्यावहारिक कदम उठाने को तैयार नहीं है।

ऐसी अमानवीय प्रथा जारी रहने के तथ्य से पता चलता है कि किस प्रकार भारत में अस्पृश्यता आम बात है। कई भारतीय इस तथ्य को मुश्किल से स्वीकार करते हैं कि दलितों के साथ व्यवहार से संबंधित संस्थागत सामाजिक परम्पराएं भी व्यक्तिगत स्तर पर भी दिखाई देती हैं। दलितों की दुर्दशा के लिए संस्थागत खामियों को दोषी ठहराना और व्यक्तिगत भूमिका से इंकार करना यथास्थिति बनाए रखने के लिए जिम्मेदार है। यह बात मानने से कि कुछ सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों के कारण पहले जैसे हालत बने हुए हैं, यह गलत अवधारणा पैदा हुई है कि केवल कानूनी सुधार से दलितों के स्तर में बड़ा परिवर्तन आएगा। दलितों के सशक्तिकरण के लिए

22 ह्यूमन राइट्स वॉच, हिडन अपार्थाइड : कास्ट डिस्क्रिमनेशन अगेनस्ट इंडियाज 'अनटचेबल्स' : शैडो रिपोर्ट टु दि यूएन कमेटी ऑन दि एलिमिनेशन ऑफ रेशियल डिक्रिमनेशन, यूआरएल संदर्भ 02.08.07 http://www.hrw.org/reports/2007/india0207/india0207web.pdf

हालांकि कानूनी समाधान आवश्यक, व्यापक और महत्वपूर्ण कदम हैं परंतु व्यक्तिगत स्तर पर दलितों को जागरूक बनाना एक मात्र कारगर उपाय है। महात्मा गांधी ने सौ साल से अधिक पहले 1901 में कांग्रेस की बैठक में सिर पर मैला ढोने वालों का मुद्दा उठाया था और इस प्रथा को समाप्त करने के लिए आवाज बुलंद की थी, फिर भी भारत के अधिकांश भागों में आज भी इस प्रथा का चलन है। कई प्रगतिशील क्षेत्रों में जाति प्रथा की कड़ी निन्दा की जाती है बावजूद इसके दलितों के साथ संपर्क से बचा जाता है। दलितों के साथ सामाजिक संपर्क से बचने का फैसला व्यक्तिगत स्तर पर किया जाता है, हालांकि यह बात अलग है कि संस्थागत ढांचे में भी इसे मान्यता प्राप्त है।

इसका एक स्पष्ट संस्थागत प्रदर्शन आरक्षण का मुद्दा है। व्यक्ति के साथ संपर्क के स्तर पर अस्पृश्यता से जुड़े अपमान को दूर करने की योजनाओं को लागू करने में सरकार असफल रही है। आरक्षण की नीति के कारण इसके लागू होने के समय से जोरदार बहस चल रही है और इसी कारण दलितों और उच्च जाति के सदस्यों के बीच खाई बढ़ी है। मुख्य रूप से डॉ. आम्बेडकर के विचारों के कारण अनुकूल कार्रवाई की नीतियां भारतीय संविधान के मूल तत्वों का अंग बन सकीं। यह नीति भारतीय संविधान के अनुच्छेद–15 में स्पष्ट है– "धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव पर रोक" जिसमें सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों या अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के उत्थान के लिए विशेष प्रावधान की बात की गई है। अनुच्छेद–46 में राज्य के दिशा–निर्देशक सिद्धांतों में कहा गया है कि सरकार जनता और विशेष तौर पर अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के शैक्षिक तथा आर्थिक हितों को बढ़ावा देने पर विशेष ध्यान देगी और उन्हें सामाजिक न्याय दिला कर संरक्षण देगी। राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षिक दृष्टि से उपेक्षित वर्गों की पहुंच और भागीदारी में सुधार लाने के लिए समय–समय पर नई नीतियां बनाई जाती हैं।[23] संविधान का पहला संशोधन, जो 1951 में लाया गया, दरअसल आरक्षण नीति से संबंधित था। आरक्षण नीति को केन्द्र और राज्य सरकारें लागू करती हैं। राज्य सरकार, केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम आवश्यकताओं की सीमा तक विभिन्न स्तरों पर आरक्षण कर सकती हैं, लेकिन पूर्व निर्धारित सीमा से आगे नहीं जा सकतीं। आरक्षण नीति की आवश्यकता के पीछे यह धारणा है कि मुख्यधारा की संस्थाओं में कुछ समूहों का कम प्रतिनिधित्व जाति पर आधारित सामाजिक वर्गीकरण की ऐतिहासिक प्रक्रिया के कारण है (धर्म, मूल निवासी और लिंग के आधार पर भी आरक्षण दिया जाता है) और इन समूहों के कम प्रतिनिधित्व की स्थिति से निपटने के लिए अनुकूल भेदभाव की नीतियों को अमल में लाना चाहिए।

आरक्षण नीतियां मुख्य रूप से तीन स्तर पर काम करती हैं। पहला कि आरक्षण यह गारंटी देता है कि 'निचली जाति' के लोगों को विधायिका में निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल कर के जन

---

23 आरक्षण नीति के अंतर्गत काफी कानून आते हैं। यहां जिनका सार नहीं दिया जा सकता है क्योंकि इसके लिए कई संकलन है। इसी प्रकार विभिन्न सरकारी संस्थाओं में अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित पदों और प्रतिशत की समीक्षा करना भी सार्थक नहीं होगा क्योंकि यह सूचना काफी हद तक उपलब्ध है।

नीतियों में सुधार लाने का मौका दिया जाए। दूसरा निचली जाति के सदस्यों को अधिक आय में प्रतिनिधित्व दिया जाए, इससे न केवल अधिक आय से कर्मचारियों को फायदा होगा अपितु उनके परिवार के सदस्य भी फायदा उठा कर सशक्तिकरण का दीर्घकालिक फायदा उठा सकते हैं। तीसरा और सबसे महत्वपूर्ण यह है कि सार्वजनिक क्षेत्र में दलितों की अधिक उपस्थिति से आरक्षण नीति समूचे समाज में दलित मुद्दों को मुख्यधारा में लाने में मददगार साबित होती है। यह बहस देश में लोकतांत्रिक सिद्धांत को अमल में लाने से उत्पन्न समस्याओं से संबंधित है जहां नागरिकता के अलोकतांत्रिक सिद्धांत का ऐतिहासिक ढांचा मौजूद है। इस बहस की इतनी अधिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है कि कई बार सामयिक मुद्दे पर ध्यान केन्द्रित करना मुश्किल हो जाता है। गैर दलितों के समान काम करने में दलितों की अक्षमता की दलीलें खारिज करना आसान है लेकिन असली मुद्दा दलितों से साथ सामाजिक संपर्क से लगातार बचने से संबंधित है। उच्च शिक्षा के कई संस्थानों में जहां आरक्षण लागू है वहां जाति के आधार पर बटवारा बना रहता है और दलितों तथा उच्च जाति के सदस्यों के बीच दिखावटी स्तर पर संपर्क रहता है। दलितों और उच्च जाति के सदस्यों के बीच संपर्क के नए अवसर पैदा तो हो रहे हैं मगर इसमें बाधाएं दूर करने की गति बहुत धीमी है। मौजूदा पीढ़ी, जो इस समय स्कूलों में दोपहर के भोजन की योजना का लाभ उठा रही है, जब उच्च शिक्षा के लिए पहुंचेगी तो तब तक कई अपमानजनक स्थितियां समाप्त हो जाएंगी। अतः व्यक्तिगत स्तर पर जागरूकता लाना महत्वपूर्ण है।

सामाजिक सम्पर्क से बचने पर जोर देने के कारण दलित लोग समाज की मुख्यधारा से अलग–थलग हैं और इससे सामाजिक–आर्थिक असमानता का दुष्चक्र पैदा हुआ है जिस पर काबू पाने के लिए विभिन्न अनुकूल नीतियां बनाई गई हैं। दलितों के बड़े पैमाने पर सशक्तिकरण में मुख्य बाधा आर्थिक/सामाजिक शक्ति का अभाव है, जिससे उनकी आवाज बुलंद नहीं हो पाई है। अतः पीढ़ी दर पीढ़ी दलितों और गैर–दलितों के बीच हीनता/श्रेष्ठता की अवधारणा बनी हुई है।

शिक्षा तक पहुंच बढ़ने से हालांकि धीरे–धीरे सुधार हो रहा है (शिक्षा तक पहुंच अभी दलितों की तादाद और प्रतिनिधित्व की दृष्टि से कम है) लेकिन दलित अब भी सरकारी तंत्र की नजरों में द्वितीय श्रेणी के नागरिक बने हुए हैं। दलितों को भेदभाव और अत्याचार से बचाने में पुलिस और न्यायपालिका वास्तव में बेअसर हैं। इसका कारण पुलिस और न्यायपालिका में दलितों का लगभग शून्य प्रतिनिधित्व है। इस न्यायाधिकरण में पीड़ितों को संबोधित करते हुए डा. रमैया ने अपने भाषण में कहा, "हम पुलिस और न्यायपालिका पर कैसे निर्भर कर सकते हैं जब बार–बार इनके सदस्यों ने साबित कर दिया है कि दलितों के खिलाफ अपराध में उन्होंने साथ दिया है।" तथ्य यह है कि पुलिस और न्यायपालिका अक्सर दलितों के खिलाफ अपराध में हमलावरों को संरक्षण देती है और इससे उन हमलावरों को प्रोत्साहन मिलता है क्योंकि उन्हें पता होता है कि पुलिस और न्यायपालिका या तो उनके खिलाफ सही कानून के तहत मामला दर्ज नहीं करके उनकी मदद करेगी या फिर पीड़ितों के खिलाफ झूठे मुकदमे दर्ज कर देगी। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के आंकड़ों से पता

चलता है कि भले ही कुछ मामलों में समुचित कानून के तहत मामला दर्ज होता है मगर ऐसे मामलों में सबूत से छेड़छाड़ की जाती है या पीड़ितों को बयान बदलने या मामला वापिस लेने के लिए डराया धमकाया जाता है, जिससे सजा मिलने की दर कम हो जाती हैं। निस्संदेह संदेश साफ है। दलितों के खिलाफ मानवाधिकार उल्लंघन का अपराध करने वालों को इन कानूनों के अंतर्गत कोई गंभीर सजा नहीं मिलती। कानून और नीतियां कागजों पर मौजूद हैं लेकिन सरकार को अभी पूरी तरह स्पष्ट करना है कि वह बिना किसी जातिगत भेदभाव के सभी नागरिकों को समान मानती है और उन्हें एक जैसे संरक्षण का अधिकारी मानती है।

भारतीय समाज सरकार की जवाबदेही पर जोर देने में काफी सक्रिय है। दलितों के सशक्तिकरण के लिए काम कर रहे विभिन्न व्यक्ति, समूह और एनजीओ इस उद्देश्य से विभिन्न स्तरों पर जुटे हुए हैं। दलितों की कोई एक अलग पहचान नहीं है। उन पर संस्थागत पहचान थोपी गई है फिर भी दलित आंदोलन में कई पक्ष हैं जिनके हित अलग–अलग लेकिन एक–दूसरे से जुड़े हैं और इस प्रकार वे अपने लक्ष्य हासिल करने की कोशिश कर रहे हैं। दलित आंदोलनों ने राजनीतिक क्षेत्र में अलग महत्वपूर्ण पहचान नहीं बनाई, क्योंकि उनमें कुछ हद तक अंतर्जातीय मतभेद हैं और विभिन्न दलित समुदायों के बीच टकराव हैं। दलित आंदोलन की बहुतायत का पता दलित सशक्तिकरण के संघर्ष में लगे विभिन्न संगठनों से भी चलता है। कुछ संगठन दलितों के अधिकारों जैसे विशेष पहलुओं के लिए संघर्ष में जुटे हैं तो कुछ जातिवाद के उन्मूलन का व्यापक दृष्टिकोण अपनाते हैं। कुछ संगठन स्थानीय स्तर के हैं और कुछ अंतर्राष्ट्रीय मंच पर काम करते हैं। कुछ संगठन कानूनी कर्रवाई पर जोर देते हैं और कुछ शिक्षा तथा दलित मुद्दों को मुख्यधारा में लाने पर जोर दे रहे हैं। एकीकृत दलित आंदोलन पर कोई चर्चा करे या न करे लेकिन सभी एक ही लक्ष्य अस्पृश्यता के पूर्ण उन्मूलन की दिशा में काम करते हैं। इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए जो राजनीति माध्यम चुने जाते हैं वे अलग–अलग हैं लेकिन आखिरी मकसद को लेकर कोई विवाद नहीं है।

दलित आंदोलन और व्यक्तिगत रूप से दलित के सामने जो एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, वह यह है कि क्या हिन्दू धर्म में उनका सशक्तिकरण हो सकता है? यदि हिन्दू धर्म अस्पृश्यता को मान्यता देता है तो क्या कोई इस धर्म से अलग हुए बिना अस्पृश्यता से बच सकता है। डॉ. आम्बेडकर द्वारा 14 अक्तूबर, 1956 को दी गई मिसाल महत्वपूर्ण है। उन्होंने एक ऐसे समारोह का नेतृत्व किया जिसमें लाखों दलितों ने उस धर्म के दमनकारी ढांचे का त्याग कर दिया जिसमें उन्होंने जन्म लिया था। उन्होंने डॉ. आम्बेडकर द्वारा व्यक्त इस विचार "यह मेरा कोई कसूर नहीं था कि मैं अछूत पैदा हुआ मगर यह मेरा संकल्प है कि हिन्दू के रूप में मेरी मृत्यु नहीं होगी" के अनुरूप ऐसा किया।[24] बड़ी संख्या में बौद्ध धर्म को अपनाना और कई बार धर्मान्तरण कार्यक्रमों का आयोजित

24 येओला सम्मेलन में दिए गए भाषण का अंश 13.10.1935, यूआरएल संदर्भ 17.07.07 http://www.buddhiwadi.org/Dr.ambedkar.htm

होना, दलितों द्वारा झेले जा रहे उस अन्याय की जबर्दस्त प्रतिक्रिया थी जिसे वे एक विशेष जाति/वर्ण में पैदा होने के कारण भुगत रहे थे। दलितों को यह महसूस हो गया था कि वह उस धर्म को त्याग सकते हैं जो उनके साथ अमानवीय व्यवहार को उचित ठहराता है। इसका उद्देश्य जातिवादी व्यवस्था के कायम रखने वाले तंत्र का विरोध करना और अपने साथ हो रहे भेदभाव से बचने का ठोस उपाय करना था। इसके बाद कई बार बड़ी संख्या में लोगों ने धर्मांतरण किया, जिनमें से कई मामलों को राजनीतिक रंग भी दिया गया। छोटे स्तर पर इस्लाम और ईसाई धर्म अपनाने के भी मामले सामने आए।[25]

भारत में अस्पृश्यता के भविष्य की स्थिति के बारे में बताना कठिन काम है, क्योंकि बहुत कम लोग पक्के तौर पर दलितों की मदद के लिए आगे आएंगे। हिन्दू धर्म केवल भारतीय उपमहाद्वीप में सीमित है और यह भौगोलिक तथा सांस्कृतिक तौर पर अनूठा है। निस्संदेह अस्पृश्यता का भविष्य तय करने में हिन्दू धर्म ही कोई महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। वर्ष 1980 तक प्रभुत्व में रही धर्म निरपेक्ष अवधारणा को भले ही अब इतना महत्व नहीं मिल रहा है। बावजूद इसके यह कहना भ्रामक होगा कि आधुनिकता ने धर्म की भूमिका को प्रभावित नहीं किया है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने हिन्दू धर्म के उन कुछ सिद्धांतों को नरम बना दिया है जिन्हें पहले निरंतर और स्थाई माना जाता था। पारम्परिक शुद्धता के कड़े नियमों का पालन नहीं किया जाना अब खास तौर पर उस ब्राह्मण वर्ग में भी दिखाई देता है जो इसका कट्टरता से पालन करता था। इसी तरह समाज के कई वर्गों में अंतर्जातीय विवाह अब भी बदनामी का कारण बना हुआ है, फिर भी ऐसे विवाह अब ज्यादा हो रहे हैं। पुराने सामाजिक ढांचे के धीमे लेकिन निश्चित रूप से कम होते असर को आधुनिकीकरण की देन बताया जा रहा है। भारत में क्या ऐसी प्रवृत्ति बनी रहेगी? यह एक सवालिया निशान है? यह राष्ट्रवादी हिन्दू राजनीति की दशा–दिशा पर निर्भर होगा।

---

25 अफसरशाही में उच्च जाति के प्रतिनिधि अब धर्मांतरण विरोधी कानून लाकर इस विकल्प को खत्म कर रहे हैं। उन सात राज्यों में ऐसे कानून है जिनमें से ज्यादातर में कानून पारित किए जाने के समय हिन्दू राष्ट्रवादी भारतीय जनता पार्टी का शासन था। ये कानून संविधान के अनुच्छेद–25 में धर्म चुनने या उसके पालन करने की स्वतंत्रता की गारंटी के विपरीत हैं। संविधान का अनुच्छेद–25 प्रत्येक नागरिक को धर्म अपनाने, पालन करने और उसका प्रचार करने की स्वतंत्रता देता है। ये कानून इंटरनैशन कवनेन्ट ऑन सिविल एंड पॉलिटिकल राइट्स के अनुच्छेद–18 के खिलाफ हैं और ये भारतीय संविधान के धर्म निरपेक्षता के मूल सिद्धांत के भी विपरीत हैं। धर्मांतरण विरोधी कानूनों का कथित रूप से मकसद दलित लोगों की हिन्दू धर्म को त्यागने की इच्छा के विपरीत धर्मांतरण रोकना है। दरअसल उन्हें इच्छा से धर्म बदलने से रोका जाता है। यह विरोधाभास ही है कि जो वर्ग मंदिरों में दलितों के प्रवेश के खिलाफ थे, वही लोग अब दलितों द्वारा हिन्दू धर्म का त्याग करने पर हाय–तौबा मचा रहे हैं। मौजूदा हालात में धर्मांतरण का विरोध कर रहे उच्च जाति के सदस्यों को सोचना होगा कि दलित क्यों हिन्दू धर्म के बाहर विकल्प तलाश रहे हैं। धर्म बदलने के असली कारण का पता लगाया जाना समय की जरूरत है, क्योंकि यह दावा किया जाता है कि दलितों का धर्म जबर्दस्ती बदला जा रहा है और दलितों का उनके नए धर्म गुरुओं द्वारा शोषण किया जा रहा है, और इस तरह धर्मांतरण का विरोध करने वाले उच्च जाति के लोग मुख्य विषय से ध्यान हटाने की कोशिश कर रहे हैं

भारतीय जनता पार्टी और इससे संबद्ध संगठनों के आधिकारिक रवैये में शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व तथा नागरिकता और राजनीतिक अधिकारों की आधुनिक अवधारणा की बात की जाती है मगर उनका अंदरूनी संदेश कुछ और ही है।

यह कहना सही है कि शुद्धता/अशुद्धता के सिद्धांत पर आधारित अस्पृश्यता के धार्मिक उपदेश का असर कम हुआ है। ऐसा शहरी क्षेत्र में ज्यादा दिखाई देता है जहां अलगाव बनाया रखना व्यावहारिक नहीं है मगर गांवों में अभी ऐसा परिवर्तन नहीं आया है। इस न्यायाधिकरण में लाए गए मामलों की संख्या से ही हालात का पता चलता है। इसमें दिए गए बयानों से देखा जा सकता है कि कई मामले शुद्धता/अशुद्धता से संबंधित नहीं होते, अपितु उत्पादन के साधनों के स्वामित्व, शिक्षा तक पहुंच और पंचायत स्तर पर निर्णय में भागीदारी से संबंधित होते हैं। अन्य शब्दों में दलितों पर किए जा रहे अत्याचारों का मकसद उन्हें आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक क्षेत्र में सशक्तिकरण से वंचित रखना है। जैसा कि पहले देखा गया है कि जाति प्रथा समाज में दासता का कारण बनती है और भूमि के स्वामित्व से वंचित दलितों को उच्च जाति के भूस्वामियों की सेवा करने को मजबूर किया जाता है। ऐसे भी कई मामले हैं जब दलित किसानों को जमीन मिली और उन पर ब्राह्मणों ने नहीं बल्कि अन्य जाति के सदस्यों ने अत्याचार किया जिनकी शुद्धता उतनी महत्वपूर्ण नहीं थी। इन अत्याचारों के पीछे के मकसद को समझे जाने की जरूरत है जो आर्थिक और राजनीतिक हितों के टकराव से जुड़ा हो सकता है।

यदि संक्षेप में कहा जाए तो अस्पृश्यता के लिए धार्मिक मान्यता कुछ हद तक महत्वहीन हो रही है, परंतु अस्पृश्यता प्रथा में उसी दर से कमी नहीं आई है और अस्पृश्यता के पुराने स्वरूपों ने नया रूप ले लिया है। अगर दलितों के साथ कठोर रूप से अस्पृश्यता का व्यवहार नहीं किया जाता है पर उनकी अनदेखी की जा रही है। वचनबद्धता के कारण कुछ दलित सशक्त बने हैं जिनके लिए मुख्य रूप से आरक्षण नीति जिम्मेदार है। इसके बावजूद सरकार में विशेष तौर पर उच्च जाति के सदस्यों का बोलबाला है और यह पता लगाना बहुत कठिन है कि दलितों को सशक्त बनाने में उनका कितना हित है? राजनीतिक क्षेत्र में इस मुद्दे के प्रति निस्संदेह अविश्वसनीय भ्रांति है। इसका उदाहरण प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के 2006 के भाषण पर हुई प्रतिक्रिया से मिलता है। प्रधानमंत्री ने इस भाषण में कहा, "60 वर्ष के संवैधानिक और कानूनी संरक्षण के बाद भी देश के कई भागों में दलितों के साथ सामाजिक भेदभाव जारी है।"[26] भाजपा के प्रतिनिधियों ने इस भाषण पर तुरंत प्रतिक्रिया में प्रधानमंत्री की आलोचना करते हुए कहा कि इससे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की छवि धूमिल होगी। कुछ प्रगति तो हुई है मगर संविधान द्वारा 60 वर्ष पहले अस्पृश्यता समाप्त कर दिए जाने के बावजूद इसके संतोषजनक परिणाम नहीं मिले है और ये दुखद स्थिति है।

(इस प्रस्तावना के लेखक फिनलैंड की लीग फॉर ह्यूमन राइट्स के कार्यकर्ता युहो सिल्तानेन हैं।)

---

26 नई दिल्ली में दलित–अल्पसंख्यक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में 27 दिसम्बर, 2006 का प्रधानमंत्री का भाषण। यूआरएल संदर्भ 19.07.07 http://pmindia.nic.in/speech/content.asp?id=482

2 अस्पृश्यता पर भारतीय जन न्यायाधिकरण

12-13 मई 2007, इंडियन सोशल इंस्टीट्यूट, नयी दिल्ली

छप्पन संगठनों ने मिलकर दलितों पर अत्याचार और ज्यादतियों के 67 मामलों की जन सुनवाई 12 और 13 मई 2007 को इंडियन पीपुल्स ट्राइब्यूनल अर्थात् भारतीय जन न्यायाधिकरण के नाम से आयोजित करवाई, 12 सदस्यों के निर्णायक मंडल ने यह सुनवाई की। इन सदस्यों में उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश, पूर्व वरिष्ठ अधिकारी और प्रमुख सामाजिक कार्यकर्ता शामिल थे। उन्होंने प्रत्येक मामले को धीरज से सुना। निर्णायक मंडल ने अपने सुझाव देने के अलावा मामलों की सुनवाई के बाद आधिकारिक सिफारिशें भी कीं।

जन न्यायाधिकरण में सुने गए ज्यादतियों के मामले दलितों के साथ किए जा रहे अन्यायपूर्ण व्यवहार के कई कारणों की ओर संकेत करते हैं, लेकिन इनके अलावा अन्य कारण भी हैं जो मौजूदा जातिगत भेदभाव और हिंसा के आधार बनते हैं। ये कारण हैं– बेहद गरीबी और विभिन्न संसाधनों तथा जन शिकायत निवारण प्रणाली तक पहुंच नहीं होना। ये मामले न केवल स्पष्ट रूप से जघन्य अपराध को जाहिर करते हैं अपितु यह भी उजागर करते हैं कि किस प्रकार दलितों को विभिन्न स्तरों पर उत्पीड़न और दुर्व्यवहार का शिकार होना पड़ता है। इसका नतीजा परेशानियों, हिंसक हमलों और कत्ल में भी हो सकता है। इन दुष्प्रभावों के अलावा, समाज को बेहद नुकसान भी हो सकता है। इससे भारत के विश्व के दूसरे बड़े लोकतंत्र होने तथा 21वीं शताब्दी की महाशक्ति बनने के नैतिक दावे पर सवालिया निशान लगता है। जन न्यायाधिकरण में हिस्सा लेने के लिए पीड़ित विभिन्न राज्यों के दूर दराज इलाकों और राजधानी से भी आए थे। जन सुनवाई में बातचीत और विचारों का आदान–प्रदान भाषा की कठिनाइयों और अन्य बाधाओं के बावजूद संभव हुआ। पीड़ित दलितों ने अपने साथ हुए जुल्म और बदसलूकी की पूरी दास्तां अपनी–अपनी भाषाओं में सुनाई।

इनमें से कुछ मामले तो महज एक माह पुराने थे और कुछ कई–कई साल से लटके हुए थे, जिनका कोई हल नहीं निकल सका था। इस सुनवाई से पता चला कि किस तरह जातिगत दुर्भावना के रवैये के चलते निचले स्तर पर अदालती कामकाज में कोताही हुई है। अधिकतर मामलों से पता चला कि किस तरह न्यायिक प्रणाली दलितों की पहुंच से दूर रही है और इससे इस प्रणाली की खामियां भी उजागर हुयीं।

ज्यादातर पीड़ित इंसाफ की उम्मीद से इस ट्राइब्यूनल में आए। निर्णायक मंडल के सदस्यों ने स्पष्ट किया कि यह सुनवाई महज एक नागरिक पहल है फिर भी ट्राइब्यूनल की सुनवाई से स्थिति की गंभीरता का पता चला। यह मानवाधिकार उल्लंघन तक सीमित नहीं रही बल्कि इससे ट्राइब्यूनल संबंधित मुद्दों पर विसतृत रिपोर्ट तैयार करने में कामयाब रहा।

दलितों के लिए कार्य कर रहे राष्ट्रीय और राज्य स्तर के कई संगठन आईपीटी की सुनवाई में मौजूद थे। ये संगठन थे–

राष्ट्रीय संगठन

1. ऑल इंडिया दलित महिला अधिकार मंच, दिल्ली
2. अनहद, दिल्ली
3. सेंटर फॉर बजट गवर्नेंस एण्ड एकाउंटेबिलिटी, दिल्ली
4. ईआइडीएचआर – सिविल सोसाइटी इनिशिएटिव
5. ह्यूमन राइट्स लॉ नेटवर्क, दिल्ली
6. इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ दलित स्टडीज, दिल्ली
7. इंडियन सोशल इंस्टीट्यूट, दिल्ली
8. नैशनल कैम्पेन ऑन दलित ह्यूमन राइट्स, दिल्ली
9. नैशनल कॉन्फेड्रेशन ऑफ दलित ऑर्गेनाइजेशन्स, दिल्ली
10. नैशनल दलित फोरम, हैदराबाद
11. नैशनल फेडरेशन ऑफ दलित वीमेन, बंगलौर
12. पीपुल्स वॉच, मदुरै
13. सफाई कर्मचारी आंदोलन, दिल्ली
14. सोशल इक्विटी ऑडिट
15. साउथ एशियन पीपुल्स इनिशिएटिव, दिल्ली

राज्य संगठन

1. आम्बेडकर–लोहिया विचार मंच, उड़ीसा
2. बिहेवियरल साइंस सेंटर, गुजरात
3. कदम, दिल्ली
4. कैम्पेन ऑन ह्यूमन राइट्स, महाराष्ट्र
5. सेंटर फॉर दलित राइट्स, राजस्थान

6. सेंटर फॉर सोशल जस्टिस, गुजरात
7. दलित एक्शन ग्रुप, उत्तर प्रदेश
8. दलित बहुजन फ्रंट, आंध्र प्रदेश
9. दलित बहुजन श्रमिक यूनियन, आंध्र प्रदेश
10. दलित दासता विरोधी आंदोलन, पंजाब
11. दलित मन्नुरमै कुटामाइप्पू, तमिलनाडु
12. दलित मुक्ति मिशन, बिहार
13. दलित मुक्ति मोर्चा, चंडीगढ़
14. दलित स्त्री शक्ति, आंध्र प्रदेश
15. डेवलपमेंट इनिशिएटिव्स, उड़ीसा
16. डायनैमिक एक्शन ग्रुप, उत्तर प्रदेश
17. एविडेंस, तमिलनाडु
18. गरिमा अभियान, मध्य प्रदेश
19. ह्यूमन राइट्स फोरम फॉर दलित लिबरेशन, तमिलनाडु
20. आइईडीएडीएस, केरल
21. जोगिनी व्यवस्था व्यतिरेखा पोराता संगठन, आंध्र प्रदेश
22. कच्रा वाहतुक संघर्ष समिति, महाराष्ट्र
23. नारी गुंजन, बिहार
24. नवसर्जन, गुजरात
25. न्यू एन्टिटी फॉर सोशल एक्शन, कर्नाटक
26. पीपुल्स विजिलेंस कमिटी ऑन ह्यूमन राइट्स, उत्तर प्रदेश
27. साक्षी ह्यूमन राइट्स वॉच, आंध्र प्रदेश
28. सोशल वॉच, तमिलनाडु
29. सोशल अवेयरनेस सोसाइटी फॉर यूथ, तमिलनाडु
30. तमिलनाडु दलित वीमेन मूवमेंट, तमिलनाडु
31. त्रुंबूर लिबरेशन मूवमेंट, तमिलनाडु
32. विकल्प, उड़ीसा
33. वर्किंग पीजेंट्स मूवमेंट, तमिलनाडु
34. यूथ फॉर सोशल जस्टिस, महाराष्ट्र

(i) स्वागत भाषण

कॉलिन गोन्साल्विस, संस्थापक निदेशक, ह्यूमन राइट्स लॉ नेटवर्क : ट्राइब्यूनल ने ऐसे समय में सुनवाई आयोजित की है जब देश के विभिन्न हिस्सों से अस्पृश्यता यानी छूआंछूत की लगातार खबरें मिल रही हैं। दलितों पर ज्यादती करने वालों ने बेदर्दी से उनकी जायदाद, जमीन और सारे हक छीन लिए हैं। इतना ही नहीं मंदिरों में भी वे जा नहीं सकते। दलित आखिर कब तक इसे बर्दाश्त करेंगे? देश भर में लोग पूरी तरह से महसूस कर रहे हैं कि अब किसी के भी खिलाफ ये सब और बर्दाश्त नहीं किया जा सकता हालांकि दलित ही प्रमुख रूप से भेदभाव, अत्याचार और बदले की भावना के शिकार होते हैं।

पॉल दिवाकर, सहयोगी संस्थापक, नैशनल कैम्पेन ऑन दलित ह्यूमन राइट्स : मेरा सलाम – जय भीम – उन सभी को जिन्होंने इस देश में जातिवाद की घिनौनी रिवायत को चुनौती दी है और जो न केवल दलित समुदाय बल्कि पूरी मानवता के हितों की हिफाजत के लिए हर कुर्बानी देने को तैयार हैं। आईपीटी ने आज उन 56 संगठनों को आमंत्रित किया है जो पिछले 20 वर्ष से राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मिल कर काम कर रहे हैं, ताकि सदियों से जारी जातिवाद और छुआछात की परम्परा को जड़ से उखाड़ा जा सके। हम इस व्यवस्था को चुनौती देने वालों के साथ एकजुटता जाहिर करने के लिए ही नहीं एकत्रित हुए हैं अपितु हम इसे पूरी तरह समाप्त करना चाहते हैं। अस्पृश्यता जैसी बुराई दूर करने के लिए हमें अपनी मानसिकता बदलनी होगी और सभी संशय मिटाने होंगे। अस्पृश्यता की समस्या फौरन दूर किए जाने की जरूरत है, ताकि किसी महिला, पुरुष या बच्चे को ऐसे घिनौने अपराध का शिकार न होना पड़े। छूआछूत से जुड़े मामलों की गंभीरता के मद्देनजर ही यह जन सुनवाई आयोजित की जा रही है। आईपीटी ने इन 56 संगठनों को एक बार फिर एक साथ मिल बैठने का मौका दिया है और हम उनके व्यापक अनुभव को सुनने के लिए उत्सुक हैं। उनके पास न केवल उत्पीड़न का दर्द भरा विवरण है बल्कि साहसपूर्ण संघर्ष और विपरीत हालात में बने रहने का विवरण भी है। इस संघर्ष के अंतर्गत राज्य और संवैधानिक संस्थाओं को चुनौती दिए जाने की जरूरत है। न्यायमूर्ति एच सुरेश ने सही बताया है कि इंसाफ दिलाना सरकार की जिम्मेदारी है और हमें इस

देश का नागरिक होने के नाते इंसाफ की मांग करनी चाहिए। आने वाले वर्षों के लिए राष्ट्रीय एजेंडा तय किया जाना चाहिए, जिससे अस्पृश्यता इतिहास के कूड़ेदान में फेंका जा सके। हम चाहते हैं कि इस ट्राइब्यूनल की सुनवाई के बाद दलितों के मानवाधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले सभी लोग एकत्रित होकर राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, गृह मंत्री, कानून मंत्री तथा सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री तथा दलितों के सशक्तिकरण के लिए उन्हें समुचित अवसर सुनिश्चित कराने वाले सरकारी आयोगों के प्रमुखों समेत विभिन्न प्रमुख पदाधिकारियों से मुलाकात करें। मुझे उम्मीद है कि आप सभी मिल कर अस्पृश्यता खत्म करके और इंसाफ के जरिए उत्पीड़न, दहशत और त्रासदी के माहौल को पूरी तरह अतीत बना देंगे।

(ii) जमीन और साझा प्राकृतिक संसाधनों से वंचित

दलितों की भूमि पर कब्जे की घटनाओं से वे सदियों से पीड़ित रहे हैं। आजादी के बाद दलित आंदोलन के फलस्वरूप 1970 के दशक में दलितों को जमीन दिए जाने के लिए कुछ कदम उठाए गए। लेकिन नौकरशाही की अनदेखी के कारण भूमि सुधार कार्यक्रम ने दम तोड़ दिया। इसके बाद फिर भूमि पर कब्जे होने शुरू हो गए। ऐसा उन इलाकों में हुआ जहां दलित कुछ हद तक खुशहाल होने लगे थे। स्थानीय और कई बार जिला स्तर पर पूर्वाग्रह के कारण तरह–तरह की हिंसा और भेदभाव की घटनाएं हुयीं और इनमें प्रशासनिक अधिकारियों ने भी अपनी भूमिका नहीं निभाई।

दलितों में से अधिकतर दलित खेती से अपनी रोजी–रोटी कमाते हैं और कृषि जमीन से बेदखली और इससे जुड़े टकराव दलितों के मानवाधिकार के गंभीर उल्लंघन के मुख्य कारण हैं। अस्पृश्यता के मामलों में जमीन का मालिकाना हक प्रमुख भूमिका निभाता है क्योंकि यह सदियों से ग्रामीण दलितों को कमजोर बनाने का एकमात्र कारगर कारण बना हुआ है और शायद बना रहेगा।

सदियों से कृषि आधारित समाज में जमीन का मालिकाना हक होना इज्जत का कारण माना जाता रहा है और इससे कृषक परिवारों को आगे बढ़ने का अवसर मिला है। यदि इसे भारतीय संदर्भ में बढ़ावा दिया जाए तो इससे जाति पर आधारित व्यवस्था ढहने लगेगी। यह जरूरी भी है क्योंकि अतीत में भूमि का बटवारा जाति के आधार पर होता रहा है। दलितों और उच्च जाति के लोगों के बीच संतुलित व्यवस्था बनाए रखने के लिए यह जरूरी भी है। विश्व भर में इसे बार–बार स्वीकार किया गया है कि कुल मिला कर जीवन की गुणवत्ता के साथ जमीन का स्वामित्व जुड़ा हुआ है भले ही यह स्वामित्व छोटी सी जमीन में टुकड़े का ही क्यों न हो। जमीन के स्वामित्व के साथ सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा निहित है और जहां भूमि का स्वामित्व नहीं है वहां बंधुआ मजदूर और अन्य प्रकार की जबरन मजदूरी होती है।

अंग्रेजों के शासन काल में सरकार ने भूमि के मालिकाने की लगभग सामंती व्यवस्था लागू की जिसके अंतर्गत कुछ–एक असरदार लोगों के पास ही जमीन का मालिकाना था जो खेती के लिए गरीबों को पट्टे पर जमीन देते थे। इस व्यवस्था को इतना अधिक शोषणकारी माना गया कि आजादी के बाद समानता के आधार पर भूमि के बटवारे की पहल शुरू हुई। ऐसा इसलिए सुनिश्चित करने के लिए किया गया कि चाहे यह व्यवस्था पूरी तरह समाप्त न हो पाए तो भी कुछ हद तक भूमिहीन मजदूरों की मदद की जा सके। पश्चिमी बंगाल जैसे राज्य के अपवाद को छोड़ कर अन्य राज्यों में ऐसी योजनाएं अपर्याप्त साबित हुई हैं। भूमि सुधारों के तहत कुछ ताकतवर भूपतियों से जमीन लेकर आम लोगों को बांटने में कामयाबी मिली मगर कुल मिला कर दलित किसानों को इससे कोई फायदा नहीं मिला। भूमि सुधारों से दरअसल जिस वर्ग को फायदा मिला वह मध्यम आकार के खेतों के किसान थे। भूमि के यह मालिक उच्च जाति के थे। आजादी के बाद के भूमि सुधार कार्यक्रमों से ग्रामीण दलितों को बहुत कम सशक्त बनाया जा सका। भूमि सुधारों की असफलता के पीछे राजनीतिक इच्छा–शक्ति का अभाव, न्यायिक प्रणाली की जटिलता और स्थानीय अदालतों के अक्सर दलित विरोधी फैसले मुख्य कारण रहे हैं।

भूमि सुधारों पर अमल राज्य स्तर पर किया जाता है। सरकार दिशानिर्देश तैयार करती है मगर इस पर वास्तविक अमल सरकार नहीं कर सकती, जिसकी वजह से इस मामले में विभिन्न सरकारों के कामकाज में बहुत असमानता रही है। इतना ही नहीं जब दलितों को भूमि वितरित की जाती है तो वितरित भूमि का स्थान अव्यावहारिक होता है, वहां सिंचाई सुविधाएं पर्याप्त नहीं होती हैं और भूमि भी लगभग बेकार, बंजर सी होती है। कई मामलों में तो ऐसी भूमि के मालिकाने के

कागजात भी सही नहीं होते जिससे उच्च जाति के भूमालिक स्थानीय पुलिस की मदद से जमीन पर गैरकानूनी कब्जा कर लेते हैं। गुजरात में 1996 में किए गए सर्वेक्षण से पता चला कि लगभग सभी 250 गांवों में दलितों के पास जमीन का कानूनी हक था, मगर बावजूद इसके खेती की जमीन पर उनका कोई कब्जा नहीं था। जिन कुछ लोगों के पास जमीन का मालिकाना हक था उन्हें लगातार उच्च जाति के दुर्व्यवहार और भेदभाव का सामना करना पड़ता था और इस कारण वे ग्रामीण उच्च जाति के बदले के भय से भूमि स्वीकार नहीं करते थे जो कृषि सुधारों के अनुसार इसके पात्र थे।[27] बिहार विशेष तौर पर भूपतियों द्वारा रकम देकर रखे गए हथियारबंद लोगों और कृषि सुधार के लिए संघर्षरत माओवादियों के बीच हिंसा के लिए मशहूर है। हथियारबंद लोगों की हिंसा के शिकार लोगों का प्रायः माओवादी उपद्रव से कोई संबंध नहीं होता है।

संविधान के कामकाज की समीक्षा के लिए राष्ट्रीय आयोग (एनसीआरडब्ल्यूसी) ने दलितों के सशक्तिकरण के लिए भूमि सुधारों को अत्यंत महत्वपूर्ण साधनों में से प्रमुख माना है और कहा है–

> *"आयोग सिफारिश करता है कि विभिन्न स्रोतों (वास्तविक सार्वजनिक उपयोग के लिए अनावश्यक सरकारी भूमि, भूदान के लिए निर्धारित भूमि, हदबंदी की अतिरिक्त जमीन आदि) का भूमि सुधारों के अंतर्गत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों में बटवारा किया जाना चाहिए और साथ ही कम ब्याज दर पर रकम और कर्ज दिया जाना चाहिए तथा सिचाई और अन्य तरीके से ऐसी भूमि का विकास किया जाना चाहिए।"*[28]

राष्ट्रीय दलित मानवाधिकार अभियान (एनसीडीएचआर) के अनुसार वर्तमान में भूमि सुधारों के लिए निर्धारित जमीन में से केवल 69.5 प्रतिशत बांटी गई है। ऊपर से यह जमीन केवल 34.6 प्रतिशत दलितों को ही मिल सकी है।[29] भूमि पर दलित के मालिकाने का स्तर हालांकि देश भर में बहुत कम है, लेकिन कुछ राज्यों में स्थिति अन्य राज्यों से बदतर है। नैशनल फेडरेशन आफ दलित लैंड राइट्स मूवमेंट्स (एनसीडीएचआर) की एक शाखा, द्वारा नीचे दी गई सूची में उन पांच राज्यों का विवरण दिया गया है जहां भूमिहीन दलित परिवारों का अधिकतम प्रतिशत है।[30]

---

27 ह्यूमन राइट्स वाच, ब्रोकन पीपुल : कास्ट वायलेंस अगेंस्ट इंडियाज अनटचेबल्स

28 नैशनल कमीशन टु रिव्यू दि वर्किंग ऑफ दि कांस्टीट्यूशन (एनसीआरडब्ल्यूसी), कमीशन की रिपोर्ट यूआरएल संदर्भ 21.08.07 http://lawmin.nic.in.ncrwc/finalreport/v1ch10.htm
यूआरएल संदर्भ 14.08.07 http://www.hrw.org/reports/1999/india/india994-04.htm

29 ह्यूमन राइट्स वॉच, हिडन अपार्थाइड : कास्ट डिस्क्रिमिनेशन अगेंसट इंडियाज अनटचेबल्स, यूआरएल संदर्भ 14.08.07 http://www.hrw.org/reports/2007/india0207/india0207/9.htm#_ftnref461

30 नैशनल फेडरेशन फ़ॉर दलित लैंड राइट्स मूवमेंट्स, यूआरएल संदर्भ 24.07.07 http://220.226.204.214:9673/ncdhr/campaigns/national-federation-for-Dalit-land-rights-movements-nfdlrm/

क्रम सं.	राज्य	1999–2000 में भूमिहीन अनुसूचित जाति परिवारों का प्रतिशत
1.	बिहार	23.8
2.	गुजरात	18.1
3.	महाराष्ट्र	16.7
4	तमिलनाडु	15.1
5.	पंजाब	12.2

भूमिहीनता और लगभग भूमिहीनता के बीच अंतर महसूस किए जाने की आवश्यकता है। भूमिहीनता के बारे में आंकड़े हालांकि निराशाजनक हैं पर दर्दनाक नहीं हो सकते, लेकिन जब इनमें लगभग भूमिहीनता के आंकड़े शामिल किए जाएं (यानी किसी के पास 0.4 हेक्टेयर से कम भूमि हो) तो इन आंकड़ों से भयानक स्थिति सामने आती है। इंटरनैशनल काउंसिल आन ह्यूमन राइट्स पॉलिसी द्वारा "दि इकोनॉमिक एक्सकलजन ऑफ दि दलित्स इन इंडिया" नामक, प्रकाशित रिपोर्ट में छुआछूत के आंकड़ों के अनुसार कुल प्रतिशत 86 है। नीचे की सूची में उन पांच राज्यों का विवरण दिया गया है जिनमें भूमिहीन और लगभग भूमिहीन दलित परिवारों का अधिकतम प्रतिशत है–

क्रम सं.	राज्य	1999–2000 में भूमिहीन और लगभग भूमिहीन अनुसूचित जाति परिवारों का प्रतिशत
1.	पंजाब	94.70
2.	केरल	93.80
3.	हरियाणा	91.80
4.	बिहार	90.90
5.	तमिलनाडु	88.70

दलित कृषकों के लिए भूमि तक पहुंच की संभावना क्षीण लगती है। भूमिसुधार पर बहस को मीडिया की मुख्यधारा से पीछे धकेल दिया गया है और तेजी से उदार हो रही अर्थव्यवस्था से निस्संदेह आने वाले समय में भूमिहीन और लगभग भूमिहीन अनुसूचित जाति के सदस्यों की संख्या में बढ़ोतरी होगी। विदेशी पूंजी निवेश आकर्षित करने के लिए विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना या तो दलितों की जमीन पर की जाती है या उस भूमि पर जो भूमि सुधार कार्यक्रम के अंतर्गत दलितों को बांटी जानी होती है।

उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जिले के चमलपुर गांव का दलित वर्ग

उच्च जातियों के लोगों ने दलितों पर गोलियां चलायीं

इलाहाबाद के बहरिया पुलिस थाने के अंतर्गत चमलपुर गांव स्थित है। यह गांव जिला मुख्यालय से 30 किलोमीटर की दूरी पर है। गांव की जनसंख्या 3,700 है। सरकार ने 1975 में गांव से महज 500 मीटर दूर सात दलित परिवारों को जमीन आवंटित की थी। इनमें से चार पासी और

तीन चमार थे। तभी से इस जमीन पर दलित परिवार खेती कर रहे थे और यह उनकी रोजी–रोटी का एकमात्र स्रोत था। 11 अक्तूबर 2006 को दिन में लगभग 2.30 बजे महादेव के पुत्र लाल बहादुर और उसके परिवार के सदस्यों ने इस जमीन पर मकान की चिनाई शुरू कर दी। दलितों ने इसकी खबर मिलते ही जल्दी से सिकन्दराबाद पुलिस थाने में जा कर शिकायत दर्ज कराने की कोशिश की। पुलिस अधिकारियों ने शिकायत दर्ज करने के बजाए दलितों को हतोत्साहित किया और उन्हें डराया। पुलिस उप–महानिरीक्षक के पास एक अर्जी भेजी गई। वहां से कोई जवाब नहीं मिला। इसके बाद दलित अपनी जमीन वाली जगह पर आए और उन्होंने उच्च जाति के लोगों से वहां निर्माण रोक देने का अनुरोध किया। उन्होंने अदालत का स्थगन आदेश भी दिखाया परंतु यादवों ने उन्हें गाली देना और धमकाना शुरू कर दिया। इसके तुरंत बाद यादवों ने उन पर गोलियां चलायीं। लगभग 23 यादव थे तथा उनके पास बंदूकों के अलावा लाठियां और छड़ें भी थीं, जिनसे उन्होंने हमला किया। गोलीबारी में 21 दलित घायल हुए, जिनमें से छह को गंभीर चोटें आईं। घायलों में 30 से 45 वर्ष की छह महिलाएं भी थीं। गोली मारने और पीटने के बाद दलितों को खेत में ही छोड़ दिया गया। यादवों के चले जाने के बाद जब कोई व्यक्ति वहां से गुजरा तो घायलों को अस्पताल ले गया। घायल होने के बावजूद तुरंत एफआईआर नहीं दर्ज की गई। बाद में किसी व्यक्ति ने घायलों में से एक वृद्ध आदमी के पास पहुंच कर उससे एक रिपोर्ट पर अंगूठा लगवा लिया जिनमें केवल 10 लोगों पर आरोप लगाए गए थे, जबकि इस हमले में 23 लोग शामिल थे। उसमें से भी पुलिस अधिकारी ने दो प्रमुख आरोपियों के नाम काट दिए। घायलों ने स्वस्थ होने के बाद अधिकारियों को अर्जियां भेजनी शुरू कर दीं। लेकिन कोई कार्रवाई नहीं की गई। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति आयोग के तहत कोई मामला दर्ज नहीं हुआ। अभी तक पीड़ितों को नुकसान का कोई मुआवजा भी नहीं मिला है। उनके शरीर में अब भी गोलियां हैं। 20 पीड़ितों की चिकित्सा जांच रिपोर्ट में पुलिस ने तथ्यों से छेड़खानी की। पुलिस ने गोलियों से घायल लोगों की संख्या भी कम कर दी। पीड़ितों ने गवाही दी कि पुलिस इस घटना में शामिल थी और वह कुछ दूरी पर से सब कुछ देखती रही। पुलिस दोषियों को बचाने और पीड़ितों को न्याय पाने की कोशिश में बाधा उत्पन्न करने में शामिल थी। पीड़ित हिंसा के बाद भूखण्ड से हट गए। अब भी उन्हें हमलावरों से धमकी मिलती रहती हैं क्योंकि पीड़ित विभिन्न स्तरों पर न्याय की कोशिश कर रहे हैं। इस मामले को उत्तर प्रदेश में एनसीडीएचआर की शाखा ने उठाया और इसी माध्यम से यह ट्राइब्यूनल में पहुंचा। यह घटना कानून की निम्नलिखित धाराओं के अंतर्गत आती है–

- भारतीय दंड संहिता की धारा–326
- भारतीय दंड संहिता की धारा–327
- अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम 1989 की धारा–4

यल्ला रत्न राजू और अन्य : आंध्र प्रदेश के कृष्णा और हैदराबाद जिलों के गांववासी

दलितों ने भूमि पर अपना अधिकार जताया

एक ही गांव में एक उच्च जाति के परिवार के तीन बेटों द्वारा किए गए अत्याचारों की ये कुछ कहानियां हैं। माला समुदाय के कनकम्बरम का 12 वर्ष का पुत्र बिरदुगड्डा सुरेश 15 अगस्त 2004 को ध्वजारोहण के बाद स्कूल से अपने मित्रों के साथ लौट रहा था। बिरदुकड्डा सुरेश दुर्घटनावश मछली के एक तालाब में गिर गया। उसके दोस्त दौड़ते हुए गांव में पहुंचे और बड़े लोगों को बुला आए। जब तक वे लौट कर आए, सुरेश की मृत्यु हो गई थी। अगले दिन गांववासियों ने पेड्डा तुमिड्डी की मुख्य सड़क पर मछली के तालाब के उस मालिक के विरुद्ध प्रदर्शन किया जिसमें सुरेश गिर कर डूब गया था। प्रदर्शन के कारण तालाब के मालिक बोल्ला राधाकृष्ण को गुस्सा आया। उसने प्रदर्शन करने वाले लोगों को जातिवादी गंदी गालियां दीं।

एक अन्य घटना के अंतर्गत माला समुदाय के गंगैया के 50 साल के पुत्र यल्ला रत्न राजू और उनकी बेटी शिरोमणी को हैदराबाद में बोल्ला रविन्द्रनाथ टैगोर के परिसर में काम करने पर मजबूर किया गया, क्योंकि उन्होंने तीन हजार रुपये का कर्ज वापिस नहीं किया था। यल्ला रत्न राजू कृष्णा जिले के बंतुमिल्ली मंडल के पेड्डा तुमिड्डी गांव का निवासी है और यह कर्ज उसने उर्वरक खरीदने के लिए लिया था। नौ महीने तक काम करने के बाद रत्न राजू के पुत्र ने हैदराबाद आकर टैगोर से पूछा कि कई महीने काम करने के बाद भी उसने कर्ज माफ क्यों नहीं किया। 25 अगस्त 2004 को टैगोर को गुस्सा आ गया और उसने रत्न और उसके पुत्र को पीट कर वापिस भेज दिया। टैगोर ने रत्न राजू की बेटी शिरोमणी को जबरन अपने पास रखा और लगभग छह माह तक उसका यौन शोषण किया तथा उसके गर्भवती होने पर उसे पेड्डा तुमिड्डी गांव वापिस भेज दिया। टैगोर ने यह सुनिश्चित किया कि शिरोमणी बंतुमिल्ली में गर्भपात कराए। इस घटना के बाद मामला दर्ज कराया गया जिसे 29 सितम्बर 2004 को सरूरनगर पुलिस थाने स्थानांतरित कर दिया गया। यही नहीं, बोल्ला रविन्द्रनाथ टैगोर ने बंदलागुदेम गांव में अपनी जमीन के नजदीक दलितों के शवदाह स्थल पर कब्जा कर वहां मछली का तालाब बना दिया।

माला समुदाय के गांधी की 50 वर्ष की विधवा पामु कलावती के सात बच्चे थे। उसकी 2.40 एकड़ जमीन, आरएस सं.–838, पर उसी के गांव के बोल्ला रविन्द्रनाथ टैगोर ने कब्जा कर लिया।

उसके पति की एक साल पहले जमीन के झगड़े में मौत हो गई थी। अब तक न तो जमीन लौटाई गई है और न ही उसका भुगतान किया गया है।

पेड्डा तुमिड्डी गांव के रामुलु के पुत्र बोल्ला राधाकृष्ण ने लगभग तीन साल पहले वैवाका गांव के पुट्टी सुब्बाराव, शीलम विमला देवी, मुंदू सुगुनामा, कुर्मा ज्ञानसुंदरम और गवाह गुडिपुडी बालास्वामी की जमीन पर जबरन कब्जा कर लिया। जमीन लौटाने की मांग पर इन लोगों को गंभीर नतीजे भुगतने की धमकियां दी गईं। बोल्ला राधाकृष्ण के डर से इन लोगों ने अभी तक शिकायत नहीं की है।

बंतुमिल्ली मंडल के पेड्डा तुमिड्डी गांव के सरपंच दसारी रमेश, पुत्र वेंकटेश राव 23 अक्तूबर 2004 को रात लगभग साढ़े नौ बजे ससुराल जाने के लिए बंतुमिल्ली में लक्ष्मीपुरम सेंटर पर बस का इंतजार कर रहा था। बोल्ला वेंकट दुर्गा नरसिम्हा वहां पहुंच कर अपनी मोटरसाइकिल पर सरपंच वेंकटेश राव को अपने घर ले गया, जहां उसने सरपंच की यह कहते हुए पिटाई की कि कल पंचायत बोर्ड में फैसला उसके भाई बोल्ला राधाकृष्ण के हक में किया जाए। उसने सरपंच को यह धमकी भी दी कि अगर जमीन उसके दूसरे भाई बोल्ला रविन्द्रनाथ टैगोर के नाम पंजीकृत नहीं की गई तो गंभीर नतीजे भुगतने होंगे। सरपंच दसारी रमेश को रात लगभग 11 बजे उसके घर पर छोड़ दिया गया। रमेश ने इस घटना का पूरा विवरण अपने भाई सुरेश को सुनाया। सुरेश ने 24 अक्तूबर को लगभग सुबह आठ बजे अपने भाई को अखबार लेने के लिए भेजा। सुबह 9.30 बजे के आसपास जब वह वापिस आया तो उसने देखा कि रमेश की मौत हो गई है। उसने फांसी लगा ली थी। दोषी परिवार के एक सदस्य को गिरफ्तार किया गया, मगर उसे बाद में जमानत पर छोड़ दिया गया। कई बार सरकारी अधिकारियों से संपर्क किया गया। मछलीपत्तनम के एसडीपीओ, बंतुमिल्ली के एमआरओ, मुदिनेपल्ली और बंतुमिल्ली के एसआई ऐसे कुछ अधिकारी थे जिनसे संपर्क किया गया। राज्य अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति आयोग और भूमि आयोग से भी संपर्क किया गया। राज्य भूमि आयोग ने विवादित जमीन अपने कब्जे में ले ली, मगर इसे वितरित नहीं किया। अभियुक्तों के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की गई। पीड़ितों की सुनवाई के मद्देनजर, उपरोक्त घटनाओं से निम्नलिखित प्रावधानों का उल्लंघन हुआ है :

- सीईआरडी (जातीय भेदभाव उन्मूलन समिति) के अनुच्छेद–5 की धारा–बी और यूडीएचआर अनुच्छेद–3
- भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) की धारा–323
- भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) की धारा–376
- एससी एसटी पीओए एक्ट की धारा–3 (1) की उपधारा (iv), (v) और (vi)
- आईसीसीपीआर (इंटरनैशनल कवनेंट आन सिविल एंड पोलिटिकल राइट्स), अनुच्छेद–8 (3) (ए)

सुरेन्द्र और अन्य : जिला बांका, बिहार

हमला और जमीन से जबरन बेदखली

सुरेन्द्र के दादा और 12 अन्य दलितों को एक साथ 45 से 48 एकड़ जमीन मिली थी। सुरेन्द्र को अपने परिवार से दो एकड़ और 80 बिस्वा जमीन विरासत में मिली थी। इस बटवारे के बाद से जमीन पर खेती की जा रही थी। सुरेन्द्र के स्कूल में पढ़ने के समय से ही उसके पिता और दादा की गांव के यादवों से अनबन थी। उसके पिता और दादा विशाल यादव के परिवार के यहां मजदूर का काम करते थे। विशाल यादव का परिवार इन दलित मजदूरों का लगातार शोषण करता था। उनकी मजदूरी बहुत कम थी। सुरेन्द्र स्कूल में पढ़ता था मगर उसे सब मालूम था। बाद में सुरेन्द्र के दादा और पिता बहुत बूढ़े हो गए तो यादव परिवार चाहने लगा कि उनकी जगह सुरेन्द्र काम करे। उन्होंने सुरेन्द्र से पढ़ाई छोड़ कर उनके खेतों में काम करने को कहा। सुरेन्द्र ने कभी काम नहीं किया था और न ही कभी हल को हाथ लगाया था, इसलिए उसने इंकार कर दिया। इससे यादव परिवार नाराज हो गया। इनके अलावा यादव परिवार दलितों की महिलाओं को परेशान किया करता था और बेवजह छोटी–छोटी बात पर उनके घरों में घुस जाया करते थे। सुरेन्द्र इसका विरोध करता था। इससे वह और उसका परिवार यादवों की नजर में आ गया। उसकी जमीन पर कब्जा कर लिया गया और उसे खेत से बाहर फेंक दिया गया। सुरेन्द्र पुलिस थाने गया। पुलिस इंस्पेक्टर ने उसे बताया कि यह मामला उसके कार्यक्षेत्र में नहीं आता और उसे सीओ के पास जाने को कहा। सुरेन्द्र ने अब अपनी शिकायत सीओ से की। मामले पर कार्रवाई की गई और सुरेन्द्र अपने हक में फैसला ले आया। उसने गांववालों को इकट्ठा किया और और उन्हें कागजात दिखाए और जमीन पर अपना दावा पेश किया। लेकिन अभियुक्त टस से मस नहीं हुआ। इसके बाद सुरेन्द्र ने अपनी अर्जी डीएम, एसपी, स्थानीय थाने, और एसडीओ को दी। डीएम ने स्थानीय थाने को जांच के लिए कहा। यादवों को पता चल गया कि सुरेन्द्र ने डीएम से शिकायत की है। यादवों ने भाड़े के बदमाशों से उस पर हमला करवा दिया। सुरेन्द्र को अपने पूरे परिवार के साथ भाग कर अपनी मां के पैतृक घर में शरण लेनी पड़ी। वहां भी उनका पीछा किया गया। सितम्बर 2006 की रात लगभग साढ़े ग्यारह बजे जब सुरेन्द्र अपने घर पर नहीं था और बहन के घर गया हुआ था उस समय गुंडों ने उसके घर में घुस कर एक दराती से उसकी मां पर वार किया। उसकी मां के नाक, मुंह और कानों से खून बहने लगा। लोगों ने जा कर सुरेन्द्र को सब कुछ बताया। उसने घर लौट कर देखा कि उसकी मां की हालत गंभीर थी। रात में मां को उपचार या फिर कानूनी शिकायत के लिए बाहर ले जाना संभव नहीं था। उन्होंने सभी जरूरी पक्षों को फोन से सूचित कर दिया और मां को सुबह थाने ले गए। पुलिस अधिकारी ने कहा कि वह जीवित नहीं

बचेगी। सुरेन्द्र नहीं चाहता था कि उसकी मां की मौत हो। पुलिस अधिकारी ने यह कहते हुए शिकायत लिखने से मना कर दिया कि वह बचेगी नहीं और शिकायत लिखने से कोई फायदा नहीं होगा। सुरेन्द्र ने जोर देकर कहा कि पुलिस अधिकारी उसका बयान लिखे। लेकिन पुलिस अधिकारी नहीं माना। सुरेन्द्र पुलिस थाने से अपनी मां को झारखंड देवघढ़ी अस्पताल ले गया। उसने वहां डॉ. रंजन सिन्हा से संपर्क किया। सुरेन्द्र ने डाक्टर से चोट का गलत कारण बताया। सुरेन्द्र ने बताया कि आज सुबह उसकी मां स्टोर से जलावन लकड़ी लेने गई थी और वह सीढ़ी गिरने से दराती से जा टकराई। डॉक्टर ने उसकी मां का उपचार किया और चार दिन बाद वह अपनी मां के साथ वापस आया। सुरेन्द्र के घर लौटने पर हिन्दी समाचार पत्र जागरण का एक संवाददाता उसके घर आया। सुरेन्द्र ने उसे सारी कहानी सुनाई। उसने बताया कि किस तरह झगड़ा हुआ और उसने अपनी मां का इलाज कराने के लिए किस तरह डॉक्टर को झूठ बोला। दैनिक जागरण में 8 सितम्बर को यह खबर छपी। इसके बाद सुरेन्द्र को झूठे मामले में फंसाया गया। सरपंच द्वारा बुलाई गई बैठक में उसे जमीन के सारे कागजात दिखाने को कहा, कागज दिखाए जाने पर उससे कागज छीन लिए और छीनने वाला वहां से भाग निकला। सुरेन्द्र और सात अन्य दलित परिवारों को उनकी जमीन से बेदखल कर दिया गया। कुल मिला कर 55 एकड़ जमीन पर गैर कानूनी कब्जा किया गया। सुरेन्द्र और अन्य परिवार अब बेघर हैं। सुरेन्द्र द्वारा विरोध जारी रखने पर उससे बुरी तरह बदला लिया गया। पुलिस पीड़ितों को कोई समाधान नहीं दे सकी। उनकी अर्जियां स्थानीय थाने से डीएम तक कई अधिकारियों के पास पड़ी हैं, मगर कोई कार्रवाई नहीं की गई।

सुनवाई के मद्देनजर, इस घटना में निम्नलिखित प्रावधानों का स्पष्ट उल्लंघन हुआ :

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम 1989 की धारा–3 (1) (iv), (vi) और (xi)

हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जिले के उस्तेहाद गांव का दलित समुदाय

कॉलेज का निर्माण करने के लिए दलित परिवारों की जबरन बेदखली

चालीस दलित परिवारों को गांव छोड़ कर चले जाने को कहा गया। ये परिवार राज्य सरकार द्वारा उन्हें जमीन के प्लाट दिए जाने के बाद से 1962 से हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जिले में उस्तेहाद गांव के वार्ड नं. 1 में रह रहे थे। जमीन का नाप पटवारी ने किया था। सरकार ने 1974 में घोषणा की थी कि यह भूमि हमेशा के लिए 40 दलित परिवारों को दी जाती है। ये परिवार अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के हैं। इन परिवारों की माली हालत दयनीय है और सरकार ने उन्हें बिजली और पीने के लिए हैंडपम्प के अलावा कुछ और नहीं

दिया। ज्यादातर दलित लोग दिहाड़ी मजदूर हैं। सरकार ने उन्हें जमीन के स्वामित्व का कोई सबूत भी नहीं दिया। उनकी जमीन को अब बिना उपयोग की माना जा रहा है और सरकार अब कॉलेज के निर्माण के लिए इस जमीन पर अपना हक जता रही है। कालेज निर्माण के लिए 35 करनाल रक्बे की जरूरत है, जिसमें से 28 करनाल रक्बा खाली है और 25 करनाल रक्बे में 40 दलित परिवार रहते हैं। दलितों के पास जमीन का दावा पेश करने के लिए मालिकाना हक के कोई सरकारी कागजात नहीं हैं इसलिए उन्हें जमीन खाली करने को कहा गया। गांववासियों ने 5 जून 2006 को इस बारे में एक अर्जी दी। सभी 40 परिवारों ने 17 जुलाई 2006 को पटवारी से भी लिखित शिकायत की। इन अर्जियों और शिकायतों का कोई जवाब नहीं दिया गया, परंतु 15 नवम्बर, 2006 को एसडीएम संदीप कुमार ने उन्हें बेदखली का नोटिस दे दिया। इस मामले को एनसीडीएचआर ने उठाया लेकिन सरकार ने किसी को सुनवाई का मौका नहीं दिया। ये दलित परिवार अपनी कड़ी मेहनत और मामूली बचत से बनाए गए मकानों से हाथ धोने के कगार पर हैं।

आंध्र प्रदेश के महबूब नगर जिले के मेदजिले मंडल के चिल्वेर गांव के कोराला चेन्नय्या और केसवुलु

उच्च जाति के लोगों ने दलितों के खेतों की जल आपूर्ति काटी

चिल्वेर महबूबनगर जिले में मेदजिले मंडल का गांव है। गांव की कुल जनसंख्या लगभग डेढ़ हजार है। गांव में रेड्डी समुदाय का प्रभुत्व है, हालांकि उनके लोगों की संख्या बहुत कम है। गांव के दलित सरकार द्वारा उन्हें दी गई जमीन पर रोजी–रोटी के लिए निर्भर हैं। कोराला चेन्नय्या और उसके भाई केसवुलु को एक–एक एकड़ जमीन मिली थी। उन्होंने 10 अक्तूबर 1999 को बोरवेल खुदवाया जो सफल नहीं हो सका, दोबारा जनवरी 2001 को उन्होंने फिर बोरवेल खुदवाया और इससे पानी मिलने लगा। उन दोनों ने अपनी जमीन पर कपास की खेती की। रेड्डी समुदाय के लोग इसे बर्दाश्त नहीं कर सके। एन्ना रेड्डी, शौरी रेड्डी और मारी रेड्डी ने चेन्नया के प्लाट से 15 फुट की दूरी पर जबरन बोरवेल खुदवाया और तीन किलोमीटर पाइपलाइन बिछा कर अपने खेतों तक ले गए। कोराला चेन्नय्या और उसके भाई के खेतों में फसलें सूख गईं और वे फिर बुआई नहीं कर सके क्योंकि उन्हें पानी की कमी हो गई थी। हाल में एक और बोरवेल खुदवाया गया। चेन्नय्या ने जब इस पर आपत्ति की तो उसे गालियां दी गयीं और पीटा गया। ऐसा अप्रैल के अंत में हुआ। जब उसने आमदनी के अन्य स्रोत तलाशने की कोशिश तो उसे उसके खेतों में नहीं जाने दिया गया। इस बात की कोई जानकारी नहीं है कि कोई शिकायत दर्ज की गई या नहीं। रेड्डी उन्हें लगातार धमकी देते रहे। पीड़ित इस अप्रत्याशित घटनाक्रम से बुरी तरह प्रभावित हुए हैं।

यह भेदभाव अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम 1989 की धारा–3 (1) (v) के कानूनी प्रावधानों का स्पष्ट उल्लंघन है।

राजस्थान के जैसलमेर जिले के भानियाना गांव की भंवरी देवी

दलित महिलाओं का उत्पीड़न

राजस्थान में पोकरण जिले के भानियाना गांव के दलितों के पास अपने छोटे से रहने के स्थान के अलावा बहुत कम भूमि है। दलित गांव को साफ रखने, सफाई करने और मरे पशुओं को दफनाने के काम से ही अपना परिवार चलाते हैं। राजपूत और अन्य प्रभावशाली जातियों के लोग इनसे जाति के आधार पर भेदभावपूर्ण व्यवहार करते हैं। इस गांव में दलित ताजाराम, अपनी पत्नी भंवरी देवी और अपने तीन बच्चों के साथ रहता है। ताजाराम और उसके परिवार को पंचायत ने छोटा सा एक भूखंड दिया हैं यह भूखंड गांव में एक गैरसरकारी स्कूल के निकट है। स्कूल के मालिक को वहां ताजाराम का रहना पसंद नहीं था क्योंकि वह उसकी जमीन को भी स्कूल में शामिल करना चाहता था। शिवदान राम का पुत्र भैराराम 7 दिसम्बर 2006 को उस समय ताजाराम के घर में घुस गया जब भंवरी देवी घर में अकेली थी और उसके साथ केवल दो बच्चे थे। भैराराम ने भंवरी देवी के साथ बलात्कार करने की कोशिश की जिसका उसने जोरदार प्रतिरोध किया। भैराराम ने भंवरी देवी की पिटाई की और उस का घर तहस–नहस कर दिया और कुछ बहुमूल्य वस्तुएं छीन लीं। भंवरी देवी को गंभीर चोट आई और उसका इलाज करवाना पड़ा। इस बीच पड़ोसियों ने इस बारे में ताजाराम को बताया जो दौड़ते हुए घर पहुंचा और उसने रात ही में फोन पर पुलिस को सूचित कर दिया। ताजाराम और भंवरी देवी अगले दिन एफआइआर दर्ज कराने पोकरण पुलिस स्टेशन गए। उन्होंने भानियाना पुलिस चौकी में अपनी जमीन की हिफाजत किए जाने का अनुरोध किया। जब तक भानियाना की पुलिस मौके पर पहुंचती अभियुक्त ने ताजाराम की जमीन पर अपनी पुरानी झोंपड़ी खड़ी कर दी। पुलिस ने भारतीय दंड संहिता की धारा–143, 323, 354 और 379 के अंतर्गत मामला दर्ज किया। उसी दिन अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अत्याचार निरोधक अधिनियम की धारा–3 (1) की उपधारा (x) और (v) के अंतर्गत भी मामला दर्ज किया गया। पीड़ितों ने 10 दिसम्बर 2006 को एनसीडीएचआर तथा पोकरण पुलिस थाने में भी शिकायत की। घटना के गवाहों ने उनके बयानों की पुष्टि की और उन्हें पोकरण पुलिस थाने में जमा कराया। बाद में आरोपपत्र भी दायर किया गया। इसके बावजूद किसी अभियुक्त के खिलाफ कोई कानूनी कार्रवाई नहीं हुई। जिला कलेक्टर और जैसलमेर के जिला उप–मैजेस्ट्रेट के पास शासनादेश भी जमा कराया गया। स्थानीय अखबार में 23 दिसम्बर 2006 को घटना की खबर भी छपी। इस समय पीड़ित परिवार भंवरी देवी के पिता के घर रह रहा है। जिस जमीन पर कब्जा किया गया था उसे पीड़ित परिवार को वापिस नहीं किया गया है। अभियुक्त खुलेआम घूम कर पीड़ितों को भयभीत कर रहे हैं। इस घटना से पीड़ितों की आमदनी पर विपरीत असर पड़ा है। प्रशासन ने पीड़ित परिवार को कोई सहायता या समर्थन नहीं दिया है।

यह घटना निम्नलिखित प्रावधानों का स्पष्ट उल्लंघन है–

- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम, 1989 की धारा–3 (1) (iv) और (x)
- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम, 1989 की धारा–4

आंध्र प्रदेश में गुंतूर जिले के कांटेपुडी गांव का कोप्पुला मनोहरम

दलितों की जमीन से सिंचाई सुविधा हटाया जाना

नरसय्या का पुत्र कोप्पुला मनोहरम काश्तकार और सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारी है। उसने गांव में नालंदा इंजीनियरी कालेज के निकट कृषि जमीन ली। उच्च जाति के चन्द्र मोहन रेड्डी, जयशंकर रेड्डी, शंकर रेड्डी, ए.डी. अप्पा राव और विजय कुमार ने 12 जुलाई 2006 को लगभग 4 बजे उस नहर से पानी निकालना शुरू किया जो मनोहरम के खेतों तक पानी ले जाती है। उस समय मनोहरम ने आपत्ति की। मनोहरम का आपत्ति करना उच्च जाति के लोगों को अच्छा नहीं लगा और उन्होंने उसे गालियां दीं, जिससे हिंसा हुई। उन्होंने मौके पर कोप्पुला मनोहरम की बुरी तरह पिटाई की। मनोहरम को चोट आई मगर उसने लड़ाई जारी रखने का फैसला किया और सतेनापल्ली ग्रामीण पुलिस स्टेशन में रिपोर्ट लिखवाई। पुलिस ने अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3 (1) (v), 3 (1) (x) के अंतर्गत अपराध संख्या 91/06 के तहत मामला दर्ज किया। पुलिस सब–इंस्पेक्टर एस सम्बासिवा राव ने डीएसपी के. वीरभद्र राव और एसपी बी. शिवाधर रेड्डी के निर्देश पर मामला दर्ज किया, मगर आगे कोई कार्रवाई नहीं की गई। इतना ही नहीं मामले की कोई छानबीन भी नहीं की गई। 25 नवम्बर 2006 को उन्होंने गैर–संज्ञान अपराध के लिए दायर आरोपपत्र का हवाला दिया और चन्द्रमोहन रेड्डी तथा अन्य के खिलाफ दीवानी मामला बना दिया। पीड़ितों को कोई मुआवजा नहीं मिला। पीड़ितों ने क्षेत्र के जिला कलेक्टर, गुंतूर के आरडीओ, सतेनापल्ली के एसपी से संपर्क किया। स्थानीय अखबार ने भी घटना का विवरण प्रकाशित किया, मगर कोई तुरंत और अनुकूल कार्रवाई नहीं की गई। दलितों के अधिकारों के लिए कार्य कर रहा राज्य स्तरीय संगठन दलित बहुजन फ्रंट इस मामले पर काम कर रहा है और पीड़ितों को इस लड़ाई में मदद दे रहा है।

इस घटना से पता चलता है कि अभियुक्तों ने अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम 1989 की धारा–3 (1) (v) का स्पष्ट उल्लंघन किया है।

राजस्थान में जयपुर जिले के चकवारा गांव का दलित समुदाय

एक सार्वजनिक तालाब को 'अपवित्र' करने के लिए दलितों को पीटा और अपमानित किया गया

चकवारा पंचायत का एक छोटा सा सार्वजनिक तालाब है, जिसका इस्तेमाल सभी समुदाय करते हैं। पर इसमें दलित केवल अपने लिए तय घाटों का ही उपयोग कर सकते हैं। गणेश घाट का निर्माण केवल उच्च जाति के लोगों के लिए किया गया था। इस घाट का जल स्तर गहरा है जबकि दलित समुदाय के घाट का जल स्तर कम है। 14 दिसम्बर

2001 को बाबूलाल बैरवा ने गणेश घाट में स्नान किया। इस ओर तुरंत लोगों का ध्यान गया। इस क्षेत्र के गांववासी न केवल जातिवादी व्यवहार करते हैं अपितु मनुवादी जाति व्यवस्था का कट्टर पालन करते हैं। गांव के पटेल समुदाय ने तीनों उच्च जातियों की ओर से बाबूलाल बैरवा और बैरवा समुदाय पर 51,000 रुपये का जुर्माना लगाया। प्रमुत्व वाली जाति के सदस्यों ने बैरवा समुदाय को धमकी दी कि अगर जुर्माने का भुगतान नहीं किया गया तो उनका सामाजिक बहिष्कार किया जाएगा। इससे पहले भी बाबूलाल ने क्षेत्र की पारम्परिक जातिवादी व्यवस्था कमजोर करने की कोशिश की थी। बैरवा समुदाय द्वारा संपर्क किए जाने पर फागी पुलिस ने एफआइआर दर्ज की लेकिन छह माह के बाद भी बैरवा समुदाय को कोई सूचना नहीं दी गई। प्रशासनिक और कानूनी सहायता हासिल करने की कोशिशों का उच्च जाति ने मुंहतोड़ जवाब दिया और उन्होंने फागी पुलिस थाने के अंतर्गत कांसेल गांव में दलितों के कुएं में एक बार नहीं पांच बार मानव मल डाला। स्थानीय पुलिस ने अदालत को अंतिम रिपोर्ट पेश कर दी है। जयपुर की अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति विशेष अदालत ने भी सभी अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया। इसके बाद राजस्थान उच्च न्यायालय जयपुर में आपराधिक पुनर्विचार याचिका दायर की गई। बैरवा समुदाय के लोगों ने जयपुर में दलित मानवाधिकार केन्द्र से संपर्क किया। 20 और 21 सितम्बर 2002 को चाकुस से चकवारा के बीच लगभग 60 किमी. की सद्भावना पदयात्रा निकालने का फैसला किया गया। सभी धर्मों और समुदायों के लोग इस यात्रा में सम्मिलित हुए। यह पदयात्रा जाटों और अन्य असरदाय समुदायों के इलाकों में भी गई लेकिन उन्होंने इसमें हिस्सा नहीं लिया। तीन प्रभावशाली समुदायों ने कहा कि यह सद्भावना यात्रा नहीं दलित यात्रा है। इसमें बाधा डालने के लिए गैरदलित समुदायों ने हड़ताल का आह्वान किया। 20 सितम्बर को पदयात्रा का केवल एक गांव में स्वागत किया गया। 21 सितम्बर को 15 से 20 हजार की भीड़ एकत्रित हुई, जो गैरदलित थे। इन लोगों ने छह किलोमीटर लम्बी रैली निकाली और दलित विरोधी नारे लगाये। उनके पास हर तरह के हथियार थे। सुबह 10 बजे स्थिति अनियंत्रित हो गई इस कारण ग्यारह बजे यह यात्रा समाप्त कर दी गई। पुलिस ने घोषणा की कि यात्रा समाप्त कर दी गई है और उसने लोगों से तितर–बितर होने को कहा। ऐसा न करने पर पुलिस को कुछ बल प्रयोग करना पड़ा और हवा में गोली चलानी पड़ी। यह घटना सभी महत्वपूर्ण सरकारी अधिकारियों यानी जिला कलेक्टर और एसपी के सामने हुई। इस घटना में कुछ पुलिसकर्मी घायल भी हुए। इस घटना के बाद प्रभावशाली जाति के लोगों ने बैरवा समुदाय के लोगों को तालाबों का इस्तेमाल न करने के निर्देश दिए। वर्तमान में उच्च जाति के लोगों ने तालाब का इस्तेमाल बंद कर दिया है और उन्होंने कई बार इसमें मानव मल डाला है। गांव में एक स्थाई पुलिस चौकी स्थापित की गई है, मगर इसका कोई असर नहीं हुआ है। राजस्थान उच्च न्यायालय ने भी अभियुक्तों को दोषमुक्त किए जाने के फैसले को चुनौती देने वाली दलितों की याचिका रद्द कर दी है।

यह घटना निम्नलिखित अधिनियमों के कानूनी प्रावधानों के अंतर्गत दलितों के अधिकारों का स्पष्ट उल्लंघन है–

- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम, 1989 की धारा–4
- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम, 1989 की धारा–3 (1)(x)(xv)
- नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 की धारा–3 उपधारा (बी)

(iii) आवास संबंधी भेदभाव

दलितों के मकान बार–बार उच्च जाति के लोगों के हमलों के शिकार होते रहे हैं। दलितों के पास क्षेत्र में बहुत कम जमीन होती है जो जातिगत परम्परा के तहत एक तरह का नियम है। इसलिए दलितों के लिए समुचित आवास और उनकी खुशहाली का कोई संकेत उच्च जाति के लोगों की आंखों की किरकिरी बन जाता है। इस दुर्भावना से दलितों के खिलाफ़ भीषण हिंसा और बदले की भावना को बल मिलता है, जिससे उनकी जायदाद को नुकसान पहुंचता है। शहरी क्षेत्रों में भी आवास से भेदभाव पुराने ढर्रे पर आधारित है, इसीलिये अधिकतर शहरी दलितों का जीवन स्तर उच्च जाति के लोगों के जीवन स्तर से बहुत नीचे है।

भारत में दलित लोगों का रिहायशी अलगाव, सब जगह शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में मौजूद है। ग्रामीण क्षेत्रों में दलित लोग एक स्थान पर इकट्ठे रहते हैं, जिनमें से अधिकतर अनुसूचित जाति के होते हैं। यदि दलित उस गांव में रहते हैं जहां उच्च जाति के निवासियों की अधिक संख्या है तो उन्हें गांव के बाहरी इलाके में अलग–थलग रहना पड़ता है, जहां मकान और अन्य सुविधाओं का बुनियादी ढांचा लगभग दयनीय होता है। स्वच्छ जल, सार्वजनिक शौचालय, सफाई आदि सुविधाओं से दलित वंचित रहते हैं। राष्ट्रीय दलित मानवाधिकार अभियान के आंकड़ों के अनुसार केवल दस प्रतिशत दलित परिवारों के पास समुचित सफाई सुविधाएं हैं, जबकि गैरअनुसूचित जाति के परिवारों में यह सुविधा 27 प्रतिशत है।[31] यदि गांव नदी के निकट है तो दलित बस्तियां निचले इलाके में होती हैं और इस प्रकार उन्हें अस्वच्छ वातावरण मिलता है। उनके मकानों की गुणवत्ता भी खराब होती है जैसा कि नैशनल सेंटर फार एप्लाइड रिसर्च के अध्ययन में उल्लेख किया गया है : "ग्रामीण विकास सूचकांक भी कच्चे मकानों के प्रतिशत से जुड़ा है। (कच्चे मकान कम लागत से बनाए जाते हैं। मिट्टी के ऐसे मकानों पर टिन की या घास फूस की छत होती है)। 70 प्रतिशत से अधिक भूमिहीन मजदूर कच्चे मकानों में रहते हैं (इनमें से अधिकतर यानी 74 प्रतिशत अनुसूचित जाति के और 67 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति के हैं)।[32] गांवों में अक्सर बदले की भावना से बहुत ज्यादा मामले ऐसे होते हैं जिनमें दलित परिवार या दलित समुदाय के मकान और जायदाद पर हमले किए जाते हैं। ये मामले अक्सर उच्च जाति के लोगों द्वारा अनुसूचित जाति के लोगों की जमीन

31 नैशनल कैम्पेन ऑन दलित ह्यूमन राइट्स, ब्रोकन प्रॉमिसेज एंड दलित्स बिटरेयड, ब्लैक पेपर ऑन दलित ह्यूमन राइट्स, यूआरएल संदर्भ 30.07.07 http://www.Dalits.org/Blackpaper.html

32 नैशनल सेंटर फॉर एप्लाइड इकोनॉमिक रिसर्च, इंडिया–ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट, दलित समकाया में उद्धृत, यूआरएल संदर्भ 30.07.07 http://www.Dalitsamakhya.org/who.htm

पर गैरकानूनी कब्जे और मालिकाना हक से संबंधित होते हैं। सरकारी जमीन से भी दलितों को जबरन हटाया जाता है। अक्सर ऐसी जमीन पर कोई बुनियादी ढांचा नहीं होता। अक्सर स्थानीय प्रशासन इन समुदायों को जबरन बेदखल करता हैं। कई बार इससे हिंसक तोड़फोड़ और समूचे समुदाय की बेदखली के मामले सामने आते हैं।

शहरी आवास का परिदृश्य भी वैसा ही है, हालांकि शहरों में दलितों के आवास को एक जगह पर सीमित रखना काफी कठिन है। अलगाव की स्थिति यदि कोई दलित प्रभावशाली उच्च जाति वाली कॉलोनी में जाकर बसना चाहे तो उससे उसकी जाति और दर्जे के बारे में पूछताछ की जाती है। शहरों में उच्च जाति और दलितों के बीच उतना अलगाव नहीं है जितना कि गांवों में है, फिर भी आवास के बारे में अलगाव की राजनीति शहरी क्षेत्रों में भी मौजूद है। यह मुख्य रूप से दलितों की कमज़ोर माली हालत और दयनीय स्तर के कारण है। कुछ हद तक यह सरकार की भेदभावपूर्ण आवास नीति और परियोजनाओं के कारण भी है। सरकार द्वारा दलित बस्तियों में कम नागरिक सुविधाएं दिए जाने से भी उच्च जाति और अनुसूचित जाति के लोगों के बीच अलगाव को बढ़ावा मिलता है। कम नागरिक सुविधाओं में नाममात्र चिकित्सा सुविधाएं, गुणवत्ता रहित अस्वच्छ पानी के स्रोत, गंदे शौचालय आदि शामिल हैं। अलग–थलग आवास के जरिए दलितों को दूर रखना एक बार फिर इस बात को साबित करता है कि इसका आधार पवित्रता अपवित्रता है। कसाई, चमड़े के काम और मैला उठाने के काम में लगे समुदायों के कामकाज को अस्वच्छ पेशा माना जाता है और पारंपरिक अशुद्धता के आधार पर इन लोगों को उच्च वर्ग के हिन्दुओं से अलग रखा जाता है। एक विशेष स्थान के निवासी होने से उनके रोजगार का भी पता चलता है। यह आमतौर पर शहरी योजना नीति का अंग बना हुआ है जिसे यदि चाहें तो यथास्थिति को बदलने में भी काम में लाया जा सकता है। कुछ शहरों में हीन व्यवसाय वालों के आवास स्तर में सुधार के लिए हालांकि कुछ प्रायोगिक परियोजनाएं शुरू की गई हैं फिर भी बेहतर जीवन–स्तर के आधुनिक अवसरों का पूरी तरह उपयोग नहीं किया गया।

त्रासदी के दौरान भी लोगों के पुनर्वास में भेदभाव किया गया है। वर्ष 2004 में सुनामी पीड़ित दलितों को दिए गए स्थाई और अस्थाई घर, उच्च जाति के सदस्यों को दिए गए घरों से घटिया थे। इसकी विभिन्न मानवाधिकार संस्थाओं ने आलोचना की।

हरियाणा के करनाल जिले के दसलवान गांव का वाल्मीकि समुदाय

दलितों और उनके घरों पर सामूहिक हमला

26 फरवरी, 2007 को शाम 6 बजे वाल्मीकि समुदाय के अनुसूचित जाति के नकली राम का 18 वर्षीय पुत्र लीलू और राम कुमार का 16 वर्षीय पुत्र प्रदीप कुमार अपने पशुओं को चराने के लिए ले जा रहे थे। पशु महिपाल के खेत में घुस गए। राजपूत समुदाय के महिपाल ने कथित रूप से जातिगत भाषा का इस्तेमाल किया जिससे वाल्मीकि युवक क्रोधित हो गए। कहा जाता है कि उन्होंने

महिपाल की पिटाई की। 27 फरवरी 2007 को शाम 6 बजे एक दलित लड़के राम जुआरी ने खेतों में टहलते हुए महिपाल का शव देखा। उसने इसकी जानकारी महिपाल के परिवार के लोगों को दी, जिन्होंने इस घटना की सूचना पुलिस को दे दी। पुलिस ने मौके पर पहुंच कर घटना की छानबीन की। पुलिस को खेत में भेड़ और बकरियों के पांव के निशान तथा गोबर मिला। इस आधार पर पुलिस ने शक जाहिर किया कि महिपाल का कत्ल चरवाहों ने किया है। पुलिस ने इस मामले में प्रदीप और लीलू को गिरफ्तार कर लिया। पुलिस ने उन्हें प्रताड़ित कर, पीट–पीट कर जुर्म कबूल करने को मजबूर कर दिया। पोस्ट मॉर्टम के बाद महिपाल का दाह संस्कार कर दिया गया। इसके बाद राजपूतों ने अपनी जाति के लोगों की बैठक बुलाई। दलित बस्ती के किसी आदमी ने राजपूतों द्वारा बैठक में रचे जा रहे षड्यंत्र को सुना। इस वजह से अधिकतर दलित गांव छोड़ कर चले गए। राजपूतों ने फोन लाइन भी काट दी, ताकि कोई पुलिस को न बुला सके। 1 मार्च, 2007 को दिन में डेढ़ बजे महिपाल की अस्थियां एकत्रित करने के बाद बारू के पुत्र सुरजीत, अध्यक्ष ब्लॉक समिति के नेतृत्व में केसा के पुत्र रणजोर, बारू राम के पुत्र मास्टर घनश्याम, सुरेश के पुत्र धर्मवीर, ऊधा के पुत्र ओमवीर और कप्तान तथा करीब दो हजार राजपूतों ने दलित बस्ती पर हमला कर दिया। इन लोगों के पास लाठियां, तलवारें, कुल्हाड़ियां और अन्य घातक हथियार थे। कुछ लोगों का कहना था कि उनके पास रिवाल्वर भी थे। वाल्मीकियों के सारे घरों पर हमला किया गया। उनके बर्तन, गेहूं के बोरे आदि तहस–नहस और नष्ट कर दिए गए। घरों को लगभग खाली करके उनमें आग लगा दी गई। पुलिस की मौजूदगी में घरों में आग लगाई गई। राजपूतों ने 190 घरों को नष्ट किया और मिट्टी के तेल तथा डीजल से 10 घरों को जला कर राख कर दिया। जब आगजनी और लूटपाट का काम पूरा हो गया तो पुलिस बड़ी तादाद में वहां पहुंची। एक पीड़ित जसवीर लगातार अपने मोबाइल फोन से पुलिस से संपर्क करता रहा। यह आरोप लगाया जाता है कि पुलिस ने सारे सबूत नष्ट कर दिए। लेकिल रास्ते पर पड़े जले कपड़े, झुलसी दीवारें और जली लकड़ी की गंध से पता चलता था कि बस्ती में आग लगाई गई थी। 20 दलित युवकों को चोटें आईं, इनमें से एक गंभीर रूप से घायल था। घायलों को करनाल जिले में असंध के सिविल अस्पताल में दाखिल कराया गया। डॉक्टर ने जसविन्दर और अन्य पीड़ितों को करनाल के ट्रॉमा सेंटर भिजवा दिया, क्योंकि उनकी हालत नाजुक थी। 2 मार्च 2007 को भारी पुलिस सुरक्षा में 20 वर्ष के दलित सोनू की संदिग्ध हालत में मौत हो गई। वाल्मीकियों का दावा है कि उसकी हत्या की गई क्योंकि वह महिपाल के कथित हत्यारे का रिश्ते में भाई लगता था। राजपूतों का कहना है कि सोनू ने खुदकुशी की थी। एसपी के अनुसार पोस्टमॉर्टम से आत्महत्या की पुष्टि होती है। मगर वाल्मीकियों का कहना है कि पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट में गड़बड़ी की गई ताकि इसे आत्महत्या का मामला दिखाया जा सके। सोनू के रिश्तेदारों ने एफआइआर दर्ज करा दी। आगजनी की इस घटना में 205 परिवार बेघर हुये। इनमें से केवल 73 परिवारों को सरकार से मात्र 6,250 रु. का मुआवजा मिला। इसके अलावा रेडक्रॉस सोसाइटी ने दस से चालीस हजार रुपए के बीच मुआवजा दिया। चार लोगों – संजय, सोनू, दुष्यंत और शरण को गिरफ्तार किया गया, हालांकि ये प्रमुख अभियुक्त

नहीं हैं। नरसंहार के दौरान भाग गए लगभग 150 परिवार अभी गांव नहीं लौटे हैं। सोनू के रिश्तेदारों द्वारा दर्ज कराई गई एफआइआर पर आगे कार्रवाई नहीं की गई, कोई जांच, कोई गिरफ्तारी नहीं की गई। ब्लॉक समिति के अध्यक्ष सुरजीत और उच्च जाति के अध्यापक घनश्याम, सोनू के मामले में दर्ज एफआइआर वापस लेने के लिए धमकियां दे रहे हैं। इस अध्यापक ने तो खुलेआम छात्रों को धमकियां दी हैं कि अगर वे नहीं माने तो उन पर फिर अत्याचार किए जाएंगे। पुलिस की निष्क्रियता के बारे में दायर एक रिट याचिका पंजाब–हरियाणा उच्च न्यायालय में लंबित है।

इस घटनाक्रम में निम्नलिखित कानूनी प्रावधानों का उल्लंघन हुआ है–

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम 1989 की धारा–3(2) (iii) और (v)

तमिलनाडु के कांचीपुरम जिले के तालुका गांव का कालीदास चेम्बुर

दलितों द्वारा अपनी भूमि के कब्जे के लिए संघर्ष

कालिदास तमिलनाडु के कांचीपुरम जिले के तालुक गांव का निवासी है। वह सामाजिक कार्यकर्ता भी है। उसकी तीन पीढ़ियों से पुरुष सदस्य गांव के रेड्डी परिवार में बंधुआ मजदूर के रूप में काम कर रहे हैं। इसके बावजूद कालिदास मुसीबत में फंसे लोगों की मदद कर रहा है और दलितों के अधिकारों के लिए आवाज बुलंद कर रहा है। इसी वजह से रेड्डी परिवार तथा अन्य उच्च जाति के परिवारों के साथ उसके अच्छे संबंध नहीं हैं और नतीजतन उसके खिलाफ षड्यंत्र रचा गया। 13 नवम्बर 2004 को रेड्डी परिवार के लोग कुछ भाड़े के लोगों के साथ कालिदास के घर पहुंचे और जबरन दरवाजा खोला। उन्होंने शुरू में कालीदास को छुरे घोंपे, बेदर्दी से पीटा और उसके मकान के कागजात लूटने की कोशिश की। बहुमूल्य वस्तुओं के अलावा उन्होंने कालिदास के घर से पौने दो लाख रुपये लूट लिये 9 नवम्बर 2006 को रेड्डी समुदाय के लोग फिर आए और दो लाख रुपये मूल्य के पेड़ों को काट कर चले गए। 13 नवम्बर 2006 को उन्होंने फिर ऐसा किया। इससे पहले कालिदास एफआइआर दर्ज कराने में नाकाम रहा था। लेकिन वह 3 दिसम्बर 2006 को एफआइआर दर्ज कराने में सफल हुआ। लेकिन अभी तक कोई जांच या कार्रवाई नहीं की गई, क्योंकि रेड्डी मालदार, प्रभावशाली और असरदार लोग हैं। कालिदास ने न केवल आनुमानिक मुआवजे की मांग की है अपितु अपनी जान की रक्षा की भी मांग की है, क्योंकि उसकी जान को गंभीर खतरा है। वर्तमान में वह अपने परिवार के साथ कांचीपुरम से विलुपुरम जिले में चला गया है।

इस घटना में कानून की निम्न धाराओं का स्पष्ट उल्लंघन हुआ है–

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम 1989 की धारा–3 (2) (iii) और (v)।

उड़ीसा के पुरी जिले के घोरडिया गांव का डोम समुदाय

दलित समुदाय को घरों से जबरन बाहर निकाला गया

पुरी जिले के घोराडी गांव में दलित समुदाय को डोम कहा जाता है। दलित मुख्यरूप से उच्च जाति के सदस्यों के परिवारिक समारोहों में ढोल बजा कर और हाथ से बनाई गई बांस की वस्तुओं को बेच कर रोजी–रोटी कमाते हैं। गांव में दलितों के साथ बुरा व्यवहार किया जाता है। उदाहरण के तौर पर उच्च जाति के लोग दलित बस्ती में कभी नहीं जाते और यदि अचानक रास्ते में कोई दलित मिल जाए तो वह स्वयं को शुद्ध करने के लिए स्नान करते हैं। दलित सबके लिए उपलब्ध सार्वजनिक स्थानों तक नहीं जा सकते और स्कूलों में भी उनके साथ भेदभाव होता है। उन्हें जब दुकान से खाने के लिए कुछ खरीदना होता है तो उन्हें दूर खड़ा होना होता है और दूर से ही चाय या खाने का सामान मांगना पड़ता है और उन्हें दुकान के नजदीक बैठने की भी मनाही है। दुकानदार उन्हें सीधे कोई सामान नहीं देता, बल्कि वह सामान फर्श पर रख देता है जिसे दलित उठा लेते हैं। इतना ही नहीं होली जैसे त्यौहार पर दलितों को दिन भर बिना किसी पैसे के ढ़ोल बजाना पड़ता है। दलितों के पास उच्च जाति के लोगों द्वारा निर्धारित नियमों और अपेक्षाओं को मानने के अलावा कोई और विकल्प नहीं है। यह घटना तब हुई जब उच्च जाति के लोगों ने बाउली नायक के परिवार को मकान खाली करने को कहा, हालांकि कई पीढ़ियों से यह जायदाद दलितों के पास थी। दलितों से यह जगह खाली करा कर उच्च जाति के सदस्य एक सड़क बनाना चाहते थे, जिसका इस्तेमाल समुदाय के कुछ सदस्यों द्वारा किया जाना था और किसी भी तरह समूचे समुदाय के लिए फायदेमंद नहीं था। इस तथ्य के बावजूद उच्च जाति के सदस्यों ने दलितों को अपनी जमीन खाली करने को मजबूर किया। इस प्रकार के खुले अन्याय से परेशान दलितों ने उच्च जाति के सदस्यों के इस निर्णय का शांतिपूर्वक विरोध किया। दलितों के विरोध का जवाब उच्च जाति के सदस्यों द्वारा मारपीट और हथियारों के इस्तेमाल से दिया गया। दलितों के लगभग 30 घर जला दिए गए, जिसके बाद दलित समुदाय के पुरुषों ने भाग कर अपनी जान बचाई। दंगा कर रहे उच्च जाति के सदस्यों ने अपने कुछ घरो में आग लगा कर यह कहते हुए दलितों के खिलाफ एफआइआर दर्ज करा दी कि उन्होंने हमला किया और घरों को जलाया है। पुलिस ने बिना किसी छानबीन के मामला दर्ज कर लिया और तीन दलितों को गिरफ्तार कर लिया। पिपली के विधायक प्रदीप महारथी ने भी इस मामले में दबाव डाला। उच्च जाति के सरपंच का विधायक की पार्टी से संबंध था। दलितों ने देर से एफआइआर दर्ज कराई। दलितों ने जिन 40 लोगों का नाम लिखवाया था, उनमें से किसी को भी गिरफ्तार नहीं किया गया। सरपंच को गिरफ्तार किया गया लेकिन शक्तिशाली पार्टी के दबाव पर उसे छोड़ दिया गया। अदालत में दलितों के खिलाफ मामले पर सुनवाई हो रही है और वे जमानत पर हैं।

इस घटनाक्रम से अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम 1989 की धारा 3 (1) (X) का स्पष्ट उल्लंघन होता है।

(iv) शिक्षा संस्थाओं और कार्य-स्थल पर भेदभाव

शिक्षा जीवन के लिए सर्वमान्य लक्ष्यों में से एक है। विकासशील देशों में यह प्रत्येक माता-पिता के हित में है कि वे अपने बच्चों को शिक्षित बनाकर उनमें ऐसी दक्षता लायें जो उन्हें अज्ञानता और गरीबी से मुक्त कर सके। यह कहना अनावश्यक नहीं होगा कि बच्चों को बेहतर शिक्षा दिलाना सामाजिक-आर्थिक विकास का कारगर तरीका है, जिसकी कामना प्रत्येक राष्ट्र करता है। वर्ष 2006 के एक अध्ययन से पता चलता है कि 22.5 प्रतिशत दलित बच्चों ने बताया कि उच्च जाति के सदस्य उन्हें परेशान करते हैं और स्कूल जाने से रोकते हैं।[33] शिक्षा के क्षेत्र में दलितों के साथ हो रहा भेदभाव कार्य-स्थल पर भी ज़ारी रहता है। उन्हें कार्य क्षेत्र से अलग-थलग रखना आम बात है और काम के स्थान पर भेदभाव जारी है।

दलित बच्चों में से अधिकांश ऐसे सरकारी स्कूलों में पढ़ रहे हैं जहां अक्सर धन की कमी रहती है और मूलभूत सुविधाएं भी नहीं होती हैं। इन बच्चों को शुरू से ही जटिल बाधाओं का सामना करना पड़ता है। उन्हें उच्च जाति के छात्रों से अलग यानी अक्सर कक्षा में बहुत पीछे बैठना पड़ता है। उन्हें अपने अध्यापकों तथा उच्च जाति के साथी छात्रों से मानसिक और शारीरिक उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है। हाल के एक अध्ययन से पता चला है कि 37.8 प्रतिशत सरकारी स्कूलों में दलित बच्चों को अलग बैठ कर खाना-पीना पड़ता है।[34] ऐसी प्रवृत्ति उस जातिवादी मानसिकता का परिणाम है जिसके अनुसार दलित न केवल पढ़ने के लिए अक्षम हैं बल्कि उन्हें शिक्षित होने की भी जरूरत नहीं है, क्योंकि उनका उद्देश्य केवल उच्च जातियों की सेवा करना है। दि ह्यूमन राइट्स वॉच की रिपोर्ट– हिडन अपार्थाइड : कास्ट डिस्क्रिमिनेशन अगेन्स्ट इंडियाज "अनटचेबल्स" में शिक्षा के अधिकार पर संयुक्त राष्ट्र की टिप्पणी का उल्लेख किया गया है। इस संगठन ने मानवाधिकार आयोग के 67वें सत्र में अपनी रिपोर्ट में कहा कि शिक्षकों का यह मानना है कि दलित छात्र तब तक नहीं सीख सकते जब तक उनकी पिटाई न की जाए।[35] शिक्षित अध्यापकों के ऐसे रवैये से तो यह उम्मीद नहीं रहती कि संविधान का अनुच्छेद-45 दलितों के लिए कभी पूरी तरह लागू हो

33 वादा ना तोड़ो अभियान में उल्लिखित, फुलफिलिंग प्रॉमिस टु एंड सोशल एक्सक्लूशन : ए रिव्यू ऑफ दि दलित एजेंडा इन दि नैशनल कॉमन मिनिमम प्रोग्राम। यूआरएल संदर्भ 22.08.07 http://www.wadanatodo.net/images/160407/DalitsNCMP%20Eng.pdf

34 शाह, मंदर, थोरात, देशपांडे और बाविस्कर, अनटचेबिलिटी इन रूरल इंडिया, सेज पब्लिकेशनस, 2006

35 ह्यूमन राइट्स वॉच, हिडन अपार्थाइड : कास्ट डिस्क्रिमिनेशन अगेन्स्ट इंडियाज अनटचेबल्स, शैडो रिपोर्ट टु दि यूएन कमेटी ऑन दि एलिमिनेशन ऑफ रेशियल डिस्क्रिमिनेशन, यूआरएल संदर्भ 02.08.07 http://www.hrw.org/reports/2007/india0207/india0207web.pdf

पाएगा। इस अनुच्छेद में जोर देकर कहा गया है कि सरकार इस संविधान के लागू होने के दस वर्ष के भीतर 14 साल तक के सभी बच्चों को मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा देने का भरसक प्रयास करेगी। यह लक्ष्य निर्धारित किए जाने के 47 वर्ष बाद भी दलित बच्चे अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी नहीं कर पाते। कक्षा एक से पांच के बीच शिक्षा बीच में छोड़ जाने वाले बच्चों का राष्ट्रीय प्रतिशत 49.35 है।[35] मौजूदा शिक्षा प्रणाली में यह दर तेजी से बढ़ती जा रही है। इतना ही नहीं बच्चों को अपने परिवार की आमदनी बढ़ाने के लिए कम उम्र से ही काम करना पड़ता है। सदियों से जारी भेदभाव के कारण बुनियादी ढांचा और परिवार में शिक्षा का अभाव से दलितों की शिक्षा में गंभीर बाधा बनी हुयी है। शिक्षा में लड़कियां सदैव लड़कों से पीछे रहती हैं, क्योंकि अक्सर यह माना जाता है कि लड़कों को शिक्षित कर भविष्य के लिए निवेश करना है। गरीब परिवारों में भी यही मान्यता है, जिससे दलित लड़कियों की शिक्षा पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

कार्य–स्थल पर होने वाला भेदभाव शिक्षा संस्थाओं में दलितों के साथ हो रहे भेदभाव से बहुत कम भिन्न हैं, क्योंकि जाति के आधार पर लोगों को अलग रखने की प्रवृत्ति बचपन से पनपती है। बैठने की व्यवस्था, खाने की अलग व्यवस्था और पीने के पानी तक पहुंच के जरिए बहुत से दलितों का शारीरिक और सामाजिक अलगाव हो रहा है। सबसे अधिक भेदभावपूर्ण प्रवृत्ति ऐसी चर्चा या बहस है जिसके जरिए काम के आधार पर जारी जातिगत भेदभाव की भावना को बल मिलता है। सरकारी रोजगार क्षेत्र में भी ऐसा हो रहा है जिसे सफाई कर्मचारियों के मामले में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस अमानवीय प्रवृत्ति पर प्रतिबंध के बावजूद कई नगरपालिकाएं अब भी प्रतिबंध के भय से निश्चिंत होकर मैला ढोने के लिए कर्मचारी नियुक्त करती हैं, जबकि "मैला ढोने के लिए व्यक्ति नियुक्त करने और शुष्क शौचालय निर्माण (प्रतिबंध) अधिनियम 1993" के तहत इस पर रोक लगी हुई है। इन सरकारी कर्मचारियों को अनुसूचित जाति का होने के कारण कम वेतन दिया जाता है। निजी क्षेत्र में निगरानी व्यवस्था कड़ी न होने के कारण वहां जातिवाद का अधिक बोलबाला है। निजी क्षेत्र में क्योंकि आरक्षण नीति लागू नहीं होती इसलिए वहां दलितों के साथ खुलेआम भेदभाव आम बात है। ग्रामीण क्षेत्र में स्थिति और भी दयनीय है। वहां एक खास मौसम में ही रोजगार मिलता है अर्थात कृषि मजदूरों को लम्बे समय तक बेरोजगारी का सामना करना पड़ता है, क्योंकि उन्हें अन्य कामकाज भी नहीं करने दिया जाता। दलितों को बंधक मजदूर या मुफ्त मजदूरी करते रहने का यह भी एक कारण है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट इक्वेलिटी एट वर्क : टैक्लिंग दि चैलेंजेज के अनुसार–

"दलितों को आमतौर पर ऐसे कामों पर नहीं रखा जाता जिससे कि वे गैर–दलितों के पानी या भोजन के संपर्क में रहें। उन्हें गैरदलितों के घर में प्रवेश भी नहीं करने दिया जाता। इस प्रकार उन्हें खाद्य वस्तुओं

35 चेंज न्यूज एंड फीचर्स में मिडडे मील्स लेख में दिए गए आंकड़े दलित बच्चों पर लागू नहीं होते हैं। यूआरएल संदर्भ 02.08.07...पर http://www.infochangeindia.org/analysis66.jsp

के उत्पादन, संसाधन, बिक्री, घरेलू कार्य और निजी तथा सरकारी क्षेत्र की कुछ सेवाएं (जैसे कार्यालय में हेल्पर) के प्रदान करने के काम से अलग रखा जाता है।"[37]

लगभग हरेक रोजगार में दलितों को गैरदलितों के मुकाबले कम वेतन लेने को मजबूर किया जाता है। दलितों की प्रतिदिन की औसत मजदूरी गैरदलितों की मजदूरी से 5 रुपये कम होती है। गैरदलितों की दैनिक मजदूरी 33 रु है।[38]

बिहार के जमुई जिले के हदेहरा गांव का गौतम रविदास

स्कूल में जातिवादी नियमों को चुनौती देने पर दलित लड़के को मानव मल से नहाने पर मजबूर किया गया

शशि रविदास का नौ वर्ष का पुत्र गौतम रविदास इस्लामनगर में हदेहरा गांव के स्कूल में पढ़ता है। उसे जातिगत नियमों के उल्लंघन के कारण गंदी गालियों का शिकार होना पड़ा। उसका कसूर यह था कि वह कक्षा में अगली सीट पर बैठ गया। प्रभावकारी जाति के एक विद्यार्थी सुनील यादव ने अपना बस्ता और पुस्तकें उस पर फेंक दी। गौतम ने जब उसे रोकने की कोशिश की तो सुनील यादव को चोट लगी। सुनील यादव ने इस बारे में अपने पिता बालेश्वर यादव को शिकायत की, जिसके बाद वह स्कूल आया और उसने गौतम से कहा कि उसे मानव मल खाना होगा। गौतम की पुस्तकें गटर में फेंक दी गईं। उसे मानव मल से भरे एक बेहद गंदे स्थान में धकेल दिया गया और तीन घंटे तक बुरी तरह पीटा गया। गौतम मानव मल से पूरी तरह लथपथ था। दलित लोग यह देख कर भयभीत थे। उन्होंने गौतम के माता–पिता को इसकी सूचना दी। सुनते ही शशि रविदास और सीता देवी अपने पुत्र को बचाने पहुंचे। उनके वहां पहुंचने पर उनकी पिटाई की गई और उन्हें गालियां दी गयीं। शिक्षक ने उन्हें बचाने के लिए कुछ नहीं किया। गौतम के माता–पिता ने गांव प्रधान श्रवण यादव और राजेश यादव से शिकायत की। राजेश यादव ने शशि रविदास से पूछा कि उसने अपने पुत्र को स्कूल क्यों भेजा था? यदि दलित स्कूल न जाएं तो झगड़े ही न हों। दलित विद्यार्थियों को स्कूल में प्रवेश नहीं करने दिया गया और उनकी शिक्षा रुक गई। उन्हें स्कूल से निकाल दिया गया। अब कोई भी दलित विद्यार्थी

---

37 इटरनेशनल लेबर ऑर्गेनाइजेशन, इक्वेलिटी एट वर्क : टैक्लिंग दि चैलेंजेज, ग्लोबल रिपोर्ट अंडर दि फॉलो अप टु दि आइएलओ डिक्लेरेशन ऑन फंडामेंटल प्रिंसिपल्स एण्ड राइट एट वर्क। यूआरएल संदर्भ 02.08.07 http://www.ilo.org/wcmsp5/groups/public/...dgreports/...dcomm/...webdwv/documents/publication/wcms_082607.pdf

38 सुखदेव थोरात, एम महामलिक और अनंत पंथ; कास्ट अकुपेशन एण्ड लेबर मार्केट डिस्क्रिमनेशन : अ स्टडी ऑफ फॉर्म्स, नेचर एण्ड कंसिक्वेंसिज इन रूरल इंडिया, रिपोर्ट सब्मिटिड टु आईएलओ, दिल्ली 2006

उस स्कूल में नहीं जाता। गौतम और उसके माता–पिता की विद्यार्थियों तथा शिक्षक कृष्ण यादव के सामने पिटाई की गई। दलित मुक्ति मिशन ने इस मामले में खंड विकास अधिकारी और खंड शिक्षा अधिकारी से संपर्क किया। यह मिशन राज्य स्तरीय संगठन है। उसने गौतम रविदास का मामला उठाया। प्रशासन ने महज इतना जवाब दिया कि उसे इस कहानी पर विश्वास नहीं होता। उन्होंने कहा कि ऐसा व्यवहार अतीत की बात है और अब ऐसा नहीं होता। स्थानीय पुलिस ने भी बेरुखी दिखाई। पीड़ित परिवार की इंसाफ की कोशिशों के कारण उन्हें गंभीर नतीजे भुगतने की धमकियां दी गयीं। इस पीड़ित के संघर्ष को दलित मुक्ति मिशन के प्रयासों से जीवित रखा जा सका है।

इस घटना में उच्च जाति के गांववासियों का व्यवहार निम्न प्रावधानों का स्पष्ट उल्लंघन है–

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम, 1989 की धारा–3 (1) (x)

उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले के चारोह गांव के नीरज और अन्य दलित

नाबालिगों का स्कूल में शोषण और प्रतिरोध करने पर दमन

नीरज उत्तर प्रदेश के सहारपुर जिले के एक पिछड़े गांव के प्राइमरी स्कूल में चौथी कक्षा में पढ़ता है। वह दलित परिवार से है। इस गांव में हर मामले में उच्च जाति का दबदबा है और ये लोग मिजाज से बहुत अक्खड़ हैं। दोपहर भोजन योजना के अंतर्गत सरकारी स्कूलों के सभी विद्यार्थियों को मुफ्त भोजन मिलता है। प्राइमरी स्कूल के हेडमास्टर ने नीरज और अन्य दलित विद्यार्थियों को जलावन लकड़ी और उपले इकट्ठे करने भेजा। खाना बनाने का स्थान काफी दूरी पर है। वहां चावल की बोरियां रखी जाती हैं। नीरज और अन्य विद्यार्थियों को 25 किलोग्राम की बोरियां साइकिल से लाने के लिए कहा जाता था। यदि वे हेडमास्टर हामिद अंसारी के निर्देश का पालन नहीं करते तो उनकी बेहद पिटाई की जाती। भोजन के वितरण के समय उन्हें बहुत कम भोजन दिया जाता था तथा और मांगने पर उन्हें गालियां दी जातीं और पिटाई की जाती थी। नीरज और उसके साथी स्कूल से भाग गए। अप्रैल 2007 में एक दिन नीरज की इतनी पिटाई की कि वह बेहोश हो गया। वह 15 दिन तक स्कूल के कोने में पड़ा रहा। एक माह के बाद भी इस मामले की कोई एफआइआर नहीं लिखवाई गई। नीरज अब स्कूल नहीं जाता। नीरज की 15 वर्ष की बड़ी बहन सोनम उसी स्कूल में पांचवी में पढ़ती थी। उसे पिछले वर्ष स्कूल छोड़ना पड़ा। दिसम्बर 2006 में सोनम को प्रताड़ित कर उच्च जाति के लड़कों ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया। सोनम के माता–पिता जब स्कूल में शिकायत करने पहुंचे तो उच्च जाति के

विद्यार्थियों के माता–पिता ने साफ जवाब दिया कि अगर उन्होंने इस तरह के बेतुके आरोप लगाने हैं तो वे उनके खेतों में काम करने या पशुओं के लिए घास लेने बिल्कुल नहीं आएं। इस प्रकार शिकायत करने की उनकी सारी कोशिशें धरी रह गईं और सोनम को पढ़ाई छोड़नी पड़ी। इसी गांव में एक एनजीओ आंचल दो साल से काम कर रहा है। इस एनजीओ ने बेहोश पड़े नीरज को उठाया और उसका उपचार कराया। इस एनजीओ ने इस बारे में हेडमास्टर से बात करने की कोशिश की। हेडमास्टर ने एनजीओ से कहा कि उसे जो ठीक लगता है करेगा। अधिकारी उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते क्योंकि उसके ताकतवर लोगों के साथ संपर्क हैं। एनजीओ के सदस्यों को भी बार–बार चेतावनी दी गई और कहा गया कि वे हस्तक्षेप न करें। यह निम्नलिखित प्रावधानों के अंतर्गत अपराध है–

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम 1989 की धारा–3 (i) (vi) और (x)

बिहार के पटना जिले के दानापुर गांव की उर्मिला

दलित शिक्षिका के साथ कार्यस्थल पर जातिगत आधार पर भेदभाव

दलित महिला उर्मिला बिहार के पटना जिले के दानापुर की रहने वाली है। वह मुबारकपुर के स्कूल में शिक्षिका है। वह बीए बीएड है तथा इसी स्कूल में पिछले 18 साल से पढ़ा रही है। इस स्कूल का हेडमास्टर उच्च जाति का है। हेडमास्टर भेदभाव करता है तथा उर्मिला को उसकी जाति की वजह से हेयदृष्टि से देखता है। उसे पढ़ाते हुए कुर्सी पर नहीं बैठने दिया जाता है। एक बार वह कक्षा में कुर्सी ले गई तो हेडमास्टर ने उससे कुर्सी छीन ली और उसे जान से मार देने की धमकी दी। हेडमास्टर हमेशा उसे डांटने–फटकारने के बहाने तलाशता रहता है। वह हरेक जाति के विद्यार्थियों को पढ़ाती है और उसने कभी भी किसी जाति वर्ग के विद्यार्थी को प्राथमिकता नहीं दी। विद्यार्थी उर्मिला को पूरा सम्मान देते हैं। अन्य शिक्षक और कर्मचारी उर्मिला को उसकी जाति के कारण किसी प्रकार से हीन नहीं मानते। उसे तो केवल हेडमास्टर की नाराजगी का लगातार सामना करना पड़ता है। 6 मार्च 2006 को उसकी सास का देहांत हुआ तो उर्मिला ने अपने बेटे के हाथ छुट्टी का आवेदन हेडमास्टर के पास भेजा। हेडमास्टर ने आवेदन को फाड़ कर फेंक दिया। उसने उपस्थिति रजिस्टर में उर्मिला को अनुपस्थित दिखा कर उसका एक दिन का वेतन काट लिया। उर्मिला अगर स्कूल में पांच मिनट देर से पहुंचती है तो हेडमास्टर उसे प्रताड़ित और दंडित करने में कोई कसर नहीं छोड़ता है। उर्मिला को वेतन भी कभी समय पर नहीं मिलता है। अब तक उसे चार महीने की तनख्वाह नहीं मिली है, जबकि बाकी कर्मचारियों को समय पर वेतन मिल जाता है। इतना ही नहीं उसे कोई पदोन्नति भी नहीं मिली। इस मामले को अभी तक किसी राज्य स्तर की एजेंसी में नहीं उठाया गया।

इस घटना से निम्नलिखित प्रावधानों का स्पष्ट उल्लंघन होता है–

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम 1989 की धारा–3 (i) (x) और धारा–(4)।

उड़ीसा के अंगुल के मामुरिया गांव का दलित समुदाय

स्कूल में दलित बच्चों के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार

मामुरिया गांव का दलित समुदाय अनपढ़ है और रोजी–रोजी के लिए कृषि पर निर्भर है। इस समुदाय के लोग दोने और बीड़ी बनाने के लिए तेंदु पत्ते इकट्ठे करते हैं और बनाई गई वस्तुएं नजदीकी बाजार में बेचते हैं। इन लोगों के साथ उच्च जाति का व्यवहार आमतौर पर भेदभावपूर्ण होता है। जब दलित खरीदारी कर रहे होते हैं तो दुकानदार वस्तुओं को हाथ नहीं लगाते हैं। दलितों को अगर शादियों में बुलाया जाता है तो उन्हें अलग बैठा कर भोजन परोसा जाता है। इतना ही नहीं दलितों के लिए अलग पीने के पानी का कुआं और नहाने का अलग स्थान निर्धारित है। यह घटना उस समय सामने आई जब सुकांति के पुत्र ने अपनी माता को बताया कि उन्हें स्कूल में दोपहर के भोजन के समय अलग बैठाया जाता है। दलित विद्यार्थियों को बरामदे से बाहर बैठने को कहा जाता है जबकि अन्य विद्यार्थियों को बरामदे में बैठने दिया जाता है। सुकांति ने इस मामले पर हेडमास्टर प्रभाकर साहू से संपर्क किया और इसके समाधान के लिए पुलिस से शिकायत करने की बात की। हेडमास्टर को सुकांति की बात समझ आ गई और उस दिन के बाद दलित विद्यार्थियों को भोजन के लिए अलग नहीं बिठाया गया। अन्य ऐसी घटनाओं की बजाए इस मामले का तुरंत हल निकल आया।

लेकिन यह मामला निम्नलिखित प्रावधानों का स्पष्ट उल्लंघन था–

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3 (1) (x)

हरियाणा की मोहिनी

दलित विद्यार्थी के साथ स्कूल में भेदभावपूर्ण व्यवहार

मोहिनी हरियाणा की एक दलित कन्या है। वह दसवीं कक्षा में पढ़ती है। उसने हाल ही में स्कूल जाना छोड़ दिया, क्योंकि कुछ अध्यापक और कर्मचारी उसे बेहद परेशान करते थे। स्कूल में अध्यापक उसे उच्च जाति की लड़कियों से बात नहीं करने देते थे। बार–बार ऐसा होने पर उसके पिता ने स्कूल में संपर्क किया तो उन्हें अपमानित किया गया। मोहिनी के माता–पिता ने उसका स्कूल बदलने का फैसला किया। स्कूल के अधिकारियों ने उसका स्थानांतरण प्रमाणपत्र जारी करने से

मना कर दिया और उसके सभी शुल्क जमा होने के बावजूद तीन हजार रुपये की मांग की। वह परिवार इतनी बड़ी रकम का भुगतान नहीं कर सकता था। उसके दो भाई भी स्कूल में पढ़ते थे। स्कूल में कोई भी झगड़ा होने पर मोहिनी को बेवजह उसके लिए जिम्मेदार बता कर दंडित किया गया। उसके अध्यापकों ने साफ–साफ मोहिनी से कह दिया था कि वह किसी अन्य गतिविधि में हिस्सा न ले। इसका मकसद यही था कि दलित कन्या को आगे न बढ़ने दिया जाए। एक अध्यापक ऐसा था जिसने उसे कुछ गतिविधियों में शामिल होने दिया। एक बार एक अध्यापक ने एक लड़की से पानी लाने को कहा मगर लड़की ने इसे सुना नहीं। इसके बाद मोहिनी पानी का गिलास लेकर आई तो अध्यापक ने पीने से इंकार कर दिया और मोहिनी को गालियां सुनायीं। स्कूल में दलित विद्यार्थियों को हर माह वजीफा मिलता है। इसे लेने के लिए भी हर बार मोहिनी को गालियों का शिकार होना पड़ता। इतना ही नहीं स्कूल के कर्मचारी उससे पूरी रकम पर दस्तख्त कराते मगर उसे पूरी रकम नहीं देते। कन्या होने के कारण वह कान में बालियां पहनती है। एक दिन एक अध्यापक ने उसे बुला कर थप्पड़ मारा और बालियां पहनने से मना कर दिया, जबकि ज्यादातर लड़कियां बालियां पहनती हैं। मोहिनी के पिता की इन बातों का हल निकालने की सभी कोशिशे बेकार रही हैं और उन्हें हर बार गाली और अपमान का सामना करना पड़ा।

स्कूल के कर्मचारियों ने निम्न प्रावधानों का स्पष्ट उल्लंघन किया–

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम, 1989 की धारा–3 (1) (x) (xiv)।

महाराष्ट्र के भंडारा जिले की मयूरी तथा अन्य

दलित विद्यार्थियों पर गोमूत्र छिड़ककर अपमानित किया गया

यह घटना 4 अप्रैल 2007 को सरकारी उच्चतर माध्यमिक स्कूल में हुई। दलित विद्यार्थी मयूरी और अन्य जब परीक्षा दे रहे थे तो उनकी उत्तर पुस्तिकाओं और उन पर यह कहते हुए गोमूत्र का छिड़काव किया गया कि उन्हें शुद्ध किया जा रहा है। इस घटना से पहले स्कूल में एक मुख्य अध्यापिका थी जिसे किसी दूसरे स्कूल में स्थानांतरित कर दिया गया था। यह मुख्य अध्यापिका दलित थी। 3 अप्रैल 2007 को उसने ग्रामीण शिक्षा समिति के अध्यक्ष श्री अहेरे लोधे और सभापति काडे काहेर की उपस्थिति में अपना कार्यभार नए मुख्य अध्यापक को सौंपा। अध्यक्ष ने कहा कि दलित स्कूल अध्यापक की मौजूदगी से स्कूल अपवित्र हो गया था इसलिए उसने नए मुख्य अध्यापक को स्कूल को गोमूत्र के छिड़काव से शुद्ध करने का आदेश दिया। इसी आदेश के तहत अगले दिन सभी कमरों में गोमूत्र का छिड़काव किया गया। उस दिन विद्यार्थी भूविज्ञान की परीक्षा दे रहे थे। मुख्य अध्यापक स्वयं 6 कमरों में गया, जहां तीन कतारों में अनुसूचित जाति के विद्यार्थी बैठे थे। सबसे पहले मुख्य अध्यापक ने उस डेस्क और कुर्सी पर गोमूत्र

का छिड़काव किया जिस पर दलित मुख्य अध्यापिका बैठा करती थी। इसके बाद उसने तीन लाइनों में जाकर विद्यार्थियों और उनकी उत्तर पुस्तिकाओं पर छिड़काव किया। मुख्य अध्यापक ने ऐसा करने का कारण भी बताया। अनुसूचित जाति और अन्य पिछड़े वर्ग के विद्यार्थियों का अलग से पंजीकरण किया जाता है और उसी आधार पर उन्हें कक्षा में बिठाया जाता है। इसलिए यह कोई अकस्मात नहीं था कि तीन लाइनें अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की थीं। मुख्य अध्यापक ने यह छिड़काव कमरे में अन्य विद्यार्थियों पर नहीं किया। विद्यार्थियों ने घर जाकर इस घटना की जानकारी अपने माता–पिता को दी। गांव के विद्यार्थियों के सभी माता–पिता ने अगले दिन मुख्य अध्यापक के साथ जाकर बैठक की। बैठक के अंत में मुख्य अध्यापक ने माफी मांगी, लेकिन अभिभावकों ने लिखित माफी और ऐसा फिर न किए जाने का आश्वासन मांगा। इस पर गांववासियों को धमकी दी गई और उन्हें वहां से चले जाने को कहा गया। 6 अप्रैल 2007 को छुट्टी थी। अगले दिन जब स्कूल में कक्षाएं लगीं और विद्यार्थी आए तो एक महिला अध्यापिका ने विद्यार्थियों पर स्कूल के मामले बाहर ले जाने का आरोप लगाया और उन्हें धमकी दी। इस अध्यापिका की सार्वजनिक शिकायत जिला कलेक्टर से की गई। कलेक्टर ने मामला एसपी को सौंप दिया। मामले की जांच की गई और अध्यापिका के विरुद्ध पीसीआर अधिनियम की धारा–1 (डी) के अंतर्गत मामला दर्ज किया गया।

अब गांव के अन्य पिछड़े वर्ग के वासियों ने समझौता करने के लिए दलितों और अभिभावकों पर दबाव डालना शुरू कर दिया। खेरलांजी की घटना के बाद स्थानीय विधायक नाना पटेल ने दो संगठनों – ओबीसी संग्राम परिषद तथा चावा संगठन बना लिए। इन दोनों का गठन दलितों द्वारा शुरू किए जाने वाले आंदोलनों का जवाब देने के लिए किया गया था। इन संगठनों ने इस मामले में अध्यापकों का साथ दिया और उनके विरुद्ध कोई सरकारी या कानूनी कार्रवाई नहीं होने दी। अनुसूचित जाति के संगठनों ने पीड़ित गांववासियों के साथ मामला उठाया। अनुसूचित जाति के संगठनों के दबाव के फलस्वरूप भारतीय दंड संहिता की धारा–312, 310, 307 के अंतर्गत तीन मामले दर्ज किए गए, लेकिन कोई गिरफ्तारी नहीं की गई और पीड़ितों को मुआवजा भी नहीं मिला। कलेक्टर ने मामले पर विचार के लिए तीन अधिकारियों की समिति बनाई। समिति ने रिपोर्ट में इस मामले के लिए तीन अध्यापकों को जिम्मेदार बताया और उनके खिलाफ कानूनी कार्रवाई की सिफारिश की। ग्रामीण शिक्षा समिति के जिला प्रधान और अध्यक्ष ने इस मामले की जानकारी से इंकार कर दिया। इसलिए उनके खिलाफ भी कानूनी कार्रवाई की सिफारिश की गई। इस रिपोर्ट को जिला समिति के सामने रखा गया जो दलितों के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रस्त थी। जिला समिति ने कहा कि रिपोर्ट वैध नहीं है और इस पर अमल नहीं किया जा सकता। दलित संगठनों ने इस संगठन के खिलाफ कार्रवाई की मांग की जिसने गांव का शांतिपूर्ण माहौल बिगाड़ने के लिए झूठे प्रचार का सहारा लिया था। इसके फलस्वरूप उन संगठनों के खिलाफ कई आरोप लगाए गए जो दलित विद्यार्थियों का साथ दे रहे थे।

यह घटना निम्नलिखित का स्पष्ट उल्लंघन है–

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम 1989 की शाखा 3 (1) (x) और (xiv)।

उड़ीसा के जाजपुर जिले के सुकर्णा गांव की सावित्री मलिक

दलित महिला को स्कूल के बच्चों के लिए भोजन पकाने से रोका गया

सुकर्णा का गांव उड़ीसा के जाजपुर जिले में सुकिन्डा पुलिस थाने के अंतर्गत स्थित है। गांव में एक बस्ती है जहां केवल दो जातियों के लोग रहते हैं। ये जातियां है पान और गौंडा। उच्च जाति के अधिकतर लोग खानों में ठेकेदार और ट्रक ड्राइवर हैं। दलित भूमिहीन और अनपढ़ हैं। ये लोग प्रभावशाली लोगों के खेतों या खानों में दिहाड़ी मजदूर के रूप में काम करते हैं। गांव के दलित भी गौंडा लोगों को छू नहीं सकते। अंकुरा मलिक की विधवा 35 वर्षीय सावित्री मलिक पान जाति की है। उसे सरकार ने गांव के स्कूल में दोपहर भोजन कार्यक्रम में नियुक्त किया है। वह खाना बनाने में खानसामे की मदद करती है। सावित्री मलिक को हालांकि खानसामे बासुदेव साहू के सहायक के रूप में लगाया गया था मगर हेडमास्टर, अध्यापक, गांव की शिक्षा समिति के सदस्य और खानसामा उससे खाना नहीं बनवाते थे। उसे केवल लकड़ी लाने और बर्तन साफ करने का काम दिया गया था। उसने हेडमास्टर से शिकायत की, जिसका कोई नतीजा नहीं निकला। उसने अपनी बस्ती के लोगों की बैठक बुलाई और घटना का विवरण सुनाया। कुछ युवाओं ने उसका समर्थन किया और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष के लिए तैयार हो गए। सावित्री और उसके समर्थक सुकिन्डा थाने गए, लेकिन वहां कोई एफआइआर दर्ज नहीं की गई। इसके बाद वे कार्यकारी मेजिस्ट्रेट की अदालत में गए और बांड आफ ब्रीच पर दस्तखत किए, लेकिन जिला प्रशासन ने अभी कोई कार्रवाई नहीं की है। अभियुक्त लोग पीड़ित परिवार पर मामला वापस लेने का दबाव डाल रहे हैं।

यह निम्नलिखत प्रावधान का स्पष्ट उल्लंघन है–

भारतीय संविधान के अनुच्छेद–17 के अंतर्गत प्रत्येक नागरिक को दिए गए अधिकार, जिनके तहत छुआछूत समाप्त हो गया है और इस प्रथा के प्रत्येक स्वरूप पर रोक लगा दी गई है।

दिल्ली के एम्स चिकित्सालय के अजय और अन्य

एम्स में प्रवेश पाने वाले दलित विद्यार्थियों को आरक्षण कोटे का लाभ उठाने के कारण निशाना बनाया जाता है

नयी दिल्ली के अंसारी नगर स्थित एम्स चिकित्सालय और मेडिकल कॉलेज में एमबीबीएस के अंतिम वर्ष के विद्यार्थी डॉ. अजय कहते हैं : हर वर्ष शिक्षा सत्र शुरू होने पर दलितों को फर्श पर बिठा कर अपमानित किया जाता है। उनसे पूछा जाता है कि कैसे कोटा हासिल किया था। जब एक विद्यार्थी ने इसका विरोध किया तो उसकी पिटाई की गई। इसके बाद एम्स के निदेशक को 45 दलित विद्यार्थियों ने ज्ञापन दिया और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति आयोग में

शिकायत दर्ज कराई गई। हम लगातार संघर्ष कर रहे हैं। हम हर उस स्थान पर गए जहां हमारी सुनवाई हो सके और हमने देश के प्रमुख संस्थान एम्स में दलित विद्यार्थियों को जिस अत्याचार/भेदभाव का सामना करना पड़ता है, उसके बारे में बताया। हमने राष्ट्रीय दलित मानवाधिकार अभियान (एनसीडीएचआर) के शिष्टमंडल के सामने भी बयान दिया। इस पर थोरात समिति का गठन किया गया। इस समिति ने पुष्टि की है कि दलितों के साथ भेदभाव के आरोप सही हैं। आजादी के 60 वर्ष बाद भी यह नहीं कहा जा सकता कि हमें वास्तविक आजादी मिली है। यह सही नहीं है कि अनुसूचित जाति या दलित विद्यार्थी दाखिले के पात्र नहीं हैं। मैं जब दाखिल हुआ था तो मुझे सामान्य श्रेणी के उम्मीदवार जितने अंक मिले थे, फिर भी अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित सीट के लिए चुना गया। दलितों के अधिकरों का निरंतर हनन होता है। मैंने जब इस भेदभाव के विरोध में आवाज उठाई तो मुझे फाइनल परीक्षा में तीन विषयों में फेल कर दिया गया। मुझे यकीन नहीं हुआ। मैंने आवेदन देकर अनुरोध किया कि या तो मेरी दोबारा परीक्षा ली जाए या फिर मेरे पर्चों का फिर मूल्यांकन किया जाए। यह अनुरोध सामान्य तौर पर ठुकराया नहीं जा सकता। मगर मेरे लिए दोबारा परीक्षा आयोजित नहीं की गई। मेरे साथ किए गए सभी अत्याचारों और अन्य विद्यार्थियों के साथ किए गए अत्याचार थोरात समिति द्वारा साबित किए जाने के बावजूद हमारी मदद के लिए कुछ भी नहीं किया गया। एक परीक्षा दोबारा ली गई, मगर मेरा मानना है कि इसके लिए पाठ्यक्रम ज्यादा कर दिया गया और परीक्षा की वीडियो टेपिंग की गई, जिसकी कोई अनुमति नहीं ली गई थी। थोरात समिति ने आरोप सही बताए हैं फिर भी कोई कड़ी कार्रवाई नहीं की गई और हमें कोई सुरक्षा प्रदान नहीं की गई। लिखित ज्ञापन और शिकायत करने पर हमें शिकायत वापस लेने की धमकी दी गई। हमें शिकायत वापस लेने को कहा गया, क्योंकि उनके अनुसार इससे कोई फायदा नहीं होने वाला था। हमसे कहा गया कि इसमें कोई कुछ नहीं कर सकता। इससे पहले भी एम्स में विद्यार्थियों के साथ ऐसी घटनाएं लगातार होती रही हैं पर ऐसे भेदभाव के विरोध में हम आवाज उठाते हैं। हमारा एक संगठन है जिसे प्रोग्रेसिव मेडिकोज एंड साइंटिस्ट्स फोरम कहते हैं। यह इन मुद्दों पर चर्चा करता है और अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने की कोशिश करता है। हम आवेदन और ज्ञापन देने के बाद चुप नहीं बैठे हैं। हमने विरोध किया है, हम भोजन अवकाश के समय दोपहर में निदेशक के कार्यालय के सामने मौन प्रदर्शन और मौन मार्च आयोजित करते हैं। शिक्षक और कर्मचारी भी हमारी मदद करते रहे हैं और वे हमारे विरोध में सम्मिलित भी हुए हैं। हमने मीडिया को कई पत्र और प्रेस विज्ञप्तियां भी भेजी हैं। जब वार्षिक पल्स पोलियो कार्यक्रम चल रहा था उन्हीं दिनों आरक्षण विरोधी अभियान भी जारी थे। मुझे एक सीडी मिली, जिसमें कुछ लोगों को बाबा साहब डॉ. भीमराव आम्बेडकर का साहित्य जलाते हुए दिखाया गया था। इसकी कोई सुनवाई नहीं हुई और न ही कोई कार्रवाई की गई, लेकिन मैं थोरात समिति का धन्यवाद करता हूं जिंसने हमारे विरोध को वाजिब बताया और इसे सार्थक माना। थोरात समिति ने हमें देश के प्रमुख चिकित्सा संस्थान एम्स में हमारे साथ जारी भेदभाव और मानसिक उत्पीड़न के तथ्यों को साबित करने में मदद की है।

इस घटना से निम्नलिखित प्रावधानों का स्पष्ट उल्लंघन हुआ है–

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम 1989 की धारा–3 (1) (x)।

(v) जबरन मजदूरी कराना और भेदभाव

बंधुआ मजदूरी असल में गरीबी, बदहाली और दासता का दुष्चक्र है जहां कर्ज की वापसी धनराशि के बजाए सीधे मजदूरी से की जाती है। दलित चूंकि पुरातन काल से मजदूर रहे हैं तथा आधुनिकता ने उन्हें सामाजिक और आर्थिक उत्थान के बहुत कम अवसर दिए हैं, उनमें से ज्यादातर बंधुआ या गुप्त मजदूरी जैसे पुरातन तथा क्रूर तरीकों के शिकार आज भी हैं।

बंधुआ मजदूरी इस तथ्य से जुड़ी है कि कृषि में कार्य कर रहे अधिकतर दलित या तो भूमिहीन हैं या लगभग भूमिहीन हैं। अतः भूमि सुधार की असफलता आंशिक तौर पर समकालीन भारत में बंधुआ मजदूरी जारी रहने के लिए दोषी रही है। जमींदारों के लिए काम करने को मजबूर मजदूरों को बहुत कम मजदूरी देकर जमींदार अपनी जिम्मेदारी से बच जाते हैं, क्योंकि उन्हें मालूम है कि दलितों के जिन्दा रहने के लिए उनके द्वारा दिया गया काम ही एकमात्र सहारा है, और इसी से बंधुआ मजदूरी को बढ़ावा मिलता है। सामाजिक–आर्थिक बहिष्कार और धमकी या हिंसा ऐसे कारगर कारण हैं जिनसे मजदूरों को अधिक मजदूरी या न्यूनतम मजदूरी के बराबर पगार और रोजगार की बेहतर स्थिति की मांग करने से रोका जाता है। बंधुआ मजदूरी की वास्तविक त्रासदी यह है कि इसके जाल में बच्चे भी फंसे होते हैं। बंधुआ मजदूरों की केन्द्र प्रायोजित योजना के 1979 में किए गए मूल्यांकन के अनुसार 15 वर्ष से कम आयु के बंधुआ मजदूर कुल बंधुआ मजदूरों का 43 प्रतिशत हैं।[39]

संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार समिति के सदस्य जस्टिस पीएन भगवती ने बंधुआ मजदूरी को अमानवीय प्रक्रिया बताया है जिसमें "बंधुआ मजदूरों का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता, सभ्यता से उनका कोई संबंध नहीं होता और वे पशुओं से भी बुरा जीवन बसर करते हैं, क्योंकि पशु कम से कम स्वच्छंद घूम तो सकते हैं। बंधुआ मजदूरों को तब तक पीढ़ी दर पीढ़ी बंधुआ मजदूरी करनी होती है जब तक उनका कथित कर्ज समाप्त नहीं हो जाता लेकिन यह तो बंधुआ मजदूर के जीवन काल में कभी समाप्त नहीं होता। यह हमारी उस कल्याणकारी सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था के प्रतिकूल है, जिसकी स्थापना का हमने वादा किया है।..."[40]

भारत ने कई अंतर्राष्ट्रीय संधियों की पुष्टि की है जिनमें कर्ज के बदले बंधुआ मजदूरी के विभिन्न स्वरूपों को समाप्त कर दिया गया है। इनमें से प्रमुख है– दासों का व्यापार और दासता जैसी प्रथा और व्यवस्था के उन्मूलन का पूरक समझौता, जिसमें कर्ज के बदले बंधुआ मजदूरी की

---

39 कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन, बंधुआ मजदूरी के पुनर्वास की केन्द्र प्रायोजित योजना का मूल्यांकन अध्ययन। यूआरएल संदर्भ 16.07.07 http://planningcommission.nic.in/reports/peoreport/cmpdmpeo/volume1/131.pdf

40 जस्टिस पीएन भगवती antislavery.org यूआरएल संदर्भ 16.08.07 http://www.antislavery.org/homepage/campaign/bondedinfo.htm

यह परिभाषा दी गई है–

"कर्ज लेने वाले की शपथ से उत्पन्न स्थिति जिसमें वह अपनी सेवा देने या उसके नियंत्रण वाले व्यक्ति की सेवा को कर्ज की गारंटी बनाता है, यदि इन सेवाओं का मूल्य कर्ज की अदायगी को पूरा नहीं कर पाता है तथा इन सेवाओं का स्वरूप और अवधि निर्धारित और परिभाषित नहीं होते हैं।"[41]

बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 के अनुच्छेद–4 में साफतौर पर स्पष्ट किया गया है कि इस अधिनियम के लागू होने पर बंधुआ मजदूरी प्रथा समाप्त हो जाएगी और प्रत्येक बंधुआ मजदूर इस कानून के लागू होने पर मुक्त हो जाएगा और बंधुआ मजदूरी के किसी भी प्रकार के दायित्व से मुक्त हो जाएगा।

लेकिन इस कानून को ठीक ढंग से लागू नहीं किया गया है और अनुमान है कि भारत में अनुमानित एक करोड़ 50 लाख बच्चों समेत लगभग चार करोड़ लोग दासता जैसी स्थिति में अब भी काम कर रहे हैं।[42] सरकारी आंकड़ों के अनुसार बंधुआ मजदूरों में से 86.6 प्रतिशत अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के हैं।[43] इस समस्या के समाधान तथा प्रभावित लोगों का पुनर्वास करने के लिए उच्चतम न्यायालय के निर्णय में हालांकि कई प्रशासनिक व्यवस्थाएं की गई है। उच्चतम न्यायालय के निर्णय में कहा गया है कि संविधान के अनुच्छेद–21 और 23 के अंतर्गत जरूरी है कि बंधुआ मजदूरों का पता लगा कर उन्हें मुक्त कराया जाए और उनका समुचित पुनर्वास किया जाए। लेकिन राष्ट्रीय और राज्य सतर पर राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव से यह व्यवस्था बेअसर हो गई है।[44] निजी क्षेत्र में आमतौर पर मजदूरों के अधिकारों की कारगर निगरानी के अभाव के कारण कुछ हद तक समकालीन भारत में अस्पृश्यता की बर्बर व्यवस्था जारी है।

उत्तर प्रदेश के गाजीपुर का केदार राम

स्कूल कर्मचारी को शुरू से बहुत कम भुगतान

केदार राम दलित समुदाय से है और गाजीपुर के एक स्कूल में सफाई का काम करता है। उसे 1974 में सरकारी सहायता प्राप्त सीनियर बेसिक स्कूल में रिक्त पद पर सफाई कर्मचारी नियुक्त किया गया था। उसके प्राथमिक कार्यों में प्रांगण, कक्षाओं, शौचालय और स्नानघरों की सफाई

41 दासता, दासता व्यापार और दासता जैसी प्रथा और व्यवस्था उन्मूलन का पूरक समझौता। यूआरएल संदर्भ 16.08.07 http://www.unhchr.ch/html/menu3/b/30.htm

42 अस्पृश्यता : भारत में दलितों का आर्थिक बहिष्कार यूआरएल 15.08.07 http://www.international-council.org/paper_files/113_w_07.pdf

43 श्रम मंत्रालय, भारत सरकार, वार्षिक रिपोर्ट 2000–2001

44 बाबा साहेब डॉ. बी. आर. आम्बेडकर अध्ययन, कर्नाटक के जंजीरों से जकड़े मजदूर, यूआरएल 15.08.07 http://www.ambedkar.org/books/bl.htm

करना शामिल है। वह स्थाई पद पर नियुक्त है। 1974 से 1976 के बीच उसका मासिक वेतन सात रुपये था जो उसे नकद मिलता था। 1976 में उसका वेतन बढ़ाकर 13 रुपये कर दिया गया और उसके बाद 1991 तक कोई बढ़ोत्तरी नहीं की गई। अब उसे वेतन स्टेट बैंक के खाते के जरिए मिलने लगा। अक्तूबर 1991 में उसका वेतन बढ़ा कर 30 रुपये प्रतिमाह कर दिया गया। अप्रैल 1998 में आखिरीबार उसका वेतन बढ़ाकर 150 रुपये मासिक किया गया। इसे उसके स्टेट बैंक खाते में डाल दिया गया। स्कूल के हेडमास्टर ने उसे एक प्रमाणपत्र दिया जिसमें उसके 20 वर्ष के अनुभव और उसके वेतन का उल्लेख था। सचिव, प्राथमिक शिक्षा से संपर्क करने पर उसने बताया कि केदार राम का पद स्थाई नहीं है जबकि उसे स्थाई प्रवृत्ति के मूल पद पर नियमित तौर पर नियुक्त किया गया था। उसे बहुत ही कम वेतन मिल रहा है, क्योंकि उत्तर प्रदेश में अकुशल श्रमिक का न्यूनतम वेतन 2600 रुपये प्रति माह तय है। उत्तर प्रदेश में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी का वेतनमान 2550 से 3200 रुपये प्रतिमाह है। वह इंसाफ नहीं पा सका और उसे उस आय से वंचित रखा जा रहा है जिसका वह अपनी जाति के कारण सही तौर पर हकदार है। उसके बच्चे बड़े हो रहे हैं और उसके खर्च बढ़ रहे हैं तथा इस मामूली वेतन में गुजारा करना बहुत मुश्किल है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय में दायर मामला लंबित है।

यह घटना निम्नलिखित प्रावधानों का स्पष्ट उल्लंघन है–

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3 (1) (iv)

पंजाब के पटियाला जिले के राजपुरा गांव का बंत सिंह

मुक्त कराए गए बंधुआ मजदूरों और मानवाधिकार कार्यकर्त्ताओं पर जांच के दौरान हमला

पंजाब के संगरूर जिले के भवानीगढ़ सब–डिवीजन के अंतर्गत राजपुरा गांव में पांच बंधुआ मजदूरों का पता चला था और उनके बारे में जांच शांतिपूर्ण तरीके से चल रही थी। देव सिंह का पुत्र सत सिंह बंधुआ मजदूर था और मंजीत सिंह के पास काम करता था। काला सिंह बंधुआ मजदूरी छोड़ना चाहता था। मालिक ने जबरन उसकी तीन भैंसे ले ली क्योंकि काम पर रखे जाने के वक्त उसने मजदूर को पांच हजार रुपये दिए थे। मालिक ने तीन भैंसे इन रुपये के बदले में छीन लीं। इसके बाद सत सिंह को काम के बदले कुछ नहीं दिया गया। यह सिलसिला दो साल तक चलता रहा। तीन दलितों माखन सिंह, गुरमीत सिंह और युगराज सिंह ने इसके खिलाफ आवाज उठाई तो भवानीगढ़ पुलिस ने उन्हें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा–107 एवं 151 मामला के अंतर्गत गिरफ्तार कर लिया। जिला मजिस्ट्रेट के पास शिकायत दर्ज की गई और सत सिंह को कर्ज के बदले बंधुआ मजदूरी से मुक्त कराने का अनुरोध भी किया गया। जिला मजिस्ट्रेट ने मामले की छानबीन के

लिए समाज कल्याण अधिकारी को नियुक्त किया। अधिकारी ने 14 जून 2005 को राजपुरा में जांच तय की। अधिकारी ने बंधुआ मजदूरी के मामले में जांच की निर्धारित प्रक्रिया और उच्चतम न्यायालय के निर्देशों की अनदेखी की। जमींदारों और बंधुआ मजदूरों को साथ–साथ बुलाया गया। जमींदारों को बंधुआ मजदूरों और सामाजिक संगठन के कार्यकर्ताओं की पिटाई करने दी। इसके बाद बंत सिंह ने पुलिस थाने में मामला दर्ज कराने की कोशिश की। गांव पंचायत ने इस पर आपत्ति की और कहा कि मामला गांव के भीतर रहना चाहिए। दरअसल शुरू में उन्होंने मामला बंद करने के लिए बंत सिंह को जमीन और रकम की रिश्वत देने की कोशिश की। बंत सिंह पांचयत की इच्छा के विरुद्ध पुलिस थाने गया। मजदूर मुक्ति मोर्चा के साथ मिल कर बंत सिंह और अन्य दलितों ने 32 दिन तक पुलिस थाने पर धरना दिया और 8 अगस्त 2006 को एफआईआर दर्ज की गई। यह संघर्ष दो वर्ष से ज्यादा चला और इस संगठन ने हार नहीं मानी तथा सत्र न्यायालय में गवाही भी दी। 19 जुलाई 2004 को सत्र न्यायालय ने तीन अभियुक्तों को उम्र कैद की सजा सुनाई। इस फैसले के बाद बंत सिंह पर बार–बार घातक हमले हुए। गांव के उच्च जाति के लोग बंत सिंह को निशाना बनाने लगे। पहले हमले में उसे कुछ चोटें आई और वह बच गया। इस घटना की रिपोर्ट की गई, मगर उसके खिलाफ धारा–107 और 151 के अंतर्गत झूठा मुकदमा बना दिया गया। दूसरा हमला जोरदार था। बंत सिंह पर 8 दिसम्बर, 2005 को हमला किया गया मगर गांव वालों ने उसे बचा लिया। लेकिन 5 जनवरी 2005 को बंत सिंह को चारों ओर से घेर लिया गया और खेत में उसे बांध दिया गया। बार–बार हमले और ठोकरों से उसके घुटनों को चकनाचूर किया गया और इसी तरह बाजुओं को भी कुचला गया। इसके बाद गुंडे मारमार कर बंत सिंह के समर्थकों के पास जा पहुंचे और और शेखीभरे अंदाज में कहा कि उन्होंने उनके नेता को चपटा कर दिया है और वह खेत में पड़ा है। गांववाले मिल कर बंत सिंह को ढूंढने निकले और रात में उसकी खेतों में तलाश कर ली। तुरंत उसे जिला मुख्यालय के असपताल ले जाया गया लेकिन गुंडों ने यहां भी डाक्टरों से सांठगांठ कर रखी थी। बंत सिंह के उपचार में लापरवाही और देरी की गई। इससे उसकी बाजुओं में गैंगरीन हो गया और उन्हें काटना पड़ा। डाक्टरों की चिकित्सा रिपोर्ट में मामूली चोटें बताई गई। बंत सिंह ने गुंडों के खिलाफ धारा–323 और 325 के अंतर्गत मामला दर्ज कराया। "लेबर लिब्रेशन फ्रंट" ने बंत सिंह के संघर्ष और बचाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

मलकीत सिंह उर्फ काला सिंह का गुरनाम सिंह रिश्ते में भाई है। वह संगरूर जिले के एसएसपी एचएस चहल की रिश्ते में बहन का पति है। पुलिस ने बंधुआ मजदूरों – बंत सिंह, चरण सिंह, मोहिन्द्र सिंह, देव सिंह (बंधुआ मजदूर सत सिंह के पिता), मक्खन सिंह (सत सिंह के भाई) और कुलवंत सिंह (मानवाधिकार कार्यकर्ता) को गिरफ्तार कर लिया। पुलिस ने युवराज सिंह, बंत सिंह, संत सिंह और चरनजित सिंह पर भी झूठे आरोप लगाए। गिरफ्तार किए गए तथा मामले में बेवजह फंसाए गए सभी लोग अनुसूचित जाति के हैं। एचएस चहल अपने रिश्तेदारों को बचाने के लिए अपने पद का दुरुपयोग करा रहा है। वह कानूनी रूप से प्रतिबंधित बंधुआ मजदूरी को

बढ़ा रहा है। जमींदारों की ओर से जमानत लेने के लिए बहुत दबाव था, उनहें मुकदमा लड़ने के लिए कोई वकील नहीं मिला। आखिरकार वे उच्च न्यायालय से जमानत ले पाए उन्हें दो लाख रुपये का मुचलका देना पड़ा। बंत सिंह और अन्य पीड़ितों को डीडीवीए का सहयोग मिल रहा है। उन्होंने पंजाब राज्य अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति पंजाब राज्य आयोग से भी संपर्क किया। यह मामला डीआईजी पटियाला के पास भेजा गया। एकमात्र निर्णायक सिफारिश यह थी कि धारा–307 के अंतर्गत आरोप हटाया जाए। इसके बाद संगठन ने राज्य मानवाधिकार आयोग और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग से संपर्क किया। एक साथ कई अपराध हुए हैं और निम्नलिखित प्रावधानों का उल्लंघन किया गया है–

- भारतीय संविधान का अनुच्छेद–21
- भारतीय संविधान का अनुच्छेद–23
- आईसीसीपीआर (इंटरनैशनल कोवेनेंट फॉर सिविल एंड पोलिटिकल राइट्स) का अनुच्छेद–8(3)(ए)
- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम 1989 की धारा–3 (i) (vi)

पंजाब के संगरूर जिले के उप्पो खडयाल गांव का बिट्टू

जमींदार ने दलित युवक की हत्या की

मधर सिंह का 22 वर्ष का पुत्र उप्पो खडयाल गांव का रहने वाला था जो पंजाब के संगरूर जिले के महिला पुलिस थाने के अंतर्गत आता है। बिट्टू जमींदार करनैल सिंह के पुत्र जगदेव सिंह के पास दिहाड़ी मजदूर के रूप में काम करता था। वह सबसे बड़ा बेटा था और परिवार का एकमात्र कमाऊ सदस्य। वह बीमार हुआ तो चार से पांच दिन तक काम पर नहीं गया। 2 नवम्बर 2006 को रात में लगभग सुबह 8 बजे जगदेव सिंह और भोला सिंह बिट्टू के घर आए और उसे जबरन मोटरसाइकिल पर बैठा कर अपने घर ले आए। बिट्टू की मां उनसे बार–बार अनुरोध करती रही कि वह उसके बेटे को न ले जाएं। वह उनके पीछे गई और जगदेव सिंह के धर पहुंच कर देखा कि उसका पुत्र बिट्टू लगभग मर चुका है। अभियुक्तों की पत्नियां वहां खड़ी थीं। कुछ देर बाद बिट्टू की मां के कुछ रिश्तेदार भी वहां आ गए। पीड़ित के रिश्तेदार ने जगदेव सिंह और भोला सिंह तथा उनकी पत्नियों के साथ मिल कर बिट्टू को उठा कर जीप में सुबह साढ़े दस बजे विशाल अस्पताल सुनाम ले गए। उसे दिन में ढाई बजे मृत घोषित कर दिया गया। उसके शव को पोस्टमार्टम के लिए सुनाम के सरकारी अस्पताल ले जाया गया। गांव सरपंच हरबंस सिंह ने मुआवजे के तौर पर पीड़ित के परिवार को एक लाख रुपये देने की कोशिश की। उन्होंने रकम स्वीकार नहीं की और 3 नवम्बर 2006 को दोषियों के खिलाफ सदर सुनाम पुलिस थाने में एफआइआर दर्ज करा दी। भारतीय दंड संहिता की धारा–306, 341 के अंतर्गत मामला दर्ज किया गया। बीस दिन के बाद मजदूर मुक्ति मोर्चा ने मामला उठाया और अभियुक्तों को गिरफ्तार किया गया, लेकिन शीघ्र ही

उन्हें जमानत पर रिहा कर दिया गया। बाद में इस संगठन के कार्यर्ताओं को एक मामले में फंसाया गया और जेल में डाल दिया गया। पीड़ित परिवार को अभी प्रशासन से कोई मुआवजा नहीं मिला है। मुकदमा चल रहा है।

इस मामले से निम्नलिखित प्रावधानों का स्पष्ट उल्लंघन दिखाई देता है–

- भारतीय संविधान का अनुच्छेद–23
- आईसीसीपीआर (इंटरनैशन कोवेनेंट फॉर पॉलिटिकल एंड सिविल राइट्स) का अनुच्छेद–8 (3) (ए)
- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम 1989 की धारा–3 (1) (vi)

पंजाब के संगरूर जिले की धुरी तहसील के बबनपुर गांव का जरनैल सिंह

पंजाब में बंधुआ मजदूरी

जरनैल सिंह एक नियोक्ता सुरिन्दर सिंह के पास सीरी (पंजाब में बंधुआ मजदूरी का एक स्वरूप) था। यह गैरकानूनी प्रथा है। काम पर आते ही नियोक्ता ने जरनैल सिंह को अग्रिम राशि दी थी। इसके बाद उसे कोई भुगतान नहीं किया गया। जब भी उसने रकम मांगी, मालिक ने उसकी पिटाई की। उसका सामाजिक उत्पीड़न भी किया गया। मालिक ने उसे धमकी दी और कहा कि अगर वह किसी को बताएगा कि उसे मजदूरी नहीं मिलती है तो उसे मार दिया जाएगा। उसे कोई छुट्टी भी नहीं मिलती थी। अगर वह छुट्टी लेता था तो उसे अपने बदले में रखे गए आदमी की मजदूरी का भुगतान करना पड़ता था। जब जरनैल सिंह ने अपने मालिक से वेतन की मांग की तो उसने जवाब दिया कि वह उसका कर्जदार है। पीड़ित ने जब एक संगठन की मदद से प्रशासन से संपर्क किया तो मालिक ने दीवानी अदालत में रकम की वसूली का दावा कर दिया। पीड़ित के पास कोई सम्मन नहीं आया और अदालत ने 9 मार्च 2006 को मालिक के हक में 35,205 रुपये की एकतरफा डिक्री जारी कर दी। 8 मई 2006 को अतिरिक्त सिविल जज (सीनियर डिवीजन) धुरी की अदालत में निष्पादन कार्रवाई शुरू हुई। डीडीवीए फिल्लौर इस मामले को उठाती रही और उसने संगरूर के डीएम तथा एसएसपी से संपर्क किया, जिन्होंने यह मानने से इंकार कर दिया कि पीड़ित बंधुआ मजदूर है और मामला दर्ज करने से मना कर दिया। इस तथ्य के बावजूद यह इंकार किया गया कि स्वयं मालिक ने वर्ष 2003–04 में स्वीकार किया था कि पीड़ित उसके पास सीरी था।

यह घटना निम्नलिखित प्रावधानों का स्पष्ट उल्लंघन है–

- भारत के संविधान का अनुच्छेद–21 और 23
- बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976
- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम 1989

मध्य प्रदेश के मंदसौर जिले के धारीवाखेड़ी गांव की लालीबाई

अपमानजनक कार्य करने से इंकार करने पर दलित महिला पर अत्याचार

मंदसौर जिले के धारीवाखेड़ी गांव के वाल्मीकि समुदाय के लोगों को अपनी आजीविका के लिए सिर पर मैला ढोने को मजबूर किया जाता है। लालीबाई को वाल्मीकि परिवार में शादी के बाद समुदाय के रूढ़िवादी सदस्यों के दबाव के कारण यह काम करने को मजबूर होना पड़ा। शादी के समय उसकी आयु 12 वर्ष थी। उसके ससुराल वालों ने स्वयं लालीबाई को मानव मल सिर पर ढोने का काम करने के लिए जोर डाला। इसके फलस्वरूप उसे चर्म रोग हो गया जो कि गंदगी–भरा काम करने के कारण ऐसा होना आम बात है। 2003 में गरिमा अभियान के अंतर्गत एक्शनएड इंडिया के कार्यकर्ता इस गांव में आए। इस अभियान का मकसद सिर पर मैला ढोने की प्रथा का अंत करना था। इन कार्यकर्ताओं से प्रभावित और प्रेरित होकर लालीबाई ने यह काम न करने की ठान ली। इसका गांव के रूढ़िवादियों ने जमकर विरोध किया। गांव के उच्च जाति के लोगों ने दलील दी कि सिर पर मैला ढोने का काम तो दलितों के लिए ही है क्योंकि उच्च जाति के लोग तो इसे स्वयं नहीं कर सकते। गांव के उच्च जाति के लोगों ने लालीबाई के परिवार के सदस्यों को उसके फैसले के खिलाफ खड़ा करने की सुनियोजित योजना बनाई और लालीबाई के खिलाफ झूठे आरोप लगाए गए। उसके पति को शराब पिला कर अपनी पत्नी के फैसले का विरोध करने की शह दी गई। लालीबाई को देखकर अन्य दलित महिलाएं भी यह काम छोड़ने को आगे आईं, जिससे उच्च जाति के लोग आगबबूला हो गए। लालीबाई की लड़की की शादी में कुछ गांववासियों ने उसके घर पर हमला कर सभी बर्तनों तथा खाने–पीने की वस्तुओं को नष्ट कर दिया। लड़की का दहेज भी लूट लिया गया। गांववालों ने जोर देकर कहा कि दलितों को गांव में विवाह आयोजित करने की अनुमति नहीं होनी चाहिए। लालीबाई पुलिस के पास शिकायत दर्ज कराने गई, लेकिन पुलिस ने ऐसा करने से इंकार कर दिया। तीन दिन बाद पुलिस गांव में आई और लालीबाई से अन्य गांववासियों के साथ सद्भावपूर्ण संबंध बनाए रखने और उन्हें अपने खिलाफ न करने की नसीहत दी। लालीबाई ने कहा कि उसने इसकी शुरुआत नहीं की, बल्कि यह तो सिर पर मैला ढोने से इंकार करने का परिणाम है। नवम्बर 2004 में ठाकुर समुदाय के लोगों ने उसके घर पर फिर हमला किया और घर में आग लगा दी जिससे पशु तथा घर जल गए। इसके बाद पुलिस ने उसकी शिकायत दर्ज की। उसके घर में लगी आग पड़ोस में भी फैल गई। गांववालों ने अखबार में झूठी खबर छपवा दी और लालीबाई को आग के लिए जिम्मेदार ठहराया। पीड़ित के अनुसार यह मामला निम्नलिखित प्रावधानों का उल्लंघन है–

- सिर पर मैला ढोने वालों के रोजगार और शुष्क शौचालय निर्माण के प्रावधान से संबंधित मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम

- लैट्रीन (प्रतिबंध) अधिनियम, 1993
- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (पीओए) अधिनियम 1989

कर्नाटक के बंगलौर जिले के ग्रामीण क्षेत्र का मंजूनाथ

मजदूरी का हक जताने पर दलित की पिटाई

बालय्या का पुत्र मंजूनाथ बंगलौर ग्रामीण जिले के मगाडी तालुक में कुदुर होबली, कननूर गेट में जमींदार गोविन्द सिंह के पुत्र सुभाष सिंह के पास 2006 से पहले तीन साल तक बंधुआ मजदूर के रूप में काम कर रहा था। मंजूनाथ के पिता ने मजदूरी का अग्रिम भुगतान लिया था जो कि पांच हजार रुपये प्रतिवर्ष के हिसाब से था। मंजूनाथ मिट्टी उठाने, पशु चराने और आयुर्वेदिक दवाएं बनाने में मदद देने का काम करता था। 13 अक्तूबर 2006 को मंजूनाथ घर वापस आ गया, क्योंकि वह बीमार होने की वजह से काम नहीं कर पा रहा था। 16 अक्तूबर 2006 को जमींदार उसके घर आया और उसे काम पर चलने को कहा। मना करने पर वह मंजूनाथ को खींच कर अपने खेत तक ले गया। मंजूनाथ ने बीमारी की वजह से काम न कर सकने की मजबूरी बताई तो जमींदार ने उसे भद्दी गालियां दीं और कर्ज लौटाने को कहा। उसने धमकी दी कि वह तब तक कहीं और काम के लिए नहीं जाएगा, जब तक वह रकम नहीं लौटा देता। इसके बाद अचानक उसने मंजूनाथ की पिटाई शुरू कर दी और उसका गला दबाने लगा। मगर मंजूनाथ भाग कर बच निकला और घर लौट आया। मंजूनाथ ने 17 अक्तूबर 2006 को तहसीलदार के पास शिकायत दर्ज की जिसके पास बंधुआ मजदूरी के खिलाफ कार्रवाई करने का अधिकार है। तहसीलदार ने नायब तहसीलदार से मामले की जांच कर रिपोर्ट देने को कहा। नायब तहसीलदार ने राजस्व निरीक्षक के साथ 18 अक्तूबर 2006 को जांच की और 26 अक्तूबर को रिपोर्ट दी जिसमें कहा गया कि मंजूनाथ की शिकायत में दर्ज आरोप सही हैं। 18 अक्तूबर 2006 को जांच के दौरान कई गांव वालों ने नायब तहसीलदार और राजस्व निरीक्षक को बताया कि मंजूनाथ जमींदार सुभाष सिंह के पास तीन साल से बंधुआ मजदूर था। वह 13 अक्तूबर को घर आया था, और उसके मालिक ने उसकी पिटाई की थी। 21 अक्तूबर को सुभाष सिंह ने तहसीलदार को अपने जवाबी शपथपत्र में बताया कि मंजूनाथ की शिकायत झूठी है और वह उसके पास बंधुआ मजदूर के रूप में काम नहीं कर रहा था। लेकिन उसने उसी दिन तहसीलदार के सामने स्वीकार किया था कि मंजूनाथ उसके लिए काम करता था। तहसीलदार ने 28 अक्तूबर 2006 को सभी शिकायतें और जांच के कागजात सहायक आयुक्त के पास कार्रवाई के लिए भेज दिए। तहसीलदार ने 9 नवम्बर 2006 को कुदुर पुलिस थाने के सब इंस्पेक्टर से सुभाष सिंह के खिलाफ आपराधिक मामला दर्ज करने को कहा क्योंकि वह कानून के प्रावधानों के खिलाफ मंजूनाथ से बंधुआ मजदूरी करा रहा था। सहायक आयुक्त ने 14 नवम्बर 2006 को तहसीलदार को जवाब दिया और बंधुआ मजदूरी प्रथा उन्मूलन अधिनियम 1976

के अंतर्गत उल्लंघनकर्ता के खिलाफ आपराधिक कार्रवाई शुरू करने को कहा और शिकायतकर्त्ता की जाति, आयु, जमीन और आय का विवरण देने को कहा। तहसीलदार ने 8 जनवरी 2007 को सहायक आयुक्त को लिखित रूप से मांगा हुआ विवरण दिया। राजस्व निरीक्षक ने मंजूनाथ के गांव में जा कर पता किया कि उसका परिवार आदि कर्नाटक जाति का है और उनके पास कोई जमीन नहीं है। सहायक आयुक्त ने 5 फरवरी 2007 को उपायुक्त को लिखा और तहसीलदार द्वारा दिए गए सभी कागजात और तथ्य उपायुक्त की कार्रवाई के लिए भेज दिए। सहायक आयुक्त ने 4 अप्रैल 2007 को तहसीलदार को फिर लिखा और बीएलएसए एक्ट 1976 के अंतर्गत की जाने वाली कार्रवाई की सूचना दी यानी उल्लंघनकर्ता के खिलाफ कार्रवाई शुरू करना और बंधुआ मजदूर को मुक्त कराकर मुक्ति प्रमाणपत्र जारी करना। पत्र में यह भी कहा गया कि सुभाष सिंह के खिलाफ शुरू की गई आपराधिक कार्रवाई का पूरा विवरण दिया जाए। परंतु कोई शिकायत दर्ज नहीं की गई थी। सहायक आयुक्त ने अभी यह प्रमाणित नहीं किया था कि मंजूनाथ बंधुआ मजदूर था और मुक्ति प्रमाणपत्र भी जारी नहीं किया था। एससी एंड एसटी पीओए एक्ट की धारा–3 के अंतर्गत मुकदमा भी दर्ज नहीं किया गया। अतः बंधुआ मजदूर को बीएलएसए एक्ट या एससी एंड एसटी पीओए एक्ट के अंतर्गत कोई मुआवजा नहीं मिला है और उल्लंघनकर्ता को इन कानूनों के अंतर्गत कोई सजा भी नहीं मिली है। "जीविका, विमुक्ति ट्रस्ट" तथा कुछ अन्य संगठनों ने पीड़ित को न्याय प्राप्त करने के प्रयास में मदद और समर्थन दिया है।

इस मामले से निम्नलिखित प्रावधानों का स्पष्ट उल्लंघन हुआ है, मगर इनके अंतर्गत कोई शिकायत दायर नहीं की गई–

- भारतीय संविधान का अनुच्छेद–23
- बंधुआ मजदूरी प्रथा उन्मूलन अधिनियम धारा–4, 5, 6, 9, 16, 17, 18
- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3

तमिलनाडु के कोयम्बतूर जिले के मुतुनगर की सुंदरम्मल और अन्य

दलित महिला से बंधुआ मजदूरी और उनका यौन उत्पीड़न

कोयम्बतूर, इरोडे, सेलम और करूर जिलों में खेती में लगे दलितों को बंधुआ मजदूर बनने को मजबूर किया जाता है। सुंदराम्मल और उसके पति बंधुआ मजदूर बनाए गए थे। उनसे 12 घंटे काम लिया जाता है और बहुत कम मजदूरी दी जाती है। मालिक वर्धराज उन्हें दीवाली पर सालाना बोनस भी नहीं देता। वह उनकी रकम रख लेता और उन पर कर्ज चढ़ता जाता। आखिरकार उन्होंने काम के लिए उसके गोदाम पर नहीं जाने का फैसला किया। मालिक ने उन्हें कर्ज वापस करने के लिए प्रताड़ित किया। कर्ज वापिस करने के लिए वे काम करने दूसरे मालिक के पास गए। 20 जनवरी 2007 को वर्धराज और उसके समुदाय के कुछ लोगों ने दलित महिला, उसके पति और

उनके घर पर हमला किया। उन्होंने जातिगत गालियां दीं और पिटाई की। उन्होंने सुंदराम्मल के साथ बलात्कार करने की भी कोशिश की। सुंदराम्मल मदद के लिए चिल्लाई जिसे सुनकर गांव के आसपास के लोग आए और उसे बचा लिया गया। उसका परिवार पुलिस थाने गया और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम, 1989 की धारा–3 के अंतर्गत 21 जनवरी 2007 को एक मामला दर्ज करवाया। उसे उच्च जाति के लोगों द्वारा प्रताड़ित किया गया, ताकि वह मामला वापिस लेने को मजबूर हो जाए। मगर उसने ऐसा नहीं किया। वर्तमान में परिवार को खतरा है और उसे उच्च जाति के सदस्यों से कोई संरक्षण नहीं मिला है। तमिलनाडु दलित वीमेंस मूवमेंट ने सुंदराम्मल का मामल उठाया है।

उत्तर प्रदेश की मंजू देवी और अन्य

दलित महिलाओं द्वारा वेतन का तकाजा करने पर उनके साथ बदसलूकी और पिटाई

यह घटना फसल कटाई के दौरान हुई। मंजू देवी गांव के अन्य मजदूरों के साथ कृषि मजदूर का काम करती है। एक दिन उन्होंने सात बीघा से अधिक जमीन पर फसल काटी। जमींदार ने उन्हें तेजी से काम करने को कहा, क्योंकि वह बेमौसमी फसल की बुआई करना चाहता था। मजदूरों ने उत्तर दिया कि जितनी जमीन पर कटाई हुई है वहां बुआई शुरू की जा सकती है। जमींदार को यह जवाब अच्छा नहीं लगा और उसने एक मजदूर को जो कि मंजूदेवी का पति था, गालियां देनी शुरू कर दी। मंजू देवी जब अपने पति के बचाव में आई तो उसे भी गालियां दी गईं और दोनों के साथ धक्का–मुक्की की गई। जमींदार ने उन्हें उस दिन की मजदूरी देने से भी मना कर दिया। इस तरह दुखी और घायल होकर वे अपनी बस्ती में पहुंचे और अपनी जाति के लोगों को सब कुछ बताया। दलित जब मजदूरी के बारे में बात करने आए तो उच्च जाति के लोगों ने सार्वजनिक तालाब की कंटीली तार से घेराबंदी शुरू कर दी। यह तालाब दलितों के लिए पानी का बड़ा स्रोत है, क्योंकि उनके पास पानी लेने का कोई और स्थान नहीं है। कुछ दलित महिलाएं मौके पर गयीं और घेराबंदी का विरोध किया। इस बीच उच्च जाति के लोगों ने पुलिस बुला ली और उनकी मदद से उन्होंने जबरन तालाब पर कंटीली तारों से घेराबंदी कर ली। इस दौरान टकराव भी हुआ और एक दलित महिला घायल हुई क्योंकि उसे धकेलने के लिए बंदूक के मुट्ठे का इस्तेमाल किया गया था। वह गर्भवती थी और इस प्रकार धकेले जाने से उसका गर्भपात हो गया। गांव में दो संगठन हैं– मजदूर सभा और नौजवान इन्कलाबी सभा उनके झंडे तले और उनकी वित्तीय मदद से पीड़ितों समेत दलित परिवारों ने रात को ब्लॉक कार्यालय (तहसील परिषद)

के सामने धरना दिया। जिला मजिस्ट्रेट ने तब कार्रवाई की और कहा कि तीन दिन के भीतर कंटीली तार हटा ली जाएगी और मंजू देवी को मजदूरी मिल जाएगी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। इसलिए 20 जनवरी को पीड़ितों और उनके समर्थकों ने गांव के पुलिस थाने पर धरना दिया। धरना 35 दिन तक चला। पुलिस स्टेशन द्वारा सुनवाई से इंकार किए जाने पर गांववालों ने गांव में लम्बे मार्च की तैयारी शुरू कर दी। मार्च शुरू होने से एक दिन पहले मंजू देवी की एफआइआर दर्ज की गई और बाद में एससी/एसटी एक्ट के अंतर्गत मामला बनाया गया। इसके बाद अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया। मार्च भी निकाला गया। पुलिस थाना प्रभारी, एसडीएम, डीएम की मौजूदगी में गिरफ्तार लोगों से बातचीत की गई, जिसमें मांग की गयी कि 24 घंटे में कंटीली तार हटाई जानी चाहिए और मंजू देवी को मजदूरी दी जानी चाहिए। लेकिन फिर से आगे कार्रवाई नहीं की गई। उस समय चुनाव होने वाले थे और एक स्थानीय राजनीतिक नेता राजीव बसवाड़ के नेतृत्व में आंदोलनकारियों ने 50 घंटे की भूख हड़ताल की। इसके बाद मजदूर/किसान रैली निकाली गई। रैली में शामिल हर व्यक्ति को गिरफ्तार कर लिया गया। इसके बाद क्रमिक अनिश्चितकालीन भूख हड़ताल शुरू की गई जो 28 दिन तक चली। भूख हड़ताल पर बैठे लोगों को पकड़ कर जिला जेल भेजा गया। इस गांव में महर (स्वतंत्रता से पहले के दलित आंदोलन के जरिए दलितों को सार्वजनिक सुविधाओं का अधिकार मिला था) आंदोलन के बाद दलितों को सभी अधिकार बहाल किए गए थे। इस आंदोलन के 80 वर्ष बाद इस प्रतिबंधित जाति प्रथा का फिर असर हो रहा है। इस मामले में गृह सचिव ने आदेश दिया है कि कंटीली तार हटाई जाए, लेकिन स्थानीय प्रशासन ने इस आदेश को लागू करने का कोई संकेत नहीं दिया है। हाल में उच्च न्यायालय ने एसडीएम के नेतृत्व में कंटीली तार हटाने का निर्देश दिया है। अभी इस पर कोई कार्रवाई नहीं की गई।

- बंधुआ मजदूरी एससी/एसटी पीओए यानी अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3 (1) के अंतर्गत आपराधिक अपराध है और अस्पृश्यता के आधार पर कर्तव्य का पालन गैर–एससी/एसटी समुदाय के किसी सार्वजनिक अधिकारी द्वारा न किया जाना एससी/एसटी पीओए की धारा–4 के अंतर्गत दंडनीय अपराध है।
- अस्पृश्यता के आधार पर जल स्रोत तक पहुंच की मनाही करना भी एससी/एसटी पीओए एक्ट की धारा 3 (1) (ii) के अंतर्गत अपराध है।

(vi) धार्मिक मामलों और सामाजिक संबंधों में भेदभाव

दलितों के धार्मिक और सामाजिक संबधों पर पूर्ण नियंत्रण जातिवादी व्यवस्था का आधार है। सदियों से मंदिरों में दलितों के प्रवेश की मनाही है। वे पुजारी नहीं बन सकते और उन्हें पवित्र धार्मिक पुस्तकें पढ़ने का अवसर भी नहीं मिलता। दलितों को हिन्दूवाद को समझने में बाधा उत्पन्न करने वाली प्रथा कायम है जिसके तहत उन्हें उच्च जाति के हिन्दुओं के साथ सामाजिक संवाद नहीं करने

दिया जाता। भारत में जातिवाद गैर–वैदिक धर्मों में भी विद्यमान है। धार्मिक मामलों और सामाजिक संबंधों में भेदभाव से दलितों के विश्वास और आत्म–सम्मान में कमी आई है।

पूरी तरह धार्मिक आधार पर भेदभाव के कई स्वरूप हैं और यह मात्र हिन्दूवाद तक सीमित नहीं है। वर्ष 1936 में मंदिर प्रवेश उद्घोषणा से पहले दलितों को देश भर में मंदिरों में प्रवेश पर मनाही थी। इस उद्घोषणा के बाद स्थिति में परिवर्तन आया है पर ग्रामीण भारत में अस्पृश्यता रिपोर्ट के अनुसार सर्वेक्षण किए गए 64 प्रतिशत गांवों में (उत्तर प्रदेश में 47 प्रतिशत, कर्नाटक में 94 प्रतिशत)[45] मंदिरों में दलितों को प्रवेश की मनाही है। देशभर में कई हिंसक संघर्ष मंदिर में प्रवेश और उससे जुड़ी शत्रुता से संबंधित हैं। दलितों के मंदिरों में प्रवेश के खिलाफ वही लोग हैं जो धार्मिक प्रवचन के जरिए दलितों को अपने से नीचे समझने को उचित मानते हैं। वे दलितों को वर्ण प्रणाली में तो रखते हैं मगर उन्हें धार्मिक गतिविधि और सामूहिक पूजा से अलग रखते हैं। सर्वेक्षण किए गए लगभग आधे गांवों में तो दलितों को गांव के भीतर बारात नहीं निकालने दी जाती। इसी प्रकार आधे गांवों में उन्हें श्मशान स्थल का इस्तेमाल नहीं करने दिया जाता। दलित उन श्मशान स्थलों का इस्तेमाल नहीं कर सकते जिनका इस्तेमाल उच्च जाति के लोग करते हैं। अस्पृश्यता केवल हिन्दू धर्म में ही नहीं है अपितु अन्य धर्मों में भी जगह बना चुकी है, जैसे सिक्ख, ईसाई और इस्लाम धर्म, जबकि इन धर्मों को तो उदार माना जाता है। कई दलित ईसाई गिरिजाघरों में अलग स्थान पर प्रार्थना करते हैं और शवों को अलग कब्रगाहों में दफन करते हैं। मुस्लिम बने दलितों को अरब, पर्शिया या मध्य एशिया मूल के मुसलमानों से भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

दलित जनसंख्या का सामाजिक संबंध पूरी तरह नियंत्रित है। उच्च जाति के लोगों से दलितों का अलगाव, आवास में अलगाव के अलावा, विशेष तौर पर निजी मामलों में भी है। सर्वेक्षण किए गए 73 प्रतिशत गांवों में दलितों को उच्च जाति के लोगों के घरों में नहीं जाने दिया जाता है और 70 प्रतिशत गांवों में उन्हें उच्च जाति के लोगों के साथ खाने नहीं दिया जाता है।[46] भोजन और खाने के बारे में प्रतिबंध भोजन की शुद्धता के विचार के कारण खासतौर पर ज्यादा है। उच्च जाति के कई लोग दलितों द्वारा पकाए खाने को चखना भी नहीं चाहते और वे अपने बच्चों को दलित बच्चों के साथ खाने से भी मना करते हैं। चाय की कई दुकानों में दलितों को अलग गिलास इस्तेमाल करने को कहा जाता है, ताकि उच्च जाति के लोगों की शुद्धता बनाये रखी जा सके। कपड़ों के रंग या सार्वजनिक सड़कों पर चप्पल पहनने पर प्रतिबंध खुलेआम लागू हैं, ताकि जान बूझ कर दलितों का दमन किया जा सके। देश के गांवों में अब भी उच्च जाति के लोगों के इलाके में दलितों द्वारा जूते निकाल कर चलने और उच्च जाति के लोगों के सामने बैठने के बजाए खड़े रह कर और सिर झुका कर बात करने की प्रथा जारी है।

---

45 शाह, मंदर, थोरात, देशपांडे और बाविस्कर, ग्रामीण भारत में अस्पृश्यता, सेज प्रकाशन, 2006

46 शाह, मंदर, थोरात, देशपांडे और बाविस्कर, ग्रामीण भारत में अस्पृस्ता, सेज प्रकाशन, 2006

ग्रामीण भारत में अस्पृश्यता सर्वेक्षण के कुछ परिणाम निम्न सूची से स्पष्ट होते हैं।

सार्वजनिक व्यवहार में भेदभावपूर्ण प्रतिबंध (स्वरूप/स्थान घटनाओं के अवरोही क्रम में, 11 राज्यों से प्राप्त आंकड़े)			
अस्पृश्यता का स्वरूप/स्थान	गांवों का प्रतिशत जहां चलन है	गांवों का प्रतिशत जहां चलन नहीं है	सर्वेक्षण किए गए कुल गांव
सड़कों पर बारात निकालने पर प्रतिबंध	47.4 (229)	49.9	483
उच्च जाति के लोगों के सामने खड़े रहने की बाध्यता	25.6 (136)	67.9	532
सार्वजनिक सड़कों पर त्यौहार जुलूस का प्रतिबंध	23.8 (114)	64.2	478
नए/शोख कपड़े पहनने पर रोक	19.0 (101)	75.1	531
सार्वजनिक स्थान पर छाते के उपयोग पर रोक	16.7 (82)	80.4	490
काले चश्मे पहनने पर रोक और धूम्रपान निषेध	13.7 (66)	82.5	481
सार्वजनिक सड़कों पर चप्पल पहनने पर रोक	10.6 (47)	86.9	443
सार्वजनिक सड़कों पर साइकिल चलाने पर रोक	7.1 (32)	90.6	448

स्रोत : ग्रामीण भारत में अस्पृश्यता

ब्रैकेट के आंकड़े उन गांवों की संख्या हैं जहां इस प्रथा का चलन है। उन गांवों में जहां प्रथा के बारे में स्थिति स्पष्ट नहीं है उन्हें किसी भी श्रेणी में सम्मिलित नहीं किया गया। सर्वेक्षण किए गए कुल गांवों में वे शामिल नहीं हैं जहां संबंधित प्रथा नहीं है।

उड़ीसा के केन्द्रपाड़ा के केरेडगडा का दलित समुदाय

दलितों को मंदिर में प्रवेश नहीं करने दिया गया

केरेडगडा गांव, बालिसहिपाटन ग्राम पंचायत के अंतर्गत, केन्द्रपाड़ा से 40 किलोमीटर दूर स्थित है। गांव की जनसंख्या लगभग सात हजार है, जिसमें से 500 दलित हैं। जाति के आधार पर परिवारों की संख्या है– कैवर्ता–25, पाना–18, कंडारा–32, हाडी–15, दोहा–25, महुरिया–6,

केला–1 अर्थात् कुल मिलाकर केरेडगडा में 132 दलित परिवार हैं, जिनके लोगों की तादाद 1500 है। केरेडगडा का जगन्नाथ मंदिर 300 साल पुराना है। भगवान जगन्नाथ की मूर्ति के सामने मंदिर की दीवार में नौ छेद हैं और दलितों को इन्ही छेदों में से पूजा करनी होती है। इस प्रतिबंध के बावजूद दलितों ने कई बार मंदिर में घुसने की कोशिश की। 15 नवम्बर 2005 को कार्तिक पूर्णिमा के दिन छह दलित महिलाओं ने मंदिर में प्रवेश का प्रयास किया। उन्हें पुजारी ने पहचान लिया और उन्हें भलाबुरा कहा तथा प्रत्येक पर 1001 रुपये का जुर्माना लगा दिया, ताकि मंदिर की शुद्धि की जा सके। उन्हें कब्जे में रखा गया और जुर्माना अदा करने को कहा गया। घटना की जानकारी मिलने पर गांव के दलितों का प्रमुख मंदिर पहुंचा। उस समय तक स्थानीय पुलिस भी आ गई थी और दोनों ने मिलकर दलित महिलाओं को मुक्त कराने में मदद की और जुर्माना भी रद्द करा दिया गया। इसके परिणामस्वरूप मंदिर में प्रवेश का अभियान शुरू किया गया। इसका नेतृत्व राज किशोर मुदुल ने किया। दलितों ने मंदिर में अपने प्रवेश के मुद्दे पर प्रमुख नेताओं का ध्यान आकृष्ट किया। ज्ञापन पर हस्ताक्षर करवा कर उन्हें राज्य के मुख्यमंत्री, हरिजन और जनजाति विकास मंत्री, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति आयोग, राज्य मानवाधिकार आयोग, उड़ीसा देवोत्तर कमिश्नर और केन्द्रपाड़ा के कलेक्टर तथा एसपी को भेजा गया। इसके बाद केन्द्रपाड़ा के डीएसपी और राजनगर के तहसीलदार ने 23 मार्च 2006 को इस मुद्दे की संयुक्त जांच की।

संयुक्त जांच रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि केरेडगडा का जगन्नाथ मंदिर सार्वजनिक स्थान है और वहां दलितों के प्रवेश को रोका नहीं जा सकता है। ऐसी किसी कार्रवाई का सुझाव हालांकि नहीं दिया गया कि कब दलितों को प्रवेश की अनुमति दी जाएगी। 16 अक्तूबर 2006 को केरेडगडा के दलित समुदाय ने प्रस्ताव पारित किया कि उनकी ओर से आम्बेडकर लोहिया विचार मंच को हस्तक्षेप करने की अनुमति दी जाए। यह संगठन दलितों और जनजातीय लोगों के हितों की रक्षा करता है। याचिका की प्रतियां समाचारपत्रों की कतरनों के साथ विभिन्न अधिकारियों को भेजी गईं। आम्बेडकर लोहिया विचार मंच के प्रतिनिधियों के साथ विचार–विमर्श के बाद यह तय किया गया कि तथ्यों का पता लगाने के लिए एक दल 26 अक्तूबर 2006 को केरेडगडा जाएगा। यह भी तय किया गया कि दलित सम्मेलन आयोजित किया जाएगा, जिसके बाद मंदिर में प्रवेश के लिए सत्याग्रह होगा। राज्य सरकार ने इस मामले पर पिछले एक साल से कोई कदम नहीं उठाया था, मगर अब वह सक्रिय हो गयी। 5 नवम्बर 2006 को जिला प्रशासन ने दोनों जातियों के प्रतिनिधियों से चर्चा की। प्रशासन ने दलितों से मंदिर में प्रवेश का दिन स्थगित करने का अनुरोध किया। कई दौर की चर्चा हुई। दलित नेता मंदिर प्रवेश की तिथि 26 नवम्बर 2006 तक स्थगित करने को राजी हो गए। इससे दो दिन पहले राज्य के हरिजन एवं जनजातीय विकास विभाग के सचिव श्री तारादत्ता ने केरेडगडा का दौरा किया और उच्च जाति के लोगों से किसी प्रकार की गैरकानूनी कार्रवाई न करने की अपील की। उसी दिन उड़ीसा उच्च

न्यायालय ने एक जनहित याचिका पर अंतरिम आदेश दिया कि अदालत के अंतिम आदेश तक मंदिर में सभी के लिए प्रवेश प्रतिबंधित रहेगा, केवल मंदिर के पुजारी और कर्मचारी ही मंदिर में जा सकेंगे। इस आदेश का दलितों ने सम्मान किया और उन्होंने मंदिर प्रवेश की तिथि मामले के निपटारे तक स्थगित कर दी। 5 दिसम्बर 2006 को उच्च न्यायालय ने आदेश दिया कि दलितों को मंदिर में प्रवेश का अधिकार है और कोई उनसे यह हक नहीं छीन सकता। अंतरिम आदेश और अंतिम आदेश के बीच की अवधि में पुरी के जगन्नाथ मंदिर के मुख्य प्रशासक और आरडीसी (भव्य) सुरेश महापात्र ने दोनों समुदायों की बैठक बुला कर समस्या सुलझाने का प्रयास किया। इस बैठक के बाद केन्द्रपाड़ा के डीआरडीए हाल में 2 दिसम्बर को सम्मेलन आयोजित किया गया। उच्च न्यायालय के फैसले को देखते हुए दलित समुदाय ने तय किया कि मंदिर में प्रवेश सादगी से किया जाएगा और इसके लिए न कोई तामझाम होगा और न ही कोई समारोह। 12 दिसम्बर को केन्द्रपाड़ा के एसपी को बताया गया कि दो दिन बाद मंदिर में प्रवेश किया जाएगा। निर्धारित तिथि को दोपहर 12 बजे 70 वर्षीय बैद्यनाथ जेना के नेतृत्व में पांच दलितों ने मंदिर में प्रवेश किया। इसके बाद अन्य पुरुष और महिलाएं भी मंदिर में आए। दलितों के प्रवेश के बाद पुजारियों ने मंदिर के गर्भगृह के द्वार बंद कर दिए ओर प्रार्थना बंद कर दी। 15 दिसम्बर को गैरदलित जातियों ने बैठक बुलाई और रैली आयोजित की। उस समय सभी दुकानें, बाजार और स्कूल बंद थे। अगले दिन संक्रांति थी और उस दिन महिलाओं और बच्चों समेत उच्च जाति के लगभग 5000 लोगों ने मंदिर के बाहर विरोध प्रदर्शन किया। तनाब बढ़ रहा था और लोग अशांत हो रहे थे और ऐसा लगता था कि कभी भी दलितों पर हमला हो सकता है। इस मामले की जानकारी मुख्यमंत्री, मुख्य सचिव और गृह सचिव को इस उम्मीद से दी गई कि वे हस्तक्षेप करेंगे। कलक्टर और एसपी ने लोगों को संबोधित किया और करीब रात 9 बजे मंदिर के मुख्य ट्रस्टी रहिन्द्र नारायण भंजदेव ने आकर लोगों से कानून अपने हाथ न लेने की अपील की। उन्होंने स्पष्ट किया कि दलितों को भी अन्य लोगों की तरह मंदिर में दाखिल होने का हक है और पूजा फिर शुरू हो जाएगी। इसके बाद स्थिति शांत हुई। अगले दिन 17 दिसम्बर को आरडीसी महापात्र और डीआइजी एसके उपाध्याय ने केरेडगडा का दौरा किया और दोनों पक्षों के साथ बैठक की और नए फार्मूले पर सहमति हुई। इसके अनुसार नौ छेद वाली कुख्यात दीवार को तोड़ कर नया द्वार बनाया गया और दलितों ने 28 जनवरी 2007 को नए द्वार से प्रवेश किया। उन्हें किसी ने नहीं रोका। आंदोलन के पूरे समय में दलितों को एएलवीएम, उड़ीसा का समर्थन एवं सहयोग मिला।

इस घटनाक्रम से पता चलता है कि निम्नलिखित कानूनों का उल्लंघन हुआ है–

- भारतीय संविधान का अनुच्छेद–17
- पीसीआरआइ एक्ट 1955 की धारा–3
- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम, 1989 की धारा–(1) (x)

बिहार के जमुई जिले के हइडेरा गांव का बाबूलाल दास और परिवार

खाने के समय उच्च जाति के साथ बैठने पर दलित पर थूका गया और पिटाई की गई

सत्तर वर्षीय बाबूलाल दास जूते बनाने का काम करता है। वह चमार जाति का है। वह गांव में खेतों में मजदूरी भी करता है। उसे अपने परिवार के 12 सदस्यों का लालन–पालन करना होता है। आमतौर पर गांववासी और विशेष तौर पर उच्च जाति के लोग उसके काम का नियमित भुगतान नहीं करते। एकबार जब उसे किसी उच्च जाति के व्यक्ति की मृत्यु से जुड़े संस्कार में बुलाया गया तो वह उस स्थान पर बैठा था जहां भोजन वितरित किया जा रहा था। जब वह खाना खा रहा था उस समय उच्च जाति के सदस्यों के साथ बैठने पर किसी ने आपत्ति नहीं की। खाना समाप्त होने पर गांव प्रधान वीरेन्द्र सिंह और कुछ अन्य लोग उसे गांव से कुछ दूर ले गए। उसे बेतहाशा गालियां दी गयीं। उसके ऊपर लगाातर इतना थूका गया कि वह पूरी तरह भीग गया। बाद में उन लोगों ने जमीन में गड्ढा बनाना शुरू कर दिया, जहां मारने के बाद उसे दफनाया जा सके। बाबूलाल दास ने बार–बार माफी मांगी और उसे इस शर्त पर छोड़ा गया कि वह दो हजार रुपये जुर्माना देगा। जैसे ही उसे छोड़ा गया वह जान बचा कर भागा और गांव से निकल कर सीधा जमुई गया जहां उसने एसपी से सहायता मांगी। उसने आशंका बताई कि वह जुर्माना नहीं दे पाएगा और उसे मार दिया जाएगा। अभियुक्त अपने कुछ साथियों के साथ अगले दिन बाबूलाल दास के घर आये और उसकी तलाश करने लगे हालांकि वह बाहर था। उन्होंने परिवार को धमकी दी और कहा कि अगर रकम नहीं दी जाएगी तो बहुत बुरा होगा। जब परिवार वालों ने पूछा कि वे किस रकम की मांग कर रहे हैं तो उनकी बुरी तरह पिटाई की गई। अगले दिन पीड़ित के साथ एक जांच समिति भी आई जिसने उस परिवार के मुखिया से पूछताछ की जिसके यहां मृत्यु संस्कार का कार्यक्रम हुआ था। उसने इस बात से इंकार किया कि उसे बाबूलाल दास से हुए दुर्व्यवहार की जानकारी है या वीरेन्द्र सिंह ने कुछ ऐसा किया है। उस मुखिया ने तुरंत बाबूलाल की मौजूदगी में स्थानीय पुलिस से कहा कि उसे छोड़ा नहीं जाएगा, क्योंकि उसने गांव प्रधान के खिलाफ मामला दायर करने की हिम्मत की है। उस दिन के बाद उच्च जाति के लोगों ने उसका पुलिस तक पहुंचना मुश्किल कर दिया। उसके परिवार के एक बच्चे को स्कूल में लगातार परेशान किया गया। इतना ही नहीं बाबूलाल को अपना घर भी बदलना पड़ा। इस मुद्दे पर सक्रिय एक स्थानीय एनजीओ ने एसपी के दफ्तर, स्थानीय पुलिस और मंत्री के पास मदद के लिए कई चक्कर लगाए मगर वह कई कोशिशों के बावजूद शिकायत दर्ज नहीं करा सका। सभी ने यह मानने से इंकार कर दिया कि ऐसी घटना हो सकती है। दलित मुक्ति मिशन ने इस मामले पर पूरी नज़र रखी। घटना होने के समय इसकी रिपोर्ट नहीं की जा सकी मगर अब राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग में इसकी रिपोर्ट कर दी गई है।

पीड़ित के विवरण के अनुसार इस घटना से निम्नलिखित प्रावधानों का स्पष्ट उल्लंघन होता है–
अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3 (iv) और (x)

मध्य प्रदेश में छतरपुर जिले के सदूपुरा गांव के भगीरथ अहीरवार, प्यारेलाल और गज्जू पटेल

जादू–टोना करने के आरोप में दलितों की पिटाई, मुंह पर कालिख पोतना और गधे पर सवारी

उच्च जाति के लोगों को संदेह था कि उनके गांव के दलित जो भले ही संख्या में कम हैं, उन पर जादू–टोना कर रहे हैं। गांव के उच्च जाति के एक सदस्य की अचानक मृत्यु से यह संदेह और पुख्ता हो गया। इस ग्रामवासी के रिश्तेदारों ने इस घटना की पुलिस थाने में शिकायत की। पुलिस को इस बात पर यकीन हो गया कि भगीरथ अहीरवार, प्यारेलाल और गज्जू पटेल के जादू–टोने से यह मौत हुई है। इसलिए उस पर हत्या का आरोप लगाया गया। 22 नवम्बर 2006 को गांव की प्रभावशाली जाति के युवकों ने इन लोगों को पकड़ कर बेदर्दी से पीटा। बाद में उन्होंने उनके मुंह काले किए, गले में चप्पलों की माला डाली और गधे पर बिठा कर पूरे गांव में ढोल बजाते और गाते हुए उनका जुलूस निकाला। पीड़ितों ने सब–इंस्पेक्टर और एसपी से संपर्क किया और एससी/एसटी एक्ट के अंतर्गत एफआइआर दर्ज कराई। पीड़ितों को छह–छह हजार मुआवजा मिला, लेकिन राज्य की एजेंसियों ने इस मामले में अभियुक्तों के खिलाफ आगे कोई कार्रवाई नहीं की है।

घटना अपने आप में निम्नलिखित का उल्लंघन दर्शाती है–
अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3 (1) (iii)

बिहार के सुपौल जिले में इठामाणिकपुर की इन्दु देवी

जातिगत प्रथाएं तोड़ने पर दलितों को मिलीं मौत की धमकी

इठामाणिकपुर गांव सुपौल जिला मुख्यालय से 80 किलोमीटर दूर स्थित है। अमरीक राम की 20 वर्षीय पुत्री इन्दु देवी इस गांव की निवासी और चमार जाति की है। इन्दुदेवी को इसी गांव के लक्ष्मण यादव के पुत्र रंजन यादव से प्यार हो गया। हिन्दू रीतिरिवाज से दोनों ने 15 दिसम्बर 2006 को विवाह कर लिया। इसके बाद यह दम्पति वर के पिता के परिवार में रहने लगा। वर के परिवारवालों को उनके पुत्र के एक दलित कन्या के साथ विवाह पर कोई आपत्ति नहीं थी। लेकिन कुछ गांववासियों जैसे कामता यादव के पुत्र मोहन यादव और सुरेश यादव, रामजी यादव के पुत्र सूरज यादव और रामजीत यादव के पुत्र मनोज यादव ने इस शादी पर एतराज किया। 20 दिसम्बर 2006 को इन लोगों ने इन्दुदेवी को उसकी बस्ती में घेर लिया और उसे जाति सूचक गालियां दीं

और कहा कि उसे एक उच्च जाति के व्यक्ति के साथ शादी नहीं करनी चाहिए थी, क्योंकि वह दलित है। उन्होंने उससे कहा कि वह अपने पति से अलग होकर गांव छोड़ दे, वरना वह उसे और उसके परिवार वालों को मार देंगे। इन्दुदेवी और उसका पति धमकी देने वालों के खिलाफ शिकायत दर्ज कराने सुपौल पुलिस थाने गए। 28 दिसम्बर 2006 को यह दम्पत्ति जिला कलक्टर के पास गया और अपनी जान की रक्षा के लिए आवेदनपत्र दिया। लेकिन जिला कलक्टर ने उन लोगों के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की जिन्होंने धमकी दी थी। न तो कोई एफआइआर दर्ज की गई और न ही प्रशासन ने प्रभावित दम्पत्ति को कोई सुरक्षा दी है।

दम्पत्ति के साथ की गई ज्यादती आइसीसीपीआर (इंटरनैशनल कोवेनेंट फॉर सिविल एंड पॉलिटिकल राइट्स) के अनुच्छेद–17 और 23 के अंतर्गत प्रतिबंधित है।

उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले के मोहम्मदाबाद की सुमन रावत

समाजिक मेलजोल के मामले में अस्पृश्यता प्रथा

उषा उत्तर प्रदेश में कार्यरत एक संगठन की कार्यकर्ता है। वह उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले में मोहम्मदाबाद की है। उसने जिले में अस्पृश्यता के शिकार कुछ लोगों की ओर से बयान दिया। पहला मामला सिर पर मैला ढोने वाली इस गांव की एक महिला सुमन रावत का है। अगस्त माह में गांव में एक धार्मिक रीतिरिवाज आयोजित होने वाला था। कुछ महिलाओं ने इसके लिए गांव से प्रति व्यक्ति दस रुपये चंदा इकट्ठा करने का फैसला किया। त्यौहार के लिए चंदा देना एक मान्य परम्परा है, जिसे राम लखूरी कहते हैं। सुमन रावत जब काम के बाद घर लौट रही थी उसे चंदा देने के लिए कहा गया। सुमन इसके लिए राजी हो गई और अपने घर जाकर रकम ले आई। सुमन ने जब रुपये देने के लिए हाथ बढ़ाया तो लेने वाली महिला पीछे हट गई और कहा कि वह इसे किसी अन्य महिला को दे दे ताकि वे अपवित्र न हो। इस पर सुमन ने पूछा कि यदि वह अछूत है और अपवित्रता की स्रोत है तो उसकी दानराशि क्यों स्वीकार की जा रही है। दान लेने आई महिला ने जोर देकर कहा कि वह ब्राह्मण है और सुमन अभी काम से लौटी है तथा उसके हाथ साफ नहीं हैं। अगर वे इन हाथों से दानराशि लेंगे तो उन्हें नहाना होगा और स्वयं को शुद्ध करना होगा। सुमन ने जवाब दिया कि यदि आप रकम मेरे हाथ से लोगे तो मैं दूंगी वरना नहीं दूंगी। सुमन ने रकम देने से मना कर दिया और उन्हें लौट जाने को कहा। महिलाएं चली गईं मगर शाम को फिर आईं और उनके साथ कुछ गुंडे भी थे। उन महिलाओं ने सुमन की ओर संकेत करते हुए बताया कि इसने न केवल दान देने से इंकार किया अपितु जब किसी और के माध्यम से रकम देने को

कहा गया तो इसने बहस की। साथ आए युवकों ने सुमन को गंभीर नतीजे भुगतने को तैयार रहने को कहा और उसके साथ जोरदार बहस भी की। इस घटना के बाद सुमन ने दलितों के लिए काम कर रहे कार्यकर्ताओं से संपर्क किया और उन्हें घटना की जानकारी दी। ऐसा करते हुए सुमन को रोका गया। उसके रास्ते में बाधा उत्पन्न की गई और उसके बच्चे भी स्कूल नहीं जा सके। कार्यकर्ताओं ने जा कर चंदा मांगने वाली महिलाओं से बात की, लेकिन सुमन के लिए आज तक किसी न किसी तरह की परेशानी खड़ी की जाती है। पंचायत में एक बैठक आयोजित की गई जिसमें गांव प्रधान ने गुंडों का साथ दिया। उन्होंने कहा कि वह अछूत है इसलिए उसे सीमाओं का उल्लंघन नहीं करना चाहिए और उच्च जाति की महिलाओं की बात माननी चाहिए।

बलिया जिले के गांव बसनवार के एक व्यक्ति से संबंधित एक और घटना है। यह व्यक्ति चमार जाति का है और इस समय गांव का प्रधान है। गांव में भुखमरी से एक व्यक्ति की मृत्यु हुई। जब इस घटना की जांच की गई और पता लगाया गया कि ऐसा क्यों हुआ जबकि राशन भी दिया जा रहा था। गांव प्रधान ने बताया कि उस परिवार में मृत्यु से दो दिन पहले उसने उन्हें गेहू देने के लिए संपर्क किया था, लेकिन उस परिवार के मुखिया ने उत्तर दिया कि वह किसी अछूत के हाथ से खाने का सामान लेने के बजाय मरना पसंद करेगा। उस व्यक्ति की मृत्यु पर समूचे गांव ने गांव प्रधान के आदेश पर रकम इकट्ठा की और उसका अंतिम संस्कार किया। उस पर लगभग ढाई हजार रुपये खर्च हुआ। यह घटना जुलाई 2006 की है। स्थानीय प्रशासन ने खुद को बचाने के लिए दावा किया कि यह मौत बीमारी के कारण हुई है। यह मामला एक एनजीओ– एनसीडीएचआर द्वारा राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग दिल्ली को भी भेजा गया।

किसी भी स्वरूप में अस्पृश्यता की प्रथा और इससे होने वाली कोई क्षति भारतीय संविधान के अनुच्छेद–17 के अंतर्गत दंडनीय अपराध है।

(vii) पंचायतों में राजनीतिक अधिकारों से वंचित

पंचायत (जिसका शाब्दिक अर्थ है– पांच लोगों की सभा) स्थानीय स्तर पर प्रशासन की एक प्रणाली है, जिसमें प्रत्येक गांव की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी और गांव से संबंधित मुद्दों पर फैसले लेने की स्वतंत्रता होती है। 1992 में संविधान के 73वें संशोधन के बाद सरकारी प्रशासन के विकेन्द्रीकरण से स्थानीय सरकार और गांववासियों के बीच संपर्क का नया मार्ग प्रशस्त हुआ है। पंचायत प्रणाली को अमल में लाने का एक कारण स्थानीय स्तर पर निर्णय की प्रक्रिया में अनुसूचित जातियों के दर्जे में सुधार लाना था। इसके मिलेजुले नतीजे मिले हैं। कुछ मामलों में दलित समुदाय को पंचायत में प्रतिनिधित्व हासिल करने में सफलता मिली है। दूसरी ओर, इस प्रणाली के अंतर्गत दलितों के साथ भेदभाव काफी व्यापक रहा है और उच्च जाति के लोगों द्वारा पंचायत के लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित दलित सदस्यों की हत्या के मामले भी सामने आये हैं।

पंचायत प्रणाली के तहत राजनीतिक भागीदारी में दलितों को सक्रिय रूप में शामिल होने से रोकने के लिए किए जाने वाले भेदभाव के कई तरह के स्वरूप हैं जिनका एकमात्र उद्देश्य दलितों को गांव स्तर की निर्णय प्रक्रिया से बाहर रखकर उन्हें कमजोर बनाना है। उच्च जाति के कई लोगों का मानना है कि उन्हें प्रभावित करने वाले निर्णय लेने की प्रक्रिया में दलितों को शामिल नहीं होना चाहिए, बल्कि उच्च जाति की इच्छा का सम्मान करना चाहिए, जैसा कि सदियों से होता आ रहा है। उच्च जाति के ये सदस्य अक्सर मानते हैं कि पंचायतें दलित लोगों को अपने संवैधानिक अधिकारों पर जोर देने का माध्यम हैं, जिसे उच्च जाति के सदस्य अपने हितों के विपरीत मानते हैं। उनका कहना है कि वे समाज के श्रेष्ठ सदस्य हैं। वे सोचते है कि उनकी जाति को देखते हुए गांव के मामलों में उनका निर्णय मान्य होना चाहिए। इस प्रवृत्ति से व्यापक भेदभाव और हिंसा की स्थिति सामने आई है। इसका सबसे अधिक चर्चित मामला तमिलनाडु के मेलवालावु का है जहां पंचायत के नव निर्वाचित अध्यक्ष समेत अनुसूचित जाति के छह सदस्यों की निर्मम हत्या कर दी गई थी। इसका कारण महज यही था कि राजनीति पर उच्च जाति के सदस्यों का जो प्रभुत्व था वह समाप्त होता जा रहा था।

बिहार राज्य में जातिवादी हिंसा के मामले पंचायत चुनाव में सबसे अधिक रहे। इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज के अनुसार 2001 में पंचायत चुनाव के मतदान के दौरान 96 लोग मारे गए।[47] इंडो–एशियन न्यूज सर्विस के अनुसार अगस्त 2006 में स्थानीय निकायों के चुनाव में उच्च जाति के सदस्य के पक्ष में वोट देने से इंकार करने के बाद सात दलित महिलाओं का बंदूक की नोक पर बलात्कार किया गया।[48]

दलित समुदाय के लोगों को पंचायतों में कोई हैसियत पाने से वंचित रखा जाता है। उन्हें कई प्रकार से परेशान किया जाता है, ताकि वे चुनाव में भाग न ले सकें। इन तरीकों यानी हथकंडों में आर्थिक से सामाजिक बहिष्कार और भावी उम्मीदवारों की हत्या शामिल हैं। मतदान केन्द्रों पर हथियारबंद लोग दलितों को वोट देने से रोकते हैं या उन्हें बंदूक की नोक पर उच्च जाति के उम्मीदवारों को वोट देने को मजबूर करते हैं। इसे आमतौर पर बूथ कैप्चरिंग या मतदान केन्द्रों पर कब्जा करना कहा जाता है। कई मामलों में स्थानीय पुलिस, जिसमें ज्यादातर उच्च जाति के लोग होते हैं, और गड़बड़ी करने वालों के बीच मिलीभगत होती है, इसलिए कई मामलों का पता भी नहीं चल पाता है। ग्रामीण भारत में अस्पृश्यता सर्वेक्षण के अनुसार पंचायतों के लगभग 30 प्रतिशत कार्यालयों में दलितों के लिए बैठने के अलग इंतजाम किए गए थे। इसी रिपोर्ट के अनुसार 14.4 प्रतिशत गांवों में पंचायत भवनों में दलितों के प्रवेश पर पूरी तरह रोक थी। लोकतांत्रिक तरीके

47 इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, पंचायती राज अपडेट, वॉल्यूम III अप्रैल 2001

48 ह्यूमन राइट्स वॉच, हिडन अपार्थाइड : कास्ट डिस्क्रिमिनेशन अगेन्स्ट इंडियाज अनटचेबल्स। यूआरएल संदर्भ 14.08.07 http://www.hrw.org/reports/2007/india0207/9.htm

से निर्वाचित अनुसूचित जाति के सदस्यों को या तो पंचायत भवन के बाहर या फिर फर्श पर बैठने को मजबूर किया जाता है, जबकि उच्च जाति के सदस्य आराम से और शान से बैठते हैं। निर्वाचित दलित सदस्यों को अक्सर हाजिरी रजिस्टर में अपनी उपस्थिति के लिए दस्तखत करने को मजबूर किया जाता है, ताकि पंचायत के फैसलों की वैधता बनी रहे। ऐसा बैठक में उनकी किसी अनुपस्थिति के बावजूद कराया जाता है।

अनुसूचित जाति की निर्वाचित महिला सदस्यों को पंचायतों में निकृष्ट तरह के भेदभाव का सामना करना पड़ता है। पंचायतों में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था है और यह निर्वाचित सदस्यों का 37.46 प्रतिशत है, जो कि निर्धारित वास्तविक 30 प्रतिशत से कहीं ज्यादा है। महिलाओं के लिए कोटा होने से आम तौर पर यह समझा जाता है कि महिलाएं अपने गुणों या योग्यता के कारण नहीं अपितु निर्धारित कोटे के कारण चुनी जाती हैं। देश में राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं के सशक्त नेतृत्व के दावे के बावजूद ऐसी स्थिति है। ग्रामीण भारत में कई प्रकार की रूढ़िवादी प्रवृत्तियां महिलाओं को स्थानीय प्रशासन में भाग लेने से रोकती हैं। इससे खास तौर पर दलित महिलाओं पर विपरीत असर पड़ता है जो आमतौर पर कम पढ़ी–लिखी होती हैं और अपने संवैधानिक अधिकारों को प्राप्त करने के लिए अदालतों तक नहीं पहुंच सकतीं। इस विषय पर ज्यादा आंकड़े उपलब्ध नहीं है लेकिन पंचायतों में दलित महिलाओं के साथ भेदभाव देश भर में आम बात है। वर्तमान में सरकार महिला शक्ति अभियान चला रही है, जिसका मकसद महिला प्रतिनिधियों को सशक्त करना है। इस अभियान के अंतर्गत अनुसूचित जाति की महिलाओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

आंध्र प्रदेश के पूर्वी गोदावरी जिले के कोवुरू गांव की अलमपल्ली कलावती

निर्वाचित प्रतिनिधि को कर्त्तव्य पालन से रोका गया

श्रीनिवास राव की 37 वर्ष की पत्नी अलमपल्ली कलावती माला नामक अनुसूचित जाति की है और पूर्वी गोदावरी जिले में कोवुरू गांव की है। अगस्त 2006 में हुए चुनाव में वह कोवुरू गांव की सरपंच चुनी गई। इस गांव में कापू जाति का दबदबा है। कलावती के सरपंच चुने जाने पर पूर्व सरपंच पिल्ली सूर्यकांतम ने उसके निर्वाचन को चुनौती दी और काकीनाडा में दीवानी अदालत में उसके खिलाफ मामला दायर किया। लेकिन फैसला कलावती के हक में आया। इसके बाद से गांव में प्रभावशाली जाति ने उसे लगातार परेशान करना शुरू कर दिया। पूर्व सरपंच ने उसे दस्तावेज भी नहीं सौंपे। इतना ही नहीं पंचायत सचिव ने उसे दफ्तर में घुसने भी नहीं दिया। 8 दिसम्बर 2006 को राज्य के मंत्री

जेसी दिवाकर रेड्डी गांव के पंचायत कार्यालय के दफ्तर के शिलान्यास समारोह में शामिल होने आए। जेसी दिवाकर रेड्डी के चले जाने के बाद कलावती ने वार्ड के अन्य सदस्यों के साथ मिलकर दोपहर बाद चार बजे शिलान्यास किया। शिलान्यास समारोह के दौरान शाम पांच बजे पाडुरंगराव (कापू) के 38 साल के पुत्र अरवा सतिबाबू, रामास्वामी (कापू) के 45 साल के पुत्र उरवा श्रीनिवासराव, रामास्वामी (कापू) के 50 साल के पुत्र दामोदर सूर्य प्रकाश, रामास्वामी (कापू) के 30 साल के पुत्र उरवा अंजानेयुलू और चिना दाराया (कापू) के 40 साल के पुत्र पेंदेम कृष्णा ने उन पर हमला किया। उन्होंने कलावती को जातिवादी गालियां दीं और कहा– "माला लंजावु, नव्वे शंकुस्थापना चेसुकोवादम ऐंटे"। शेष रत्नम और कलावती की पिटाई की गई। अलमपल्ली कलावती ने रात 9.30 बजे इन्द्रापलेम थाने में शिकायत लिखवाई, परंतु मामला पंजीकृत नहीं किया गया। इसके बाद उसने आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय में रिट याचिका दायर कर मामला दर्ज किए जाने, अभियुक्तों को गिरफ्तार किए जाने और अपने लिए पुलिस सुरक्षा की मांग की, ताकि वह अपने कर्तव्यों का पालन कर सके। इसके बाद सब–इंस्पेक्टर ने अपना बयान बदल लिया और कहा कि एफआइआर दर्ज है और मामले की डीएसपी के अधीन छानबीन की जा रही है। कलावती के पति श्रीनिवास राव पूर्व एमपीटीसी था। अपने कार्यकाल के दौरान उसका कापू समुदाय के साथ दलितों को भूमि वितरण को लेकर विवाद था। कापू समुदाय के जमींदार पेंदेम वीरा वेंकट सत्यनारायण ने इस विवाद में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। एक मामला दर्ज किया गया था और सत्यनारायण को 30 दिन के रिमांड पर भेजा गया था। उन्हें अब भी इसकी रंजिश है। कलावती को धमकियों और दफ्तर में बहिष्कार के जरिए अब भी परेशान किया जा रहा है। सम्पारा के विधायक अनिशेट्टी बुलेबई रेड्डी कापू समुदाय की मदद कर रहे हैं। पीड़ित की पंचायत में कुछ नहीं चलती; उसे केवल रजिस्टर पर दस्तख्त करने को मजबूर किया जाता है, ताकि साबित किया जा सके कि उसने बैठक में भाग लिया था। दलित स्त्री शक्ति और दलित वीमेन एक्सेस टु जस्टिस संगठनों ने पीड़ित के पक्ष का समर्थन किया है और उसके संघर्ष में मदद की है।

इस घटना से निम्न कानूनी प्रावधानों के घोर उल्लंघन का पता चलता है–

- भारतीय संविधान का अनुच्छेद–17
- यूडीएचआर (यूनिवर्सल डेक्लरेशन ऑफ ह्यूमन राइट्स) का अनुच्छेद–3
- सीईआरडी (कन्वेशन आन एलिमिनेशन आफ रेशियल डिस्क्रिमनेशन) का अनुच्छेद–5(बी) और (ई)(i)
- इंटरनैशनल कोवेनेंट ऑन सोशल इकोनामिक एंड कल्चरल राइट्स का अनुच्छेद–6 (1)
- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम 1989 की धारा–(4)
- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3 (1) (xi)
- भारतीय दंड संहिता की धारा–323 और 352

तमिलनाडु के तूतुकुडी जिले में नकलामुत्तनपटि का जयकय्यन

अपने लोकतांत्रिक अधिकारों पर जोर देने के कारण दलित की हत्या

अरुनतातियार समुदाय के 45 वर्ष के जयकय्यन की जातिवादी हमले में हत्या कर दी गई। वह अपने पीछे अपनी पत्नी अरुमुगम पाप्पा (38 वर्ष), 17 वर्ष की पुत्री जमुना और 13 वर्ष के पुत्र कनगराज को छोड़ गया। वह कुली का काम किया करता था और सरकार की अरुनतातियार हाउसिंग बोर्ड कालोनी में रहता था। वह पंचायत चुनाव में जीत गया था। पंचायत की पूर्व प्रधान रेगिना मैरी और उसका पति अपनी पत्नी के कार्यकाल में रिश्वत लेते थे और भ्रष्टाचार में लिप्त थे। जयकय्यन ने अपना पद संभालने के बाद रेगिना मैरी से पंचायत का सभी हिसाब–किताब देने को कहा। उसे हिसाब–किताब में हुई गड़बड़ छिपाने के लिए दस हजार रुपये की रिश्वत की पेशकश की गई। सही खातों के अनुसार बिलों का भुगतान नहीं किया गया था। पंचायत के एक वार्ड के सदस्य मरिसामी ने यह पता लगाया। उसने इसके बारे में सभी सदस्यों को बता दिया लेकिन उपाध्यक्ष तिरुपति को नहीं बताया। पंचायत प्रधान और पांच सदस्य मरिसामी को उपाध्यक्ष चुनने का प्रस्ताव पारित करना चाहते थे। इस बीच तिरुपति ने जयकय्यन को धमकी दी और कहा कि या तो वह इस्तीफा दे दे या फिर उसके इशारों पर चलने को तैयार रहे। तिरुपति उच्च जाति का था और दलित प्रधान के अधीन काम नहीं करना चाहता था। 22 नवम्बर 2006 की सुबह नकलामुत्तनपटि में पंचायत कार्यालय के सामने जयकय्यन, उसकी पत्नी पाप्पा, जयकय्यन के भाई सीनिवासन और पेरुमल का पुत्र मूर्ति बातें कर रहे थे। तिरुपति और उसकी पत्नी रेगिना मैरी वहां हथियार लेकर आए और जयकय्यन को रोका। तिरुपति ने जोर से कहा कि तुम मेरा कहना नहीं मान रहे हो और जयकय्यन के सिर पर वार कर दिया। तिरुपति ने उसे फिर मारा और जयकय्यन ने उस वार को बाएं हाथ से रोका जिससे उसके हाथ से खून बहने लगा। अगला वार जयकय्यन के सिर के बाएं भाग पर किया गया और वह मर गया। वहां मौजूद लोग जो जयकय्यन से बात कर रहे थे, इस कत्ल के गवाह थे। पाप्पा और उसके रिश्तेदार पेरुमल के पुत्र परमसिवन तिरुनवनकदम थाने गए और उन्होंने तिरुपति और उसकी पत्नी रेगिना मैरी के खिलाफ रिपोर्ट लिखवाई। पुलिस इंसपेक्टर ने शिकायत लेकर एफआइआर तैयार की। एससी/एसटी (पीओए) एक्ट और आईपीसी के अंतर्गत मामला दर्ज किया गया। कलाम और अरुनतातियार महासबाई ने कालुगुमलई के निकट के वेलायुतापुरम में निम्नलिखित गवाहों को शरण दी–

1. पाप्पा
2. मूर्ति
3. सीनिवासन
4. कनगराज

28 दिसम्बर 2006 को शिवागिरि में न्यायिक मजिस्ट्रेट की मौजूदगी में अदालत में जयकय्यन हत्याकांड के इन गवाहों ने गवाही दी। 8 दिसम्बर 2006 को सरकारी वकील ने तेजी से मुकदमा चलाने के लिए विशेष जिला सत्र न्यायालय में याचिका दी। उपरोक्त संगठन, जिन्होंने पीड़ितों को शरण दी थी, अब भी बदकिस्मत दलित परिवार को मदद दे रहे हैं।

तमिलनाडु के कडलूर जिले के पतियाराकोट्टई गांव के पुरुषोत्तमन और अन्य

पंचायत चुनाव में दलित उम्मीदवार पर हिंसा

तमिलनाडु में कडलूर जिले की पनरुति पंचायत यूनियन में यूनियन काउंसलर के पद के लिए 2006 में हुए स्थानीय स्वशासन चुनाव में दलित वर्ग के पिचईकरण के 22 वर्षीय पुत्र पुरुषोत्तमन ने पतियाराकोटई गांव में चुनाव लड़ा। इस गांव के दलितों ने उसका समर्थन किया। वनियार जाति के उम्मीदवार कुमार इस बात से दुखी था कि एक दलित ने उसके खिलाफ चुनाव लड़ने का साहस दिखाया है। सबसे पहले उसने पुरुषोत्तमन को नाम वापस लेने की धमकी दी, लेकिन उसने ऐसा करने से मना कर दिया। इसके बाद कुमार अपने समर्थकों के साथ 13 अक्तूबर 2006 को जबरन आम्बेडकर नगर में घुस गया और उसने दलितों पर बुरी तरह हमला किया। उस दिन चुनाव हो रहे थे। हमलावरों ने घातक हथियारों का इस्तेमाल किया। 125 मकानों को नुकसान पहुंचा और 60 से अधिक लोग घायल हुए। पुरुषोत्तमन ने उसी दिन स्थानीय थाने में शिकायत दर्ज कराई। उसके पक्ष को एक संगठन एसएएसवाई ने समर्थन दिया, जो पीड़ितों को न्याय दिलाने की कोशिश कर रहा है। अभी तक पीड़ितों को कोई मुआवजा नहीं दिया गया।

- यह घटना अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम, 1989 की धारा–3 (1) उपधारा (v), (vii) और (xv) का उल्लंघन है।
- भारतीय दंड संहिता की धारा–326 और 327 का भी उल्लंघन है।

उत्तर प्रदेश के बनारस जिले के कोइलासपुर गांव की मुनिया

दलित प्रधान को कर्त्तव्यों का पालन नहीं करने दिया गया

कोइलासपुर गांव में पिछले 20 वर्ष से भी अधिक समय से ठाकुर समुदाय के परिवार दलितों के साथ भेदभाव करते रहे हैं। मुनिया के प्रधान चुने जाने के बाद से ठाकुर समुदाय ने हिंसा और उत्पीड़न की शुरुआत की, ताकि वह अपना पद छोड़ दे। पूर्व प्रधान ने कोटेदार के साथ मिलकर मुनिया और 150 दलित परिवारों के खिलाफ साजिश की और गांव में इन

परिवारों के लिए राशन की दुकान से आपूर्ति बंद करा दी। राशन की वस्तुओं के वितरण का काम कोटेदार और सचिव देखते थे। उन्होंने साल भर इन परिवारों का राशन रोके रखा। इतना ही नहीं उन्होंने आवश्यक वस्तुओं के दाम भी बढ़ा दिए। मुनिया ने जब भी इस मुद्दे पर कोटेदार से बात करने की कोशिश की तो उसकी बेइज्जती की गई और उसे प्रताड़ित किया गया। इस सब की परवाह किए बगैर वह तहसीलदार और एसडीएम के दफ्तर गई। कोटेदार ने इन दोनों स्थानों पर उसके साथ बदसलूकी की और उसका ब्लाउज भी फाड़ दिया। मुनिया ने इसका जवाब देते हुए उसका कॉलर पकड़ लिया और उसे गाली दी। इसके बाद उसके पति तथा अन्य ने भी कोटेदार के साथ ऐसा ही व्यवहार किया। यह लड़ाई जारी रही और एफआइआर दर्ज कराई गई। कोटेदार को इसके बाद निलंबित कर दिया गया। सरकार ने गांव के विकास के लिए काफी राशि मंजूर की थी और इस राशि के बारे में फैसला लेने और इसे इस्तेमाल करने का अधिकार तब तक ठाकुर परिवारों के पास था। मुनिया जब चुनी गई तो दलित परिवारों के साथ दुर्व्यवहार शुरू हो गया। गांव में लगभ 150 दलित परिवार हैं जिनके पास खेती के लिए जमीन नहीं है। इनमें से अधिकतर मजदूर का काम करते हैं और राशन के जरिए सामान प्राप्त करते हैं। अब भी सरकारी तौर पर मुनिया प्रधान है, लेकिन कोटेदार और सचिव इन सभी मुद्दों पर उससे कोई परामर्श नहीं करते। ये दोनों पद उच्च जाति के ठाकुरों के पास हैं। मुनिया की शिकायत पर कोटेदार निलंबित किया गया लेकिन उसे शीघ्र बहाल कर दिया गया। मुनिया ने स्थिति की जानकारी डीएम को भी दी, लेकिन उसने इस पर आगे कोई कार्रवाई नहीं की।

इस घटना से निम्नलिखित कानूनी प्रावधानों का स्पष्ट उल्लंघन होता है–

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम 1989 की धारा–3 (1), (x), (xi) और धारा–4

(viii) सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों में भेदभाव

1979 में पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत 'विशेष संघटक योजना' के नाम से नई नीति की शुरुआत की गई (हाल में इसका नाम बदलकर 'अनुसूचित जाति उप–योजना के लिए विशेष केन्द्रीय सहायता' रखा गया)। इसका उद्देश्य अनुसूचित जाति के लोगों को सशक्त बनाना है। इस पहल से पता चला कि अनुसूचित जाति के लोगों के स्तर में सुधार लाने के लिए सरकार के विभिन्न विभागों के बीच बेहतर तालमेल की जरूरत है। इस नीति के अनुसार हरेक विभाग को ऐसे कार्यक्रम बनाने जरूरी हैं जिनका मकसद अनुसूचित जाति के लोगों को सशक्त बनाना हो। सरकार विभिन्न परियोजनाओं के लिए राशि निर्धारित कर अनुसूचित जाति के लोगों को सशक्त बनाने की संवैधानिक गारंटी को अमल में लाने के लिए जरूरी वित्तीय संसाधन का आवंटन सुनिश्चित कराना चाहती है। विशेष संघटक योजना अपनेआप में एक जोरदार नीति थी लेकिन व्यावहारिक तौर पर इसे अच्छी तरह अमल में नहीं लाया जा सका क्योंकि इस राशि का पूरी तरह उपयोग नहीं हुआ।

आम्बेडकर. ओआरजी वेबसाइट की भारत में आरक्षण रिपोर्ट के अनुसार "बजट आवंटन और व्यय अक्सर सरकार की नीति, हितों और प्राथमिकताओं के संकेत होते हैं।"[49] विशेष संघटक योजना के अमल से दलित जनसंख्या को गरीबी और निचले सामाजिक स्तर से बाहर लाने के सरकार के रवैये के बारे में काफी जानकारी मिलती है। केवल बजट में धनराशि निर्धारित कर दिए जाने से ही सदियों पुरानी सामाजिक मान्यताओं के असर को कम नहीं किया जा सकता है। ऐसा वातावरण तैयार करने के लिए काफी कुछ करना पड़ता है, जिससे समय के साथ–साथ इन परंपराओं को समाप्त किया जा सके। विशेष संघटक योजना के अंतर्गत हालांकि सरकार की बजट नीति में निरंतरता बनी रही है और इससे देश भर में विभिन्न परियोजनओं को अमल में लाया जा सका है। लेकिन जैसे कि कानून और न्याय मंत्रालय की रिपोर्ट में कहा गया है : "संविधान के उद्देश्यों को हासिल करने के लिए नियोजन एवं कार्यान्वयन के प्रति रुचि और गंभीरता की आम तौर पर कमी रही है। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के सदस्यों को खर्च की गई राशि के अनुपात के अनुसार फायदे नहीं मिल सके।"[50]

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय के कार्यक्रम की निगरानी एक संचालन समिति करती है। विशेष संघटक योजना के लिए राशि का निर्धारण कम से कम राज्य/केन्द्रशासित प्रदेश में अनुसूचित जाति की जनसंख्या के अनुपात के बराबर जरूरी होना चाहिए। यह इस योजना के मुख्य सिद्धांतों में से एक है, जिसके अनुसार भारत के स्तर पर कुल बजट का लगभग 16 प्रतिशत इसके लिए आवंटित किया जाना चाहिए। लगातार आर्थिक विकास के बावजूद बजट आवंटन कम बना रहा। जैसा कि निम्नलिखित चार्ट में दर्शाया गया है कि वर्ष 2006–07 में विशेष संघटक योजना का भाग सभी केन्द्रीय विभागों/मंत्रालयों के कुल योजना आवंटन का केवल 4.25 प्रतिशत था।

केन्द्र सरकार द्वारा 2006–07 में अनुसूचित जाति के लिए विशेष संघटक योजना के अमल की स्थिति

केन्द्र सरकार के सभी विभागों/मंत्रालयों का कुल योजना आवंटन 2006–07	अनुसूचित जातियों के लिए सभी विभागों/मंत्रालयों द्वारा निर्धारित योजना आवंटन 2006–07	कुल योजना आवंटन में केन्द्र सरकार द्वारा अनुसूचित जातियों के लिए निर्धारित आवंटन का अनुपात 2006–07
1,65,490 करोड़ रुपए	7,031.88 करोड़ रुपए	4.25 प्रतिशत

स्रोत : वादा न तोड़ो अभियान, फुल फिलिंग दी प्रोमिस टू एंड सोशल एक्सक्लूजन - ए रिव्यू आफ दी दलित एजेंडा इन द नेशनल कॉमन मिनिमम प्रोग्राम

49 आम्बेडकर. ओआरजी, भारत में आरक्षण। यूआरएल संदर्भ 18.8.08 http://ambedkar.org/News/reservationindia.pdf

50 कानून और न्याय मंत्रालय, यूआरएल संदर्भ 16.08.07 http://lawmin.nic.in/ncrwc/finalreport/v2b1-2ch9.htm

पिछले पृष्ठ पर दिया चार्ट देखने से स्पष्ट होता है कि आवंटित राशि पर्याप्त नहीं है। इसके अलावा आवंटित राशि की कारगर निगरानी जरूरी होती है। वर्तमान में इस योजना पर निगरानी बेहद खराब है। 1995 में कल्याण मंत्रालय के सचिव द्वारा लिखे एक पत्र में कहा गया कि निगरानी और मूल्यांकन की व्यवस्था या तो बिल्कुल नहीं है और जहां है वहां उसे कारगर नहीं कहा जा सकता। जब तक निगरानी प्रक्रिया केन्द्रीकृत रहेगी और जिला स्तर से दूर रहेगी, योजनाओं का मूल्यांकन भी पूरी तरह बेअसर रहेगा।

विशेष संघटक योजना के कारगर अमल के रास्ते में आने वाली प्रमुख समस्याओं में से एक यह है कि राज्य सरकारें विशेष संघटक योजना राशि के काफी हिस्से को अन्य क्षेत्रों में लगा देती हैं। उन्हें अनुसूचित जातियों का सामाजिक, आर्थिक विकास सुनिश्चित करने से अक्सर कुछ लेना–देना नहीं होता है। एक प्रतिशत यह भी है कि योजनाओं का अमल आसानी से टाल दिया जाता है और विभिन्न परियोजनाओं के लिए आवंटित राशि को खर्च नहीं किया जाता।

केन्द्र सरकार द्वारा 2006–07 में अनुसूचित जाति के लिए विशेष संघटक योजना के अमल की स्थिति

(जिन मंत्रालयों/विभागों के पास अनुसूचित जातियों के लिए वास्तविक योजना आवंटन है)

मंत्रालय/विभाग	विभाग/मंत्रालय का कुल योजना आवंटन (करोड़ रुपए में)	अनुसूचित जातियों के लिए निर्धारित योजना आवंटन (करोड़ रुपए में)	कुल योजना आवंटन और अनुसूचित जातियों के लिए निर्धारित आवंटन का अनुपात
विज्ञान और प्रौद्योगिकी	1340	2.5	0.17
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय	1750	1226.86	70.1
श्रम और रोजगार मंत्रालय	311.36	0.53	0.17
महिला एवं बाल विकास विभाग	4795.85	635	13.2
माध्यमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा विभाग (मानव संसाधन मंत्रालय)	3616	371.2	5.9
प्राथमिक शिक्षा और साक्षरता विभाग (मानव संसाधन मंत्रालय)	17128	2493.5	14.6
युवा मामले एवं खेल मंत्रालय	600	16.45	2.74

स्रोत : वादा न तोड़ो अभियान, फुलफिलिंग दि प्रॉमिस टु एंड सोशल एसक्लूजन : अ रिव्यू आफ दि दलित एजेंडा इन दि नैशनल कॉमन मिनिमम प्रोग्राम[51]

51 वादा न तोड़ो अभियान, फुलफिलिंग दि प्रॉमिस टु एंड सोशल एसक्लूजन : अ रिव्यू आफ दि दलित एजेंडा इन दि नैशनल कॉमन मिनिमम प्रोग्राम। यूआरएल संदर्भ 22.08.07 http://www.wadanatodo.net/images/160407/DalitsNCM%20Eng.pdf

विशेष संघटक योजना को अमल में लाने के बारे में 1980 के बाद से हो रही आलोचना के बावजूद इसके मूल ढांचे में बहुत कम दूरगामी परिवर्तन किए गए हैं। कारगर निगरानी और मूल्यांकन के अभाव से ऐसी स्थिति बनी है जिसके अंतर्गत बजट आवंटन का समुचित इस्तेमाल नहीं होता है जिससे राज्य और स्थानीय स्तर पर सरकार की असफलता और दलितों को सशक्त बनाने में उनकी नाकामी का पता चलता है।

उत्तर प्रदेश के वाराणसी जिले के परंजापुर की शांति देवी

दलित महिला को रसोइया के पद से हटाया गया

स्वर्गीय रामबचन की पत्नी 48 साल की शांति देवी दलित महिला है और चमार जाति की है। वह वाराणसी जिले में लोहाटा थाने के अंतर्गत परंजापुर बस्ती में अपने इकलौते बेटे के साथ रहती है। उसकी दो लड़कियां शादीशुदा हैं। वह परिवार की एकमात्र कमाऊ सदस्य है। काफी समय तक उसने गांव के स्कूल में नौकरी की कोशिश की और वह गांव के प्राथमिक विद्यालय में दोपहर का खाना बनाने वाले रसोइया का काम हासिल कर सकी। 15 अगस्त 2006 को उसे सरकारी तौर पर नियुक्त किया गया। इसके बाद वह स्कूल गई और बच्चों के लिए दोपहर का खाना बनाने लगी। उच्च जाति के सदस्यों को इसका पता चला और उन्होंने उसे हटाने की साजिश शुरू कर दी। उच्च जाति के गांववालों के लिए यह पचा पाना मुश्किल था कि एक निम्न जाति की रसोइया उनके बच्चों का भोजन बना रही है। अतः स्कूल के उच्च जाति के 23 बच्चों ने गांव के बड़े लोगों के बहकावे में आकर शांति देवी का बना भोजन खाने से इंकार कर दिया। स्कूल का हेडमास्टर और गांव प्रधान, जो उच्च जाति के सदस्य हैं, शांति देवी को रसोइए के पद से हटाने का षड्यंत्र रचने में शामिल थे। उसे स्कूल की बाल्टी का इस्तेमाल करने की अनुमति भी नहीं दी गई। बल्कि उसे गांव प्रधान अनिता श्रीवास्तव से संपर्क करने को कहा गया, ताकि उसे एक अलग से बाल्टी मिल सके। उसके काम के दूसरे ही दिन गांव प्रधान ने आकर उसे स्कूल से बाहर निकाल दिया और आरोप लगाया कि बच्चों ने उसका बनाया भोजन खाने से इंकार कर दिया है, क्योंकि उसे साफ तरीके से तैयार नहीं किया गया था। अपमानित किए जाने के बाद वह अपनी बस्ती में पहुंची और अपनी आपबीती अपनी जाति के लोगों को बताई जो अगले दिन उसके साथ स्कूल आये और उसे वहां छोड़ गए। इसके बाद गांव वाले गांव प्रधान से मिलने गए। जब वे लोग उसके घर पहुंचे तो गांव प्रधान घर पर नहीं थी, लेकिन उसका ससुर वहां मौजूद था, जो उन्हें घर के दरवाजे पर मिला और उसे पिछले दिन की घटना की जानकारी थी। उसने सीधे ही बिना सोचे–समझे गालियां देनी शुरू कर दीं और कहा कि शांति देवी को रसोइए के पद पर नहीं रहने दिया जाएगा। जब उसे बताया गया कि यह पद अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति महिला के लिए आरक्षित है और यह उसका संवैधानिक अधिकार है तो गांव प्रधान के ससुर ने हंसते हुए जवाब दिया कि

दलितों का कोई अधिकार नहीं होता है। उसने गांव वालों को चुनौती दी कि वे जो चाहें वह तरीका अपना लें लेकिन इस बारे में कोई बदलाव आने वाला नहीं है। गांव के दलित लोग बिना कुछ कहे अपने घर लौट आए। शांति देवी ने कुछ दिन काम किया और उसे फिर वही बहाना बनाकर निकाल दिया गया कि वह अच्छा खाना नहीं बनाती है और बच्चे उसे नहीं खा सकते हैं। इस बार हेडमास्टर ने राशन देने में गड़बड़ी की और उसे कम मात्रा में दाल दी और उसी से खाना बनाने को कहा। इस प्रकार बनाये गये भोजन को बच्चे नहीं खा सके, क्योंकि दाल न मिलने के कारण उन्होंने चावल छोड़ दिया। इस पर गांव प्रधान ने स्थानीय मीडिया और स्थानीय पुलिस को बुलाकर शांति देवी के खिलाफ झूठे आरोप लगा दिए। उसे कहा गया कि वह कभी दोबारा स्कूल नहीं आए। अगले दिन शांति देवी अपनी जाति के समर्थक कुछ लोगों के साथ स्कूल आई। गांव प्रधान के ससुर ने उन्हें तितर–बितर करने के लिए पुलिस बुला ली। पुलिस ने वहां आकर गांव वालों को समझाया–बुझाया और वापस भेज दिया। कुछ लोगों ने जब इसका विरोध किया और दलित महिला के अधिकार के लिए संघर्ष करने की धमकी दी तो एसपी ने वहां पहुंचकर गांव प्रधान को कम से कम एक महीने के लिए शांति देवी को काम करने देने के लिए राजी कर लिया, लेकिन एक महीने के बाद शांति देवी को उसी स्थिति का सामना करना पड़ा। उसे एक बार फिर रसोइए के पद से जबरन हटा दिया गया। इसके बाद शांति देवी ने अपने साथियों की मदद से प्रशासनिक दखल का अनुरोध किया। जिला प्रशासन, डीएम, कलक्टर, बीडीओ और अन्य उच्च अधिकारियों को याचिकाएं भेजी गईं। किसी भी विभाग ने इस पर गौर नहीं किया। गांव प्रमुख के नजदीक माने जाने वाले एक अधिकारी ने मामले को आगे न बढ़ाने के लिए शांति देवी से कहा। उसने प्राथमिक शिक्षा प्राधिकरण के सहायक और लोहाटा पुलिस थाने के एसएचओ दयाराम यादव से संपर्क किया। दोनों अधिकारियों ने स्कूल का दौरा किया। अब भी शांति देवी को उच्च जाति के गांववासियों ने रसोइए के पद पर स्वीकार नहीं किया है। मामले की छानबीन की जांच कर रहे संगठन एनसीडीएचआर की उत्तर प्रदेश शाखा अब भी इस मामले पर आगे कार्रवाई कर रही है।

इस घटना से निम्नलिखित कानूनी प्रावधानों का उल्लंघन होता है–

- धारा–3 (1) (ix) (x)
- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम, 1989 की धारा–4

छत्तीसगढ़ के रायपुर जिले के वर्धा गांव का दलित समुदाय

भूमि नीति से संबंधित भेदभाव के पीड़ित

कुती रात्रे अन्य दलित परिवारों के साथ पिछले 20 वर्ष से अपने गांव में एक खास उपजाऊ भूमि के प्लॉट पर बसी हुई है। गांव पंचायत ने खेती की जमीन भी आवंटित की थी। इन आवंटित भूखंडों पर कई उच्च जाति के लोगों ने कब्जा कर रखा है। दलितों के स्वामित्व वाली जमीन बहुत कम है।

ये लोग इस जमीन पर 20 वर्ष से रह रहे हैं। अब दलितों के खिलाफ गांव की जमीन पर कब्जा करने का मुद्दा उठाया गया है। स्थानीय पुलिस अधिकारी, गांव प्रधान यानी नायक और भू–राजस्व अधिकारी यानी तहसीलदार उस प्लॉट पर आए जहां फसलें खड़ी थीं। दलितों ने उनसे बार–बार अनुरोध किया है कि कोई कार्रवाई करने से पहले उन्हें फसलें काटने दी जाएं। लेकिन अधिकारियों ने अनुरोध ठुकरा दिया और दलितों के सामने ही उन्होंने फसल नष्ट करने की कोशिश की। 20 सितम्बर 2006 को दलित समुदाय के पुरुष मदद के लिए एसडीएम के पास गए। एसडीएम ने दोपहर को स्थगन आदेश जारी किया कि इनके खेतों पर कब्जा न किया जाए। ये आदेश स्थानीय पुलिस थाने और गांव परिषद के पास भेजा गया। लेकिन इस आदेश का उल्लंघन किया गया और दोपहर बाद खड़ी फसल नष्ट कर दी गई और खेतों पर काम कर रही दलित महिलाओं की फरियाद भी अनसुनी कर दी गई। अधिकारियों ने महिलाओं को गालियां भी दीं और उनके साथ बदसलूकी भी की, क्योंकि वे फसल नष्ट न करने पर जोर दे रही थीं।

उसी समय दो अन्य घटनाएं हुईं। दलितों की बस्ती गांव से कुछ हटकर अलग है। इस बस्ती में उच्च जाति के लोग भी रह रहे हैं जो गांव परिषद के सदस्य हैं। ये लोग उस दिन दलित पुरुषों के बस्ती में नहीं होने का फायदा उठाते हुए धीरे–धीरे उनके घरों में घुस गए। दलित पुरुष तो एसडीएम से मिलने गए थे। उच्च जाति के लोगों ने उनके घरों में पूजास्थल का अपमान किया और उनके पशु साथ लेकर चले गए। दलित पुरुष देर से आए और उन्होंने देखा कि फसलें बिल्कुल तबाह हो गई हैं। बाद में उन्होंने बस्ती में हुई घटना भी सुनी। अगले दिन तड़के वे एफआइआर लिखवाने थाने गए। वहां उन्हें 12 घंटे तक रोके रखा गया, उन्हें गालियां दी गईं और उनकी एफआइआर भी दर्ज नहीं की गई। अगले दिन स्थानीय मानवाधिकार कार्यकर्ताओं को इसकी जानकारी मिली। उन्होंने गांव में जाकर भूमि का सर्वेक्षण किया और पीड़ित परिवारों से मुलाकात की। बाद में वे पुलिस थाने भी गए। कार्यकर्ताओं ने थाने में महिलाओं के सामने पुलिस से पूछा कि एफआइआर क्यों दर्ज नहीं की गई। इसके बाद पुलिस ने एफआइआर दर्ज कर ली और अगले दिन पूछताछ के लिए गांव का दौरा किया। तीसरे दिन जब कार्यकर्ता एसडीएम से मिलने गए तब एसडीएम ने उसी पुलिस अधिकारी को बुला कर पूछा कि क्या हुआ था। उसने सीधे–सीधे बताया कि गांव में कुछ अप्रिय घटना नहीं हुई थी और एफआइआर में जो लिखवाया गया है वैसा कुछ भी नहीं था। मामला उसी वक्त समाप्त कर दिया गया। आज तक इस मामले में कुछ नहीं हुआ। दलितों को कोई मुआवजा नहीं मिला। एसआई से जांच की रिपोर्ट तैयार करने को कहा गया। उसके पास छानबीन की अवधि को तीन महीने तक बढ़ाने का अधिकार होता है तीन महीने के बाद उसने रिपोर्ट दी कि क्षेत्र में कोई अप्रिय घटना नहीं हुई थी।

केरल के एलामकुनुपुझा पंचायत का पुतु वाइपी गांव

सुनामी के बाद राहत प्रदान करने में सरकार और गैर सरकारी संगठनों द्वारा भेदभाव

निर्मला देवी और उसकी जाति के लोग एक ऐसे गांव में रहते थे, जो दिसम्बर 2004 में भारत के विभिन्न तटीय क्षेत्रों में आए विनाशकारी सुनामी तूफान से तबाह हो गया था। पीड़ितों का सुनामी में सबकुछ तबाह हो गया था मगर जान बच गई थी। सुनामी के बाद निर्मला देवी को 19 दिन अस्पताल में रखा गया, जिसमें से पांच दिन वह आईसीयू में थी। उसने आरोप लगाया है कि राहत वितरण के दौरान उच्च जाति के पीड़ितों की अपेक्षा उनकी अनदेखी की गई हालांकि दोनों समुदाय के लोगों को एक जैसा नुकसान हुआ था। उसे और उसके समुदाय के लोगों को तत्काल राहत के तौर पर महज 5000 रुपये दिए गए तथा उन्हें कोई और मदद नहीं दी गई। न ही उन्हें फिर से सक्षम बनने के लिए कोई सहायता दी गई, जबकि उच्च जाति के सदस्यों को उनके कामकाज के उपकरण, बर्तन और मकान आदि भी दिए गए। सरकार और एनजीओ द्वारा गठित किसी भी समिति में किसी भी दलित को नहीं रखा गया। दलितों की शिकायतों की बार–बार अनदेखी की गई। जिला कलेक्टर को 28 मार्च 2005 को सामूहिक याचिका दी गई, जिसकी भी अनदेखी की गई। जब राष्ट्रीय अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति आयोग ने याचिका मांगी तो जिला कलेक्टर ने इसे उपलब्ध नहीं कराया। इससे निम्नलिखित प्रावधानों का स्पष्ट उल्लंघन होता है–

- भारतीय संविधान का अनुच्छेद–14 जो कानून के समक्ष समानता और एक समान संरक्षण की गारंटी देता है।
- राज्य मानवाधिकार आयोग में भेदभाव का मामला दायर किया गया है और इस मामले में केरल उच्च न्यायालय में एक जनहित याचिका पर भी सुनवाई हो रही है।

(ix) साझा सेवाओं से वंचित

दलितों को दूर और अलग–थलग रखने से साझा सेवाओं तक उनकी पहुंच में बाधा उत्पन्न होती है। ये सेवाएं वास्तविक रूप से दलितों से बहुत दूर रह जाती हैं। देशभर में हर रोज लाखों दलित अधिकतर साझा सेवाओं से वंचित रहते हैं या उन्हें भेदभाव का सामना करना पड़ता है। शहरी वातावरण में यह प्रवृत्ति धीरे–धीरे दूर हो रही है, क्योंकि यहां किसी की सामाजिक स्थिति या जाति का आसानी से अंदाजा नहीं लगाया जा सकता, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में जाति का साफ पता चल

जाता है, जिससे दलितों को कई प्रतिबंधों का सामना करना पड़ता है। ऐसे प्रतिबंध आज भी पूरी तरह कायम हैं।

साझा सेवाओं तक पहुंच को लेकर दलित लोगों पर लागू प्रतिबंधों के बारे में हाल के वर्षों में की गई अत्यंत व्यापक शोध है–ग्रामीण भारत में अस्पृश्यता (अनटचेबिलिटी इन रूरल इंडिया) नामक रिपोर्ट। ग्यारह राज्यों में 2001–02 में कराए गए सर्वेक्षण पर आधारित रिपोर्ट में साझा सेवाओं तक पहुंच में दलितों के साथ किए जा रहे भेदभाव के स्तर का विवरणात्मक उल्लेख है। रिपोर्ट के लेखकों में से एक सुखदेव थोरात ने ऐसी साझा सेवाओं को परिभाषित भी किया है। इसके अनुसार सबके के लिए सार्वजनिक सेवाओं के अंतर्गत पानी के स्रोतों, सार्वजनिक मार्गों, परिवहन तथा चाय की दुकान, नाई की दुकान और पानी उपलब्ध कराने वाली सेवा समेत गांव स्तर की सेवाएं शामिल हैं। अस्पृश्यता का सबसे अधिक स्वरूप है सार्वजनिक जल स्रोतों तक पहुंच के बारे में भेदभाव, क्योंकि पानी या नहाने के लिए पानी लेने के साथ पवित्रता/शुद्धता की भावना अब भी जुड़ी हुई है। रिपोर्ट के अनुसार सर्वेक्षण किए गए लगभग आधे (48.4 प्रतिशत) गांवों में दलितों को पानी के स्रोतों से पानी लेने की मनाही है, हालांकि भारतीय संविधान का अनुच्छेद–15, कुओं, तालाबों और नहाने के घाटों पर जाति के आधार पर भेदभाव पर रोक लगाता है। रिपोर्ट में साझा पानी के स्रोतों के इस्तेमाल में दलितों के साथ किए जा रहे भेदभाव के तरीकों की सूची दी गई है–

- पानी भरते हुए दलित और गैर–दलित एक पंक्ति में खड़े नहीं होते।
- दलित और गैर–दलित कुएं से पानी निकालते हुए अलग–अलग रस्सियों का इस्तेमाल करते हैं।
- दलित उस समय कुएं या तालाब में अपना बर्तन नहीं डाल सकते जब गैर–दलित पानी ले रहे हों; अर्थात दलित तभी पानी निकाल सकते हैं जब गैर–दलितों ने पानी निकालना बंद कर दिया हो।
- गैर–दलित, दलितों के लिए निर्धारित स्रोतों से पानी निकाल सकते हैं अगर उनके लिए निर्धारित स्रोत सूख गए हों, लेकिन दलित किसी भी हालत में गैर–दलितों के स्रोत से पानी नहीं ले सकते हैं।
- दलितों और गैर–दलितों के अलग–अलग जल स्रोत हैं, लेकिन किसी आपात स्थिति में वे एक–दूसरे के जलस्रोत का इस्तेमाल कर सकते हैं।
- परंतु अभी भी कई स्थानों पर दलितों और गैर–दलितों के अलग–अलग जलस्रोत हैं, पर किसी आपात स्थिति में कोई भी एक–दूसरे के जलस्रोत का इस्तेमाल नहीं कर सकता है।
- दलित किसी भी जलस्रोत से स्वयं पानी नहीं ले सकते हैं। उन्हें अपने बर्तन में पानी डालने के लिए गैर–दलितों से अनुरोध करना पड़ता है।

स्रोत : अनटचेबिलिटी स्टिल स्ट्रांग इन रूरल इंडिया, पुअरेस्ट एरियाज सिविल सोसायटी प्रोग्राम की रिपोर्ट।[52]

---

52 पूअरेस्ट एरियाज सिविल सोसायटी प्रोग्राम, अनटचेब्लिटी स्टिल स्ट्रांग इन रूरल इंडिया। यूआरएल संदर्भ 09.08.07 http://www.empowerpoor.com/backgrounder.asp?report=475

पानी के स्रोतों तक प्रतिबंधित पहुंच उन कई तरीकों में से एक है जिससे सार्वजनिक जीवन में दलितों के साथ भेदभाव किया जाता है। साथ ही यह एक जोरदार उदाहरण है जो सामान्य और दिनबदिन के काम में दलितों के साथ छुआछूत के आधार पर जारी अलगाव को स्पष्ट करता है। अन्य साझा सेवाओं तक पहुंच में दलितों में प्रतिबंधों के अन्य तरीकों में भी ऐसी ही प्रवृत्ति विद्यमान है। सर्वेक्षण किए गए लगभग आधे गांवों में नाइयों और धोबियों तक दलितों की पहुंच नहीं है, क्योंकि ये काम करने वालों को डर है कि यदि वे दलितों को सेवा देंगे तो उनके पास उच्च जाति के ग्राहक नहीं आएंगे। एक तिहाई से अधिक गांवों में दलितों तक स्वास्थ्य कार्यकताओं को भी नहीं पहुंचने दिया जाता है और उनके साथ थाने में भी भेदभाव होता है। लगभग एक तिहाई गांवों में दलितों को राशन की दुकान से कुछ नहीं लेने दिया जाता है। ये दुकानें गरीबों को सस्ती वस्तुएं बेचती हैं। इससे उन्हें राशन की सस्ती वस्तुओं से वंचित रहना पड़ता है। दलितों को साझा सेवाओं से अलग रखने के दो तर्क हैं। पहला मकसद हिन्दू जनसंख्या में दलितों और गैर–दलितों को अलग रखना है। दूसरा उद्देश्य है दलितों का सामाजिक बहिष्कार (विशेष रूप से ग्राम स्तर पर) ताकि उन्हें आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र से दूर रखा जाए।

छत्तीसगढ़ के रायपुर जिले के टुंड्रा गांव का दलित समुदाय

दलित बस्ती तबाह

टुंडरा गांव के 40 दलित परिवारों को 10 जनवरी 2007 को मनुवादी उच्च जाति के लोगों के कहर का सामना करना पड़ा। 10 और 11 जनवरी की रात 10 बजे से सुबह पांच बजे तक टुंडरा की समूची दलित बस्ती उच्च जाति की गुंडागर्दी की घेराबंदी में रही। टुंडरा में इस तरह की यह तीसरी घटना है। पहली घटना में 1988–89 में 72 लोगों के खिलाफ कार्रवाई की गई थी। दोनों पक्षों के बीच समझौता कराया गया, जिसके बाद मुकदमा वापस लिया गया। एक महीने बाद पहले मामले के प्रमुख शिकायतकर्ताओं में से एक दुखीराम बार्ले, उसकी पत्नी और उसके पुत्र मनहरन बार्ले की जमीन के एक झगड़े में हत्या कर दी गई। उसका छोटा पुत्र घायल हो गया मगर बच गया और उसी के बयान के आधार पर अदालत ने अभियुक्तों को सजा सुनाई। हाल में स्कूल में दोपहर के भोजन को लेकर तनाव बना हुआ था। इस योजना का काम दलित महिला ग्रुप को मिला था और उनके काम में रोज रुकावट डाली जाती थी। गांव में उच्च जाति के लोगों की ज्यादा तादाद है, जिससे दलित महिलाओं के लिए दोपहर के भोजन का काम करने में परेशानियां हो रही थी। इतना ही नहीं उनके द्वारा बनाए गए भोजन को उच्च जाति के बच्चे नहीं खाते थे।

सप्ताहभर से बच्चों के लिए सर्कस में साइकिल शो चल रहा था, जिसने गांवों के दलितों समेत सभी वर्गों के बच्चों को आकर्षित किया। दलितों में अधिकतर सतनामी जाति के हैं। घटना

के दिन राहुल बर्ले, राजेन्द्र बघेल, गोरे और युधिष्ठिर बंजारे नाम के दलित युवक शो देख रहे थे। ये सभी खड़े थे। जगदीश वर्मा, धनीराम पटेल तथा अन्य ने इन सतनामी युवकों से बैठने को कहा। उन्होंने जवाब दिया कि अगर वे बैठ गए और उनके आगे खड़े युवक नहीं बैठे तो उन्हें कुछ दिखाई नहीं देगा। इस तरह शुरू हुई बहसबाजी बड़ी हिंसा में बदल गई। गांव के बड़े लोगों के हस्तक्षेप से मामला निपटाया गया। इन युवकों के चले जाने के बाद उच्च जाति के लोगों ने उन्हें सबक सिखाने के लिए फौरन बैठक बुलाई। रात 10.30 बजे के करीब जब सतनामी परिवार नींद में थे तो उन्होंने तोड़ने, गिराने और धकेलने की आवाजें सुनीं। इससे पहले कि उन्हे समझ आए कि क्या माजरा है, उन्हें जोर–जोर से गालियां दी गयीं। लोगों की भीड़ उनके घरों की ओर तेजी से आ रहीं थी। सतनामी लोग बच कर भागने लगे। वे खेतों में बिखर गए और महिलाएं घरों के अंदर के कमरों में सिमट गईं। लेकिन उच्च जाति के लोग उनका पीछा कर रहे थे। 70 साल की खोरीबाई रात्रे के सिर और छाती पर वार किया गया और उसे अंदरूनी चोटें आईं। हमलावरों ने 40 घरों के दरवाजे तोड़ कर उन्हें जो भी मिला उसे तबाह करने लगे। चार मोटरसाइकिल, 40 साइकिल, कई बोरी धान, कपड़े, बिस्तर, चादर, कंबल, टेबल फैन, कूलर, बर्तन, वीसीडी प्लेयर और भी न जाने क्या–क्या लूट कर ले गए। वे जो वस्तुएं नहीं ले जा सके उन्हें आग लगाकर पूरी तरह तबाह कर दिया गया। हमले में 37 घरों के मुख्य दरवाजे नष्ट हुए। प्रमाणपत्र जैसे कि अंक तालिका, जाति प्रमाणपत्र जैसे दस्तावेज भी नष्ट हुए। दसवीं कक्षा के ललित बर्ले, स्नातक छात्र मेवालाल बंजारे और दसवी कक्षा में कांशीराम की अंकतालिका प्रमाणपत्र और जाति प्रमाणपत्र खो गए। ईश्वर बंजारे ने बताया कि गांव में राशन पर बिक्री के लिए उसी दिन 3000 लीटर मिट्टी का तेल आया था जिसका इस्तेमाल आगजनी के लिए किया गया। युधिष्ठिर बंजारे का कहना है कि इस घटना को उस परिवार के सदस्यों ने उकसाया है जो 1989 के तिहरे हत्याकांड के दोषी थे। दलित मुक्ति मोर्चा अब तक सतनामी लोगों के हितों के लिए संघर्ष कर रहा है। घटना के बाद भिलाईगढ़ पुलिस थाने में आइपीसी की धारा–294, 506, 456, 147, 149, 435, 395 और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम 1989 की धारा–3 (1) (x) के अंतर्गत मामला दर्ज किया गया है। यह मामला 82/2007 राज्य बनाम जगमोहन तथा 30 अन्य के नाम से बलोदाबाजार के प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट की अदालत में है। सरकार की प्रारंभिक प्रतिक्रिया आनाकानीपूर्ण थी।

घटना के एक महीने के बाद 11 जनवरी 2007 को पहले 11 अभियुक्तों को गिरफ्तार किया गया। मामले के बाकी अभियुक्तों को एक सप्ताह के बाद 17 जनवरी को गिरफ्तार किया गया।

उड़ीसा के पुरी जिले के सातिकीपुर गांव का दलित समुदाय

दलित गांव के मंडप में बैठ नहीं सकते

बेनुधर सेठी धोबी समुदाय का है। गांव में उच्च जाति के लोगों का दबदबा है। इस इलाके में आज तक बर्तन प्रथा जारी है जो कि दासता जैसी है। उच्च जाति के लोग गांव के

धोबी और नाई दलितों का इस्तेमाल न केवल उनकी सेवाओं के लिए करते हैं अपितु उनसे अन्य कार्य भी कराते हैं। उच्च जाति के लोग उन्हें इसके बदले वस्तुएं देते हैं और कोई समुचित मेहनताना नहीं दिया जाता। गांव के दलितों ने सात पड़ोसी गांव के लोगों को मिलाकर भजन एसोसिएशन बनाई है। धोबी दलित समुदाय ने 24 अगस्त 2006 को भजन एसोसिएशन के सभी सदस्यों की आपात बैठक बुलाई। यह बैठक रात 8 बजे सातिकीपुर गांव के मंडप में होनी थी। इस मंडप का निर्माण सरकार ने बंजर भूमि पर किया है। उच्च जाति के कुछ लोग दामा माझी के पुत्र अंगद माझी, बेनू बिस्वाल के पुत्र मधु बिस्वाल और नारायण पटनायक के पुत्र कालू पटनायक वहां तेजी से पहुंचे और उन्हें गंदी गालियां दीं। बैठक में बाधा उत्पन्न हुई। उच्च जाति के एक सदस्य मधु गोपाल ने बेनू सेठी का कॉलर पकड़ा। इस बीच कालू पटनायक ने पीछे से आकर बेनू पर हमला कर दिया। वह गिर गया जिसके बाद अंगद माझी ने उसे ठोकर मार कर दूर गिरा दिया। उच्च जाति के लोगों ने दलितों को जाति के आधार पर गालियां दीं और बाकी दलितों पर हमला किया। उन्होंने दलितों को धमकी दी कि वे फिर इस जगह पर बैठक करेंगे तो बहुत बुरा होगा। किसी को छोड़ा नहीं जाएगा और सभी को गांव से निकाल दिया जाएगा। दलितों ने ब्रह्मगिरि पुलिस थाने जाकर अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3 (1) (x) के अंतर्गत एफआइआर दर्ज करवाई। ब्रह्मगिरी पुलिस थाने के आईआईसी दिलीप कुमार त्रिपाठी के अनुसार जमीन के एक झगड़े की पुरानी दुश्मनी के कारण झगड़ा हुआ। इस समय यह मामला पुरी के सिटी डीएसपी एके सिंह के पास है।

इस घटना से निम्नलिखित प्रावधानों का उल्लंघन होता है–

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3 (1) (xiv)

आंध्र प्रदेश के कडप्पा जिले के कादित्यमवरी पल्ली गांव का दलित समुदाय

दलितों को बिजली से वंचित रखा गया

कादित्यमवरी पल्ली गांव में पिछले 40 साल से उच्च जाति के लोगों और दलितों के संबंध खराब रहे हैं। उच्च जाति के लोग दलितों के साथ आपत्तिजनक व्यवहार करते रहे हैं। दलितों ने बिजली बोर्ड में बिजली लगवाने की अर्जी दी। उन्हें हर घर में बिजली और बिजली के मीटर दिए गए। दलित कॉलोनी तक बिजली की कोई स्थायी लाइन नहीं थी, इसीलिए सहायक इंजीनियर पेनगालुरु (सरकारी कर्मचारी) की अनुमति से दलितों ने उच्च जाति के सदस्य काट्टा नारायण नायडू के घर के निकट के खम्भे से लाइन खींच ली। दलित लगातार अपने बिजली के बिल का भुगतान कर रहे थे। काट्टा नायडू ने बिना किसी वैध कारण के दलितों की बिजली काट दी। उसने ऐसा दलितों के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार और बिजली मिलने से उनके जीवन–स्तर में सुधार की जलन के कारण किया। काट्टा नायडू ने पूछा कि किसने दलितों को बिजली का कनेक्शन दिया। एक दलित पी नारायण ने काट्टा नायडू से पूछा कि उनकी बिजली क्यों काटी गई है? काट्टा नायडू ने अन्य

अभियुक्तों के साथ मिलकर आधी रात को दलित बस्ती में नारायण और अन्य दलितों पर हमला किया। उन लोगों के पास हथियार थे और वे उन्हे मारने की कोशिश कर रहे थे। उन्होंने दलितों को गालियां दीं। इसके बाद उन्होंने धमकी दी कि अगर उन्होंने अभियुक्त की पट्टेवाली जमीन पर पांव रखा तो उन्हें जला दिया जायेगा। काट्टा नायडू तब से लगातार नारायण और अन्य दलितों पर हमला कर रहा है और उन्हें गालियां तथा धमकी भी देता है। पीड़ितों ने काट्टा नायडू और अन्य के खिलाफ शिकायत दर्ज कराई है और आइपीसी की धारा–507 और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) नियम की धारा–3 (1) (x) के अंतर्गत कानूनी मामला भी दायर किया है। यह मामला न्यायालय के विचाराधीन है।

आंध्र प्रदेश के कडप्पा जिले के कोठा चेरुवू गांव का दलित समुदाय

दलितों को पानी की आपूर्ति से मना किया गया

एपीएसआरआइसी के अधिकारियों ने कोठा चेरुवू गांव के निवासियों को पीने का पानी उपलब्ध कराने के उद्देश्य से 2002 में नन्दीपल्ली के सर्वे नं. 409 में एक कुआं खुदवाया। यह कुआं गांव के उच्च जाति के सदस्य पिच्ची रेड्डी की जमीन के निकट खोदा गया। पिच्ची रेड्डी ने 8 अक्तूबर 2004 की रात को कुएं के हैंडल और पाइप उखाड़ दिये और कुएं के चबूतरे को नष्ट कर दिया तथा अपनी जमीन पर सिंचाई के लिए बिजली की मोटर लगा दी। इस प्रकार दलितों को पानी मिलना बंद हो गया। पिच्ची रेड्डी और मालमपेटा और कोनासमुद्रम गांव के 70 अन्य लोग 20 दिसम्बर 2004 को कुछ कृषि उपकरण लाए और उन्होंने कुएं को नष्ट करने की कोशिश की। गांव के एक दलित चतला ने अपने कैमरे से फोटो खींच ली। इसके बाद अभियुक्तों ने उससे झगड़ा किया और उसे गालियां दीं तथा उसके सिर पर हथौड़े से वार किया जिससे उसके सिर पर गंभीर चोट आई। उसके साथ आयी महिलाओं को भी गाली दी गई और पीटा गया। महिलाएं जब डरकर भाग रही थीं तो अभियुक्तों ने उन पर लाठियों और हथौड़ों से हमला करने की कोशिश की। महिलाओं ने गांव में जी. चारी के घर में शरण लेनी चाही। पीड़ितों ने अस्पताल जाने की कोशिश की, लेकिन अभियुक्त और अन्य 70 लोगों ने उसे अस्पताल जाने से रोका। उसे धमकी भी दी गई कि वह पुलिस की मदद न ले तथा गांव लौट जाए। गांव आने के बाद उसने पुलिस को फोन किया तथा पुलिस ने आकर पीड़ित व्यक्ति तथा महिलाओं का बयान दर्ज किया। पुलिस उन्हें इलाज के लिए अस्पताल ले गई। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) नियम की धारा–3 (1) (v) के अंतर्गत मुकदमा दर्ज किया गया जो कि कडप्पा की अदालत में विचाराधीन है।

(x) यौन उत्पीड़न और मारपीट

दलित महिला को जाति, वर्ग और लिंग के आधार पर तीन गुना भेदभाव का सामना करना पड़ता है। उसे दलित और गैर–दलित समुदाय दोनों से कई प्रकार के भेदभाव से प्रताड़ित होना पड़ता है। सामाजिक

क्रम में सबसे निचले स्तर पर आने वाली महिला के पास अपने संवैधानिक और कानूनी अधिकार पर जोर देने के सबसे कम साधन हैं। उच्च जाति के लोग इसका लाभ उठाकर दलित महिला के यौन शोषण के जरिए जातिगत बटवारे को मजबूत बनाते हैं। ऐसी यौन हिंसा के मामले में शुद्धता/पवित्रता/भ्रष्ट होने की बात की अपनी सुविधा के अनुसार अनदेखी की जाती है। दलित महिलाओं का यौन उत्पीड़न और बलात्कार आम बात है।

दलित महिलाएं देश में महिला जनसंख्या का 16.3 प्रतिशत हैं और उन्हें जातिवाद से जुड़े जुल्मों का पूरी तरह सामना करना पड़ता है। दलित महिलाएं सामाजिक–आर्थिक भेदभाव के विभिन्न तरीकों के कारण कई प्रकार का यौन उत्पीड़न झेलती हैं। महिला को अजीब कारणों की वजह से बलात्कार झेलना पड़ता है जैसे कि गांव के साझे कुएं से पानी निकालना या उच्च जाति के किसी प्रकार के साथ टकराव वाले दलित परिवार का सदस्य होना। जातिगत आधार के लिए जो कार्रवाई खतरा होती है उससे यौन हिंसा की शुरुआत हो सकती है। ऐसा अक्सर अधिकतम शारीरिक पीड़ा और मनोवैज्ञानिक प्रताड़ना के मकसद से किया जाता है। दलित महिलाओं पर होने वाली यौन हिंसा की सार्वजनिक प्रवृत्ति प्रताड़ना प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। ये बलात्कार अक्सर गांव में दिन–दहाड़े किए जाते हैं। इतना ही नहीं पीड़ित महिलाओं को गांव में निर्वस्त्र घुमाया जाता है। दलित महिलाओं द्वारा ऐसे संवैधानिक अधिकारों पर जोर देने के कारण उनका उत्पीड़न किया जाता है जो उच्च जाति के हितों के विरुद्ध होते हैं। भूमि, संपत्ति और पंचायत तक पहुंच के मामले में भी आमतौर पर ऐसी घटनाएं सामने आती हैं। आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों से वंचित रखने के जरिए दलितों को योजनाबद्ध तरीके से अलग–थलग रखने की प्रवृत्ति भी यौन हिंसा का मुख्य कारण बनती है। दलित समुदाय के किसी प्रकार के विरोध को दबाने के लिए बदले की कार्रवाई के अंतर्गत भी बलात्कार किया जाता है।

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो की वार्षिक रिपोर्ट में कहा गया है कि 2005 के दौरान दलित महिलाओं के बलात्कार के केवल 1,172 मामले दर्ज हुए।[53] यह संख्या हालांकि वास्तविक अनुमानों से बहुत कम है। एमनेस्टी इंटरनैशनल रिपोर्ट इंडिया; द बैटल अगेंस्ट फियर एंड डिस्क्रीमिनेशन, दी इम्पेक्ट ऑफ वायलेंस अगेंस्ट वूमेन इन उत्तर प्रदेश एंड राजस्थान की रिपोर्ट में अनुमानित संख्या कहीं अधिक है और पिछले वर्षों से इसमें बढ़ोत्तरी हुई है।[54] चार राज्यों में इंस्टीट्यूट आफ डेवलपमेंट एजुकेशन की एक्शन एण्ड स्टडीज रिसर्च रिपोर्ट से पता चलता है कि पिछले पांच वर्ष के दौरान जिन दलित महिलाओं से बात की गईं उनमें से 23 प्रतिशत का बलात्कार किया गया था

53 राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो की वार्षिक रिपोर्ट 2005। यूआरएल संदर्भ 07.08.07 http://ncrb.nic.in/crime2005/cii-2005/CHAP7.pdf

54 एमनेस्टी इंटरनैशनल इंडिया, द बैटल अगेंस्ट फियर एंड डिस्क्रीमिनेशन, इम्पेक्ट ऑफ वायलेंस अगेंस्ट वूमेन इन उत्तर प्रदेश एंड राजस्थान। यूआरएल संदर्भ 07.08.07 http://web.amnesty.org/library/index/engasa200162001

और 46.8 प्रतिशत को किसी न किसी प्रकार की यौन हिंसा का शिकार होना पड़ा था।[55] ये आंकड़े उस देश के हैं जिसने महिलाओं के खिलाफ हर प्रकार के भेदभाव को समाप्त करने की संधि की पुष्टि की है। इस संधि में प्रावधान है कि सरकार महिलाओं के अधिकारों का सम्मान सुनिश्चित करने के लिए हरसंभव अतिरिक्त कदम उठाएगी। दरअसल दलित महिलाओं की कानूनी प्रणाली तक बहुत कम पहुंच होती है। इससे यौन हिंसा के बारे में तैयार अधिकतर रिपोर्टों के औचित्य पर प्रश्नचिन्ह लग जाता है। दलित महिलाओं के खिलाफ यौन हिंसा के मामले में सजा मिलने की दर बहुत कम है, क्योंकि अधिकतर मामलों को तो दर्ज ही नहीं किया जाता। इससे लगता है कि दलित महिलाओं के खिलाफ यौन हिंसा को लेकर अभियुक्तों में कोई भय नहीं है। ग्रामीण भारत में असरदार जाति के लोग पूरी तरह आश्वस्त हैं कि दलित महिलाओं के मामले में उन्हें दंडित नहीं किया जा सकेगा। ऐसा अपराध करने वालों के अक्सर पुलिस के साथ अच्छे संबंध होते हैं, इसलिए बलात्कार से पीड़ित को डराया–धमकाया जाता है और तब तक ऐसा किया जाता है जब तक वह और उसका परिवार आरोप वापस नहीं ले लेता। पीड़ित को और गंभीर नतीजे भुगतने की धमकी दी जाती है। देशभर से एकत्रित व्यापक सबूतों से पता चलता है कि ऐसे बलात्कार अक्सर पुलिस की शह और जानकारी से किए जाते हैं। ये अपराध कानून लागू करने वाले तंत्र की मूक सहमति से किए जाते हैं।

दक्षिण भारत में देवदासी प्रथा के चलन के अंतर्गत यौन उत्पीड़न के धार्मिक आधार को मान्यता दी गई थी। इस प्रथा के अंतर्गत कन्या के रजस्लवा होने से पहले किसी देवता के साथ शादी करा दी जाती है और वह मंदिर में रहती है। इसका अर्थ यह है कि उस लड़की का जीवनभर फिर विवाह नहीं हो सकता और उसे मुख्य रूप से उच्च जाति के लोगों के लिए वेश्या की तरह रहना पड़ता है। भारत में महिलाओं और बच्चों के अवैध व्यापार से संबंधित 2002–03 की रिपोर्ट में कहा गया है कि देवदासी बनने के बाद महिला या तो नजदीक के शहर चली जाती है या दूर के शहरों में चली जाती है, ताकि वह वेश्या के रूप में रह सके।[56] छोटी उम्र की महिलाओं पर यौन हिंसा का भय कुछ हद तक ग्रामीण भारत में जारी बाल–विवाह के कारण भी है, हालांकि बाल–विवाह रोक अधिनियम 1929 के जरिए इस पर प्रतिबंध लगाया जा चुका है। बलात्कार का धब्बा इतना भयानक और व्यापक है कि बलात्कार पीड़ित को शादी के लायक नहीं समझा जाता, इसलिए कम आयु में लड़कियों की शादी कर दी जाती है ताकि ऐसे अपराधों के खिलाफ बचाव संभव हो सके।

---

55 न्यू इंटरनैशनलिस्ट में उद्धृत अध्ययन, यूआरएल संदर्भ 07.08.07 http://www.newint.org/features/special/2006/12/06/Dalit-women/

56 इंस्टीट्यूट आफ सोशल साइंसेज – नैशनल ह्यूमन राइट्स कमीशन, यूएनआईएफईएम, ए रिपोर्ट आन ट्रैफिकिंग इन वीमेन एंड चिल्ड्रेन इन इंडिया 2002–2003। यूआरएल संदर्भ 02.08.07 http://www.ashanet.org/focusgroups/sanctuary/articles/ReportonTrafficking.pdf

आंध्र प्रदेश के खम्मम जिले के भद्राचलम गांव की तेताली सत्यकला

दलित पत्नी का उसके पति द्वारा परित्याग

ओलेती राजू की 19 वर्ष की दलित लड़की तेताली सत्यकला आंध्र प्रदेश में पूर्वी गोदावरी जिले में अनापर्ती में आइएलटीडी वॉचमेन क्वार्टरस में रहती है। वह 2005 में स्टाफ नर्स का प्रशिक्षण ले रही थी। चिना वेंकट रेड्डी का 20 वर्ष का पुत्र तेताली राजेश रेड्डी पूर्वी गोदावरी जिले में अनापर्ती में रहता है। उसने तेताली सत्यकला से शादी करने का वायदा किया। राजेश रेड्डी ने 16 नवम्बर 2005 को सत्यकला को धमकी दी कि अगर वह उससे शादी नहीं करेगी तो वह आत्महत्या कर लेगा। इन दोनों ने भद्राचलम में शादी की और वहीं किराए के घर में रहने लगे। कुछ दिनों बाद राजेश के दोस्त शिवा रेड्डी ने राजेश के घर आना–जाना शुरू कर दिया क्योंकि शिवा रेड्डी भद्राचलम में व्यापार के सिलसिले में आया करता था। राजेश रेड्डी 24 जुलाई 2006 को महाचलम से चला गया क्योंकि उसके रिश्तेदार और विधायक तेताली रामा रेड्डी ने उसे अपने साथ काम करने को कहा था। सत्यकला ने तीन साल तक अपने पति के लौटने का इंतजार किया। सत्यकला ने आखिरकार चिंतित हो कर राजेश की माता से संपर्क किया, जिसने बताया कि सत्यकला दलित जाति की है और इसलिए वह अपने बेटे से उसके विवाह को मान्यता नहीं देती है। राजेश की माता ने कहा कि वह उसे अपने घर में घुसने नहीं देगी और उससे राजेश का पीछा छोड़ने को कहा। इससे परेशान सत्यकला ने जहर खा लिया।

उसे पड़ोसी अस्पताल ले गए और उसके माता–पिता को सूचित किया। माता–पिता उसे अनापर्ती ले आए और 16 अगस्त 2006 को अनापर्ती पुलिस थाने में शिकायत दर्ज कराई। पुलिस ने मामला दर्ज करने से इंकार कर दिया। मामला दर्ज नहीं करने की खबर मिलते ही महिला अधिकार संगठन स्त्रीशक्ति ने सत्यकला से संपर्क किया और उसका साथ देने का वचन दिया। स्त्रीशक्ति के हस्तक्षेप के बावजूद पुलिस लगातार मामला दर्ज करने से इंकार करती रही। इस संगठन ने मानव अधिकार बोर्ड तथा संयुक्त कलक्टर के पास शिकायत दर्ज कराई। मामले पर तुरंत कार्रवाई करने के निर्देश दिए गए। संयुक्त कलक्टर ने एसआई से अभियुक्त तेताली राजेश रेड्डी को गिरफ्तार करने को कहा। पुलिस ने राजेश के माता–पिता और उसके दोस्त को 26 अगस्त 2006 को हिरासत में ले लिया। तेताली राजेश रेड्डी को जैसे ही इन गिरफ्तारियों की जानकारी मिली उसने उसी वक्त जा कर अदालत में समर्पण कर दिया। सत्यकला ने राजेश से कहा कि वह उनकी शादी को स्वीकार करे, लेकिन राजेश ने इंकार कर दिया। राजेश के रिश्तेदारों ने सत्यकला को धमकियां दीं और इसलिये उसने अपनी सुरक्षा के लिए डीएम को आवेदन दिया। मजिस्ट्रेट ने तुरंत कार्रवाई का आश्वासन दिया। सत्यकला ने 4 सितम्बर 2006 को कहा कि अगर राजेश शादी पंजीकृत कराने को राजी होता है तो वह मामला वापस ले लेगी। राजेश राजी नहीं हुआ। 4 अक्तूबर 2006 को एफआइआर के प्रावधानों में बदलाव करने का एसपी को आवेदन दिया गया। सत्यकला को चिकित्सा जांच के लिए भेजा गया। इस समय राजेश, उसके मातापिता और उसका

दोस्त शिवा रेड्डी जमानत पर हैं। आज भी वे इस शादी को नहीं मानते और उन्होंने सत्यकला को राजेश को छोड़ देने के लिए बीस हजार रुपए की पेशकश की है। इस मामले में दलित वीमेन एक्सेस टु जस्टिस संगठन भी सहयोग दे रहा है।

इस घटना से निम्नलिखित कानूनी प्रावधानों का उल्लंघन हुआ है–

- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3 (1) (xi) (xii)
- आइसीईएससीआर का अनुच्छेद–10

उड़ीसा के गंजम जिले के समुखा पहाड़ा गांव की तारिनी नाहक

दलित कन्या के मानवाधिकारों का घोर हनन

स्वर्गीय देवराज नाहक की 19 वर्ष की पुत्री तारिनी उड़ीसा के गंजम जिले में रघुनाथ पल्ली गांव में रहती थी। वह पानो जाति की थी। वह दिहाड़ी मजदूर थी और पिछले पांच वर्ष से कबि सूर्यनगर (पटेल रोड) के खेत्रबासी महापात्र के पुत्र बंसत महापात्र के ईंट के भट्टे पर काम करती थी। तारिनी नाहक और बसंत महापात्र के बीच यौन संबंध थे और तारिनी गर्भवती हो गई। बसंत महापात्र ने तारिनी पर गर्भपात कराने के लिए दबाव डाला। बसंत महापात्र 25 जून 2006 को तारिनी और उसकी दो नजदीकी महिला रिश्तेदारों के साथ गर्भपात कराने के लिए एक प्राइवेट क्लिनिक में गया। लेकिन गर्भपात नाकाम रहा। बसंत महापात्र ने गांव लौटते समय तारिनी और उसकी रिश्तेदारों से इस बारे में किसी को भी नहीं बताने की हिदायत दी। दो या तीन दिन के बाद तारिनी नाहक गायब हो गई। उसके रिश्तेदारों ने उसकी काफी तलाश की, मगर उसका कुछ अता–पता नहीं चला। आखिरकार वे 30 जून 2006 को पुलिस स्टेशन गए, ताकि तारिनी के लापता होने की शिकायत लिखवाई जा सके। वहां तैनात पुलिसकर्मी ने इसे गंभीरता से नहीं लिया। रिश्तेदारों के बार–बार अनुरोध किए जाने पर भी रिपोर्ट नहीं लिखी गई। तालिमापल्ली गांव की कुछ महिलाएं अथागडा और बड़ा अगुला गांव के बीच समुका पहाड़ी में लकड़ी इकट्ठा करने गयी थीं। उन्होंने वहां एक लाश देखी और आकर रघुनाथपल्ली गांव के लोगों को बताया। कबि सूर्यनगर की पांच–छह महिलाएं लाश देखने गयीं और उन्होंने पहचाना कि यह तो तारिनी की लाश है। महिलाओं ने उसी दिन इसकी सूचना कबिसूर्यनगर थाने को दी। अभियुक्त बसंत महापात्र ने काफी सशक्त रसायन से सबूत नष्ट किये थे, ताकि यह आत्महत्या लगे। पुलिसकर्मी 14 जुलाई 2006 को मौके पर गए और उन्होंने लाश कब्जे में ले ली। तारिनी के हत्यारे की पहचान भी कर ली गई, मगर उसे गिरफ्तार नहीं किया गया। बड़े आंदोलन के बाद उसे गिरफ्तार किया गया, लेकिन उच्च न्यायालय ने उसे जमानत दे दी। अभी तक अदालत में आरोपपत्र दायर नहीं किया गया है। यह गंजम जिले में चतरपुर के डीएसपी के दफ्तर में लंबित है। प्रभावित परिवार ने अपनी लड़की की मृत्यु के मुआवजे की मांग की है। अधिकारों की लड़ाई जारी रखने के लिए विकल्प

संगठन उन्हें मदद दे रहा है। राज्य अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति आयोग, मुख्यमंत्री और राज्य के गृहमंत्री के पास अर्जियां दी गई हैं।

यह मामला भारतीय दंड संहिता की धारा–302 के अंतर्गत अपराध है और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3 (2) (v) समेत अन्य कानूनों का भी उल्लंघन है।

उड़ीसा के केन्द्रपाड़ा जिले के खोलनाइ गांव का सुकान्त मलिक

अंतर्जातीय विवाह के कारण दलित युवक की हत्या

सुकांत मलिक चार भाइयों में से एक था और एक छोटे से गांव खोलनाइ में रहता था। खोलनाइ बेदिनी पंचायत का एक कम विकसित गांव है जो उड़ीसा में केन्द्रपाड़ा जिले के महाकालापाड़ा ब्लॉक में स्थित है। गांव में कंडारा जाति के चार और गोपाल जाति के दो परिवार है। केवल कुछ परिवारों के पास अच्छी खेती और बड़े खेत हैं, जबकि अन्य के पास जमीन के छोटे टुकड़े हैं या वे कृषि मजदूर हैं। गांव में केवल एक प्राइमरी स्कूल है। गांव में एक मंदिर भी है, मगर दलितों को उसमें प्रवेश नहीं मिलता। ऐसा भेदभाव और अस्पृश्यता की भावना गांववासियों की मानसिकता में भरी हुई है। प्राइमरी स्कूल में दोपहर का भोजन खाते समय और त्यौहार के दौरान दलित विद्यार्थी अलग बैठते हैं। सुकांत रहामा कालेज से स्नातक था और उसने गांव लौटने से पहले पशु इंस्पेक्टर का प्रशिक्षण पूरा कर लिया था। उसे पशु चिकित्सा का भी ज्ञान था और पशुओं के उपचार में गांववासियों की सहायता किया करता था। वह गांव में कुछ पढ़े–लिखे लोगों में से एक था। यह घटना उसी गांव के उच्च जाति के खंडारा परिवार की लड़की लोटानी भोला के साथ उसके प्रेम संबंध से संबंधित हैं। लोटानी अपने गांव में पान की छोटी सी दुकान चलाती थी। उसके अनुसार उन दोनों ने गांव की देवी के आगे विवाह करने का इरादा किया था। गांव के ज्यादातर लोग इस प्यार से वाकिफ थे, लेकिन लोटानी के परिवार ने सुकांत के अलग जाति के होने के कारण इसे मानने से इंकार कर दिया था। लोटानी के परिवार ने उसकी शादी किसी दूसरे व्यक्ति से करने का फैसला कर लिया था और सगाई के लिए 19 जून 2005 तय की गई थी। यह सब लोटानी की इच्छा के खिलाफ था। सगाई से एक रात पहले लोटानी अपने घर से चली गई और रात के अंधेरे में सुकांत के घर आ गई। सुकांत के परिवार वालों ने इस संबंध को जारी रखने से मना कर दिया। लोटानी के अनुसार सुकांत के भाई तपस ने उसे घर से बाहर धकेल दिया और सुकांत की पिटाई भी की। इसके बाद सुकांत की बहनें – लिपि और बदम्मा उसे बाबर के निकट रहामा ले गईं। इस बीच लोटानी के परिवार को जब पता चला कि वह घर पर नहीं है तो उन्होंने सोचा कि वह जरूर सुकांत के घर गई होगी। वे सुकांत के घर गए और लड़का–लड़की की तलाश करने लगे, जब उन्हें दोनों वहां नहीं दिखे तो उन्होंने सुकांत के परिवार को धमकी दी। रात में वह एक बार फिर सुकांत के घर गए। उन्होंने सुकांत के भाई अरुण की पिटाई की और उसके पिता, दादा और चाचा को रस्सी से बांध दिया। वे बाद में उन्हें गांव के एक कोने में ले गए और

उन्हें प्रताड़ित किया। जब पीड़ितों ने पानी मांगा तो उन्होंने उनके मुंह में पेशाब डाल दिया। उन्हें पड़ोस के घर से सुकांत मिला तो उन्होंने उसे घसीट कर सबके सामने पीटा और मार कर आधा खुदे तालाब में फेंक दिया। चार दलित परिवारों ने हालांकि सुकांत के कराहने और मदद मांगने की आवाजें सुनीं मगर वे इस डर से बाहर नहीं आए कि भोला परिवार उन पर भी जुल्म ढाएगा। सुकांत के मर जाने पर उसकी लाश को एक दलित पड़ोसी के घर के बाहर के पेड़ पर लटका दिया और वे चले गए। सुकांत के परिवार के बाकी लोगों को खाली कागजों पर दस्तखत करने के बाद ही छोड़ा गया। परिवार के सदस्यों और गांववालों ने बताया कि सुकांत की छाती पर पीटे जाने की खरोचें और निशान थे और तालाब से लाश खींचे जाने के भी पूरे निशान थे। उसके बाल कीचड़ में सने थे, क्योंकि उसे तालाब से बुरी तरह खींच कर निकाला गया था। उसके गुप्त अंगों पर बुरी तरह वार किया गया था और अंगों का कचूमर निकल गया था। सुकांत की इस प्रकार की गई हत्या से उच्च जाति और दलित समुदाय के लोग दुखी थे। कोई पुलिस अधिकारी वहां मामले की जांच के लिए नहीं पहुंचा था। राज्य स्तर के संगठन – एवीएलएम ने 15 दिन बाद घटना के तथ्यों की छानबीन के लिए एक दल भेजा। काफी विरोध और विभिन्न अधिकारियों के पास कई याचिकाओं के बाद पुलिस ने तीन अभियुक्तों को गिरफ्तार किया और दो ने समर्पण किया। सरकार की ढुलमुल कार्रवाई रही है और दिवंगत के परिवार को अभी तक राहत राशि का 25 प्रतिशत दिया जाना बाकी है।

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदाय के किसी व्यक्ति की हत्या अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3 (2) (v) और भारतीय दंड संहिता की धारा–302 के अंतर्गत गंभीर अपराध है।

बिहार के जहांनाबाद जिले के बिसुनगंज की ममता देवी

दलित महिला पर हमला और उस पर पेशाब किया गया

संजय मोची की पत्नी ममता देवी और उसका परिवार चमार जाति के हैं। वे बिसुनगंज गांव में रहते हैं। ममता देवी 13 सितम्बर 2006 को घर लौट रही थी। पशु राम के घर के पास से गुजरते उसे महसूस हुआ कि पानी के कुछ छींटे उसके चेहरे पर गिरे हैं। जब उसने सिर उठा कर देखा तो पाया कि कुंदन शर्मा और उपेन्द्र शर्मा अपनी पैंट की जिप बंद कर रहे थे। ममता देवी ने जब इस पर आपत्ति की तो इन शरारती लोगों ने फिर अपनी जिप खोल दी और उस पर पेशाब करने की धमकी दी। वे नीचे आए और उसे बालों से पकड़ कर उसे जातिगत गालियां दीं। उसकी पिटाई की गई और साड़ी खींच ली गई। उसने घर जाकर पति को सबकुछ बताया। इसके बाद अभियुक्त ममता देवी के घर आए और पति–पत्नी को पीटने लगे। उन्होंने उसका ब्लाउज

फाड़कर अपने नाखूनों से उसके कंधो और बाजुओं को जख्मी कर दिया। उसके पति ने इस घटना की जानकारी एसपी को दी परंतु पुलिस ने कोई कदम नहीं उठाया। पीड़ित ने शाम को पुलिस थाने में शिकायत लिखवाई। अगले दिन डीएसपी ने पीड़ित के घर आकर उसे जातिगत आधार पर धमकी दी। झगड़े वाले दिन शर्मा ने ममता देवी के पेट पर लात मारी थी, तभी से उसे दर्द हो रहा है। ममता देवी उस समय गर्भ के दूसरे माह में थी। इन लोगों ने उसके लड़के के कान पर भी चपेट मारी थी, तबसे वह ठीक तरह से सुन नहीं सकता। 1999 में उच्च जाति के गुंडों के उसके पड़ोस में आकर बसने के बाद से दंपति को लगातार प्रताड़ित किया जा रहा है। उच्च जाति के लोगों ने गांव से दलितों के सभी परिवारों को निकाल दिया है और पीड़ित दंपति के परिवार ने ही केवल गांव से चले जाने से इंकार किया था। इस घटना से पहले भी कई बार दंपति की पिटाई की गई। संजय के पिता को बीच बाजार में थप्पड़ मारा गया। संजय को चोरी के मामले में फंसाया गया है। चमड़े के सामान और सैंडिलों की उसकी छोटी सी दुकान 18 फरवरी 2003 को जला कर राख कर दिया गया। उसने दूसरे इलाके में दूसरा काम करने की कोशिश की। वहां से भी उसे उजाड़ दिया गया। उसके घर से कई बार सामान ओर नकदी लूटी गई। ताजा घटना के दिन शाम छह बजे तक पुलिस मदद के लिए नहीं पहुंची थी। इस मामले को एनसीडीएचआर की राज्य शाखा ने उठाया। इलाके के एसपी और डीएसपी से संपर्क किया गया, मगर उन्होंने भी भद्दी भाषा का इस्तेमाल किया और एफआइआर भी आनाकानी से दर्ज की और बुरा व्यवहार किया। पुलिस ने तो एक बार दम्पति को धमकी भी दी और अब वह उनसे मामला वापिस लेने को कह रही है।

कानूनी प्रावधानों के विभिन्न उल्लंघनों के उदाहरण हैं, जिनमें निम्नलिखित भी शामिल है–

- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3 (i) (xi)
- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–4

आंध्र प्रदेश के नेलूर जिले के इरुवली गांव की भूरा धनम्मा

उच्च जाति के गांववासियों द्वारा किए गए बलात्कार के अपमान और आघात से दलित महिला की मौत

भूरा धनम्मा और उसके पति लक्षण मरसय्या दोनों दलित कृषि मजदूर थे। 14 सितम्बर 2006 को दोनों उस प्लॉट पर गए जहां वे काम किया करते थे। उस खेत में उच्च कमान जाति के रामकृष्ण नायडू ने भूरा धनम्मा का बलात्कार करने की कोशिश की। भूरा धनम्मा ने चिल्लाकर आवाज लगाई और उसका पति मदद के लिए मौके पर पहुंचा। रामकृष्ण नायडू वहां से भाग निकला। इसके बाद पीड़ित की ओर से इस घटना की जानकारी गांव के अन्य दलितों को दी गई। दलित लोग इस घटना की जानकारी लेने अभियुक्त के घर पहुंचे। अभियुक्त के कुछ दोस्तों ने वहां दलितों को गालियां दीं। पीड़ित ने थाने में एफआइआर दर्ज कराई, लेकिन घटना के दस दिन बाद भी अभियुक्त को गिरफ्तार नहीं किया गया।

पीड़ित को घटना के बाद जबर्दस्त मानसिक आघात पहुंचा क्योंकि उसे उच्च जाति के लोगों द्वारा बार–बार अपमानित किया जा रहा था। उसने खाना–पीना बंद कर दिया और तीन माह की भूख हड़ताल के बाद मर गई। पीड़ित परिवार को कोई मुआवजा नहीं दिया गया।

यह घटना निम्नलिखित का घोर उल्लंघन है–

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3 (1) (x)

उत्तर प्रदेश के ओरैया जिले में पुलिया गांव की अंजू

नाबालिग दलित कन्या पर घोर अत्याचार

लाल सिंह की 14 साल की लड़की अंजू नगला चिंटा गांव में रहती है। वह कंजड़–अहिरबार जाति की है। 25 वर्ष का वीरेश सिंह यादव अछलादा गांव का है जो कि नगला चिंटा गांव से एक किलोमीटर दूर है। उसका पिता सरकारी कर्मचारी है और वह अपने सख्त व्यवहार की वजह से जाना जाता है। वीरेश सिंह, अंजू पर नजर रखे हुआ था और उसका पीछा करता था। वीरेश सिंह का मानना था कि अंजू को पकड़ पाना आसान होगा क्योंकि वह गरीब परिवार की है और अनुसूचित जाति की है। मगर अंजू ने कभी उसमें कोई रुचि नहीं दिखाई। वीरेश सिंह उस पर छींटाकशी किया करता था और अपनी मोटरसाइकिल पर बैठ कर अंजू को ताकता रहता था। उसने अंजू से बात करने की कोशिश भी की। अंजू ने उसे कोई घास नहीं डाली। अंजू अपनी बड़ी बहन के पास फिरोजाबाद चली गई और वहां 15–16 दिन रही। वीरेश सिंह ने फिरोजाबाद जा कर उसके साथ वही व्यवहार किया। अंजू ने अपनी बड़ी बहन की सास शारदा देवी को इस बारे में बताया। उसने वीरेश के व्यवहार का विरोध किया। उनके बीच 20–25 मिनट तक कहासुनी हुई। फिरोजाबाद से जाते हुए वीरेश ने धमकी दी और कहा कि "एक दिन इस साली कंजरिया का घमंड जरूर चूर कर दूंगा, साली ने हमारी बेइज्जती की है।" कुछ दिन बाद अंजू अपने गांव लौट आई। अंजू 11 फरवरी 2006 को लगभग चार बजे बाजार से कुछ सब्जियां खरीदने अछालदा गांव गई, जो एक किलोमीटर दूर है। बाजार से घर वापिस आते हुए गंगा नदी के तट पर पुलिया के नजदीक तेजधार का एक हथियार लिए वीरेश ने अंजू को पकड़ लिया। उसके साथ दो दोस्त भी थे, उन्होंने उसकी अस्मिता धूल में मिला दी। अंजू ने विरोध किया और भागने की कोशिश की, लेकिन वीरेश ने हथियार से उस पर वार किया और उसकी दाईं बाजू पूरी तरह काट दी। अंजू गिर गई और बेहोश हो गई। हमलावर वहां से भाग गए। कुछ गांववालों ने गंभीर घायल हालत में अंजू को देखा। उन्होंने अंजू के मातापिता को संदेश भेजा। उसके मातापिता कुछ रिश्तेदारों के साथ आकर उसे अछालदा थाने ले गए। अंजू को थाने में होश आया और उसने आपबीती सुनाई, लेकिन वहां एफआइआर दर्ज नहीं की गई। अंजू को थाने से इटावा अस्पताल ले जाया गया, जहां उसका प्राथमिक उपचार किया गया। डाक्टरों ने उन्हें कहा कि अंजू को दाखिल करने के लिए थाने में शिकायत जरूर लिखवाएं। वे जब ओरैया जिले के एसपी के पास पहुंचे तो उसने एक नहीं

सुनी। एसपी ने चिल्लाकर कहा "बवाल बनाकर लाए हो, भाग जाओ यहां से, नहीं तो सबको बंद कर दूंगा।" उन्होंने 13 फरवरी 2006 को ओरैया के डीएम से मुलाकात की। डीएम ने अपनी कार दी और अपने दफ्तर के कुछ लोगों को साथ भेजा और कानपुर के अस्पताल में अंजू को भर्ती कराया। इस अस्पताल में भी उसे सही उपचार नहीं मिला। अंजू से कई अखबारों के संवाददाताओं ने बात की और कई जगह खबरें छपने के बाद उसका सही उपचार होने लगा। उत्तर प्रदेश की बहुजन समाज पार्टी ने 13 फरवरी 2006 को पीड़ित परिवार को एक हजार रुपए की सहायता राशि दी। राज्यपाल ने भी अंजू के उपचार के लिए 15 फरवरी 2006 को 25,000 रुपए दिए।

पीड़ित परिवार को अभी तक प्रशासन ने कोई सुरक्षा नहीं दी है। थाना अधिकारी एमपी सिंह ने 13 फरवरी 2006 को एससी/एसटी एक्ट की धारा–3 (1) और आईपीसी की धारा–326, 354 के अंतर्गत मामला दर्ज किया। बाद में क्षेत्रीय अधिकारी बिपुना रामविलास यादव ने मामले की छानबीन की। अभियुक्त अब भी अंजू और उसके परिवार के सदस्यों को धमकी देते हैं। गांव का कोई व्यक्ति, यहां तक कि उनके पड़ोसी गवाही देने या किसी तरह की मदद देने को तैयार नहीं हैं, क्योंकि अभियुक्तों ने उन्हें धमकी दे रखी है या खरीद लिया है। अभियुक्तों ने उनके खिलाफ झूठा मामला दर्ज कराया है। पीड़ित अब दिल्ली में है। राज्य का एनसीडीएचआर पीड़ित परिवार के पक्ष के लिए लड़ रहा है।

आंध्र प्रदेश के प्रकाशम जिले में सेंट आर्नोल्ड स्कूल की बिरदुदु राम्या

नाबालिग दलित कन्या का बलात्कार के बाद कत्ल

बिरुदु नागेश्वर राव की लड़की बिरदुदु राम्या आंध्र प्रदेश के प्रकाशम जिले में नेदारामेतला गांव में सेंट आर्नोल्ड हाई स्कूल में दसवीं कक्षा में पढ़ती थी। स्कूल को रोमन कैथलिक मिशनरी संचालित करते हैं और वहां बोर्डिंग भी है। लड़कियों के हॉस्टल को सिस्टर्स और लड़कों के हॉस्टल को फादर चलाते हैं। ये दोनों हॉस्टल एक ही इमारत में हैं। पादरी स्कूल का हेडमास्टर है इस वजह से वह लड़कियों के हॉस्टल तक जा सकता है। आमतौर पर पादरी रोजाना प्रार्थना कराता है और हॉस्टल के सभी विद्यार्थी उसमें शामिल होते हैं। 14 साल की बिरदुदु राम्या मादिगा जाति की है और उसे 2004 में सेंट आर्नोल्ड हॉस्टल में दाखिल किया गया था। तब वह नौवीं कक्षा में थी। वह दसवीं कक्षा में भी उसी स्कूल में रही। राम्या अक्सर अपनी माता को बताया करती थी कि हेडमास्टर फादर फर्नान्डिज उसके साथ बदसलूकी करता है। मगर उसकी मां ने इस बात को कभी गंभीरता से नहीं लिया, क्योंकि उसका मानना था कि पादरी बहुत पवित्र व्यक्ति होते हैं। राम्या के पिता नागेश्वर राव प्रकाशम जिले में पेरागोंडापलेम में अग्निशमन केन्द्र में ड्राइवर का काम करता है। राम्या ने 8 दिसम्बर 2005 को

अपने पिता से फोन पर बात करनी चाही मगर वह उस समय दफ्तर में नहीं था। उसे दफ्तर लौटने पर बताया गया कि उसकी लड़की का फोन आया था। उसने लड़की से फोन पर बात करने की कोशिश की। उसने कई बार स्कूल में फोन किया मगर वहां से कोई जवाब नहीं मिला। इसके बाद नागेश्वर राव सेंट आर्नोल्ड स्कूल गया और देखा कि उसकी लड़की मृत पड़ी है, जिसे देख उसे गहरा धक्का लगा। नागेश्वर राव को बताया गया कि उसकी लड़की ने फांसी लगा ली है। स्कूल के प्रबंधकों ने बताया कि राम्या ने 200 रुपए चुराए थे और जुर्म तथा बदनामी के कारण उसने फांसी लगाई। राम्या के शरीर को अच्छी तरह स्नान करवाया गया था और किसी प्रकार के शक का कोई निशान नहीं छोड़ा गया था। स्कूल की अन्य लड़कियों ने बताया कि फादर फर्नान्डिज, राम्या और अन्य लड़कियों को परेशान और यौन प्रताड़ित किया करता था और यही राम्या की मृत्यु का कारण था। लड़कियों के हॉस्टल की वार्डन सिस्टर मारिया टेरेसा है और मारिया को लड़कियों के हॉस्टल में जो भी होता था उसकी पूरी जानकारी थी। राम्या द्वारा 200 रुपए चुराने का आरोप झूठा था। पुलिस हालांकि वहां आई और वह स्नानघर तक जा सकती थी, मगर उसने समुचित पूछताछ नहीं की और पादरी और सिस्टर के बयान लिए बगैर लौट गई। स्नानघर में जिस डंडे से लटक कर राम्या द्वारा फांसी लगाए जाने की बात है, उस डंडे की ऊंचाई नहीं नापी गई। इस ऊंचाई तक पहुंचना मुश्किल था और यहां से राम्या फांसी पर लटक नहीं सकती थी। इतना ही नहीं उसके आत्महत्या का कोई कारण नहीं था। यूं तो स्कूल छोटी–छोटी बात की जानकारी परिवार को देता है, मगर उसकी मृत्यु की सूचना उसके पिता को नहीं दी गई। पुलिस ने पीड़ित के पिता के साथ कोई सहयोग नहीं किया। पोस्टमार्टम केन्द्र पर पोस्टमार्टम करने से पहले उन्होंने राम्या का जन्म प्रमाणपत्र मांगा। पहले निष्कर्ष में बताया गया कि बलात्कार का कोई मामला नहीं है, मगर दूसरे निष्कर्ष के अनुसार पीड़ित के शरीर पर वीर्य के निशान थे। तीसरे निष्कर्ष के लिए मामला हैदराबाद भेजा गया है और इसकी रिपोर्ट अभी आनी है। दूसरी तरफ स्कूल ने समझौता करने के लिए पीड़ित परिवार को रकम की पेशकश की और जब उन्होंने मना कर दिया तो मामले को आगे बढ़ाने पर मारने की धमकियां दी गईं। पुलिस ने भी परिवार को हतोत्साहित किया और कहा कि वह मामला आगे न ले जाएं, क्योंकि ऐसा करने से उनकी लड़की वापिस तो नहीं आ सकती। फादर फर्नान्डिज पहले भेल में सेंट एन्स स्कूल में काम करता था और बदसलूकी की वजह से उसका तबादला किया गया था। दलित स्त्री शक्ति इस मामले को उठा रही है और उसने राज्य अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति आयोग और राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग में भी अर्जी भेजी है। 9 दिसम्बर 2005 को सीआरपीसी की धारा–174 के अंतर्गत एफआइआर दर्ज की गई।

इस घटना से निम्नलिखित का उल्लंघन होता है–

- भारतीय संविधान का अनुच्छेद–21
- आइसीसीपीआर का अनुच्छेद–6
- यूडीएचआर का अनुच्छेद–3

- सीईआरडी का अनुच्छेद–5 (बी)
- भारतीय दंड संहिता की धारा–302 और 376
- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3 (2) (v) और धारा–4

एक याचिका आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को भी भेजी गई है।

पंजाब के पटियाला जिले के चंडीगढ़ गांव की नीतू

दलित महिला के साथ बलात्कार और अत्याचार

नीतू, दविन्दर सिंह की बेटी है। दविन्दर सिंह अभियुक्त अलबेल सिंह के पास नौकरी करता है। अलबेल सिंह चंडीगढ़ का निवासी है। अलबेल के चालक क्रांति ने पीड़ित नीतू को फुसलाया कि वह उसे चंडीगढ़ में नौकरी दिलवाएगा। इस तरह वह उसे अलबेल सिंह के घर ले आया और वहां अलबेल सिंह के साथ मिलकर तीन महीने तक नीतू से बलात्कार करता रहा। उसे धमकी दी गई कि अगर वह किसी को कुछ बताएगी तो उसे बुरे नतीजे भुगतने होंगे। नीतू तीन महीने तक सब कुछ सहती रही। 19 फरवरी 2007 को उसने जहर खा लिया, मगर पुलिस ने उसकी जान बचा ली। उसे अस्पताल ले जाया गया जहां पता चला कि नीतू गर्भवती है। पुलिस में मामले की रिपोर्ट की गई। 20 फरवरी 2007 को आईपीसी की धारा–307, 376, 506, 120 (बी) के अंतर्गत एफआइआर दर्ज की गई। अब तक केवल क्रांति को गिरफ्तार किया गया है। अलबेल सिंह के खिलाफ कोई कानूनी कार्रवाई नहीं की गई। पीड़ित की ओर से पटियाला के एसएसपी से एफआइआर में एससी/एसटी एक्ट के सभी प्रावधान डालने को कहा गया मगर ऐसा नहीं किया गया। पीड़ित को कोई मुआवजा नहीं दिया गया और प्रशासन ने अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम के अंतर्गत मामला दर्ज करने से इंकार कर दिया।

हरियाणा के जींद जिले के किला जफरगढ़ गांव का दलित समुदाय

दलित बस्ती पर हमला

एक दलित अत्तर सिंह ने 31 अगस्त 2006 को रात नौ बजे एक धार्मिक समारोह आयोजित किया। लगभग 10 बजे 10–15 युवक आकर दलित महिलाओं के पीछे बैठ गए। युवकों ने महिलाओं के बाल और कपड़े खींचते हुए उनके साथ छेड़छाड़ की। उन्होंने दलित महिलाओं पर ईंट–पत्थर फेंकने शुरू कर दिए और कुछ महिलाएं घायल हो गईं। कुछ समय में दलितों और युवकों के बीच झड़प शुरू हो गई। अत्तर सिंह ने बीच में ही धार्मिक पूजा बंद कर दी और पुलिस बुला ली। पुलिस के पहुंचने पर युवक भाग गए। पहली सितम्बर 2006 को बड़े सवेरे युवकों ने गांव की लाइट बंद कर दी और लगभग 150 से 200 युवकों की भीड़ ने भालों, लाठियों और अन्य हथियारों के साथ दलितों पर हमला किया और उनके 76 घरों को तहस–नहस कर दिया। हमले में 14 दलित

घायल हुए। घटना के दो घंटे बाद पुलिस पहुंची और घायलों को अस्पताल ले जाया गया। जुलाना सिविल अस्पताल में उनका इलाज नहीं हो सका और उन्हें पीजी मेडिकल अस्पताल रोहतक भेज दिया गया। युवकों के खिलाफ मामला दर्ज किया गया और उनमें से 32 को गिरफ्तार किया गया। पुलिस में मामला दर्ज कराने का बदला लिए जाने के भय से दलित गांव छोड़ कर नजदीकी कस्बों में जाकर बसने लगे। पुलिस उन्हें सुरक्षा का आश्वासन देकर गांव छोड़ने से रोकने की कोशिश कर रही है। छह सितम्बर तक 15 से 20 दलित परिवार गांव छोड़ कर चले गए। एक एनजीओ ने गांव में तथ्यों का पता लगाने के लिए एक दल भेजा। इस दल ने देखा कि हमलावरों के कई साथी गांव में बेरोकटोक घूम रहे हैं और उन्हें गिरफ्तार नहीं किया गया है। पीजीएम अस्पताल के निदेशक ने शुरू में पीड़ितों का इलाज करने से मना कर दिया। दलित परिवारों की सुरक्षा के लिए उठाए गए उपाय नाकाफी हैं। उन्होंने मामले की सीबीआई से जांच कराने की मांग की है और सरकार से दलितों के गांव छोड़ कर जाने पर रोक के लिए तत्काल कार्रवाई करने को कहा है।

यह घटना निम्नलिखित का स्पष्ट उल्लंघन है–

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3 (1) (x) और 4

तमिलनाडु के कोयम्बतूर जिले के पल्लाडाम गांव की देवी

दलित महिला का यौन उत्पीड़न और बंधुआ मजदूरी

देवी, मतारी समुदाय की है। उसने उच्च जाति के रामास्वामी कोवांदर से पांच हजार रुपए कर्ज लिये थे। कर्ज की रकम वापिस करने के लिए वह अपने पति के साथ कोवांदर के गोदाम में रही और पल्लाडाम गांव में बंधुआ मजदूर की तरह काम किया। उसके मालिक की देवी के साथ बदसलूकी करने की आदत थी। वह शराब पिया करता था, भद्दी भाषा बोला करता था और देवी के साथ दुर्व्यवहार करता था। देवी और उसका पति नौकरी छोड़ना चाहते थे, मगर रामास्वामी कोवांदर ऐसा नहीं करने देता था। पोंगल के बाद वे वहां से चले आए और अपने मूल इलाके में रहने लगे। 28 जनवरी 2007 को रामास्वामी उनके ठिकाने पर गया और उन्हें जातीय आधार पर गालियां दीं। उसने खुलेआम देवी की साड़ी उतार दी और उसे जबरन अपने वाहन पर बैठा लिया। उसका पति पीछे गया और उसने पत्नी को बचा लिया। रामास्वामी यह कहते हुए लौट गया कि वे गोदाम और काम पर लौट आएं। देवी और उसके पति ने 29 जनवरी 2007 को अविनासीपलयम पुलिस थाने जाकर आईपीसी धारा–341, 354 और 506 के अंतर्गत रामास्वामी के खिलाफ मामला दर्ज कराया। पीड़ित के पक्ष में तमिलनाडु दलित वीमेन्स मूवमेंट संगठन आगे आया। पीड़ितों को अभी कोई मुआवजा या न्याय का आश्वासन नहीं मिला है।

इस घटना से निम्नलिखित का उल्लंघन दिखाई देता है–

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3 (1) (v) और (xi)

राजस्थान के छानबिल्ला गांव का फोदीराम

दलित की नाक काटी गई

ठाकुर जाति के राम अवतार ने गुज्जर समुदाय के एक व्यक्ति की भैंस चुराई। उसने फोदीराम के बेटे राजू से बाजार जाकर भैंस बेचने को कहा। राजू को यह पता नहीं था कि भैंस चोरी की है। वह राम अवतार के भाई के साथ भैंस को नजदीकी बाजार ले गए। इस बीच उन्हें भैंस के बारे में पता चल गया। राजू और राम अवतार ने भैंस वापस गांव ले जाने का फैसला किया। रास्ते में राम अवतार ने भैंस को अपने कब्जे में ले लिया और उसे 14,000 रुपए में बेच दिया। गुज्जर समुदाय ने भैंस की तलाश की और उसका पता नहीं चलने पर पंचायत बुलाई। पंचायत ने राजू और राम अवतार पर सात–सात हजार रुपए का जुर्माना लगाया। राम अवतार ने जुर्माने की रकम नहीं दी। मगर राजू के परिवार ने पंचायत के निर्णय का सम्मान करते हुए रकम इकट्ठा करके भुगतान कर दिया। राम अवतार अपने द्वारा भुगतान की जाने वाली बाकी रकम देने के लिए भी फोदीराम पर दबाव डालता रहा। राम अवतार 15 फरवरी 2006 को फोदीराम के घर आया और उसे बंदूक दिखा कर धमकी दी। उसने बदला लेने के लिए तेजधार हथियार से फोदीराम की नाक काट दी। उस समय वह केलादेवी से लौट रहा था। आइपीसी की धारा–325 के अंतर्गत एफआइआर तत्काल दर्ज कराई गई। एनसीडीएचआर की राज्य शाखा ने मामले पर कार्रवाई के लिए जोर दिया और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम के अंतर्गत शिकायत दर्ज की। पीड़ित को उपचार के लिए कोई सहायता राशि नहीं दी गई। पुलिस की तरफ से कोई कार्रवाई नहीं की गई और अभियुक्त को गिरफ्तार करने की कोई कोशिश भी नहीं की गई। एनसीडीएचआर ने तथ्यों का पता लगाकर रिपोर्ट बनाई है। पीड़ित परिवार को समझौता करने के लिए राम अवतार के परिवार की ओर से लगातार धमकियां दी जा रही हैं।

(xi) आपराधिक न्याय प्रणाली एवं न्यायपालिका में अस्पृश्यता

भारतीय कानून में कई भेदभाव–निरोधक अधिनियम और अनुकूल प्रावधान मौजूद हैं लेकिन इनके अमल में खामियां हैं। दलित वकीलों और कार्यकर्ताओं को सामाजिक, भाषाई और व्यवस्था से जुड़ी बाधाओं का सामना करना पड़ता है जिन पर अक्सर प्रतिकूल न्यायपालिका और नागरिक प्रशासन के कारण काबू पाना लगभग मुश्किल हो जाता है। इस समूची व्यवस्था का मकसद दलितों को अलग–थलग और वंचित करना है।[57]

दलित समुदाय को संरक्षण के उपाय उपलब्ध कराने और उनके अधिकारों को लागू कराने के मकसद से बनाए गए प्राथमिक कानून का नाम है– अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोध

57 इस अध्याय का पाठ गिरीश अग्रवाल और कॉलिन गोन्साल्विस की पुस्तक 'दलित और कानून' (2006) की प्रस्तावना में पहले प्रकाशित किया जा चुका है

ाक) अधिनियम 1989। इस अधिनियम को संसद ने तब पारित किया था जब यह स्पष्ट हो गया था कि आजादी के चालीस साल बाद भी दलितों पर उच्च जातियों के दमन को रोकने में मौजूदा कानून और राज्यों की व्यवस्था कारगर साबित नहीं हुई है। अत्याचार निरोधक अधिनियम कई प्रकार से एक बेहतर और मजबूत कानून है, मगर इसका गंभीरता से पूरा इस्तेमाल नहीं किया गया। उच्च जाति के वकीलों और न्यायाधीशों की इस दलील कि इस कानून का दुरुपयोग किया जा रहा है, के बावजूद ऐसा हो रहा है। दरअसल, जैसा कि विगत कई वर्षों में एचआरएलएन ने पाया और लिखा कि कानून पर मुश्किल से अमल किया जा रहा। आपराधिक न्याय प्रणाली और न्यायपालिका में जिस स्तर पर अस्पृश्यता कायम है वह चिंताजनक है और यह कई तरीके से समूची व्यवस्था को हास्यास्पद बना देती है, क्योंकि दलितों को आपराधिक न्याय प्रणाली के हर स्तर पर भेदभाव का सामना करना पड़ता है। यह न केवल निचले स्तर पर है अपितु न्यायाधीशों के स्तर पर भी है जैसा कि उत्तर प्रदेश के उच्च जाति के एक न्यायाधीश का उदाहरण है। इस न्यायाधीश ने अपने चैम्बर को पवित्र जल से शुद्ध किया था, क्योंकि उस चैम्बर में पहले अनुसूचित जाति का न्यायाधीश बैठा करता था। जो दलित ऐसे अपराध के बारे में एफआइआर लिखवाना चाहते हैं उन्हें अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। इस बारे में हर स्तर पर कठिनाइयां हैं। पुलिस घमंडी और दमनकारी है। अधिकतर आपराधिक मामले दर्ज ही नहीं होते। पुलिस द्वारा लिखी गई शिकायतें जुबानी बताई गई कहानी से अलग होती हैं। अभियुक्तों के नाम भी अक्सर गायब होते हैं। अत्याचार की गंभीरता को कम कर दिया जाता है, गाली या फिर उत्पीड़न के बारे में सही स्थिति पेश नहीं की जाती है। आखिरकार पुलिस पीड़ित को प्रताड़ित करने के लिए उनके खिलाफ झूठे मुकदमे बना देती है। आरोपपत्र दाखिल होने पर हर बार अभियुक्त को जमानत मिल जाती है। अभियुक्त रिहा होते ही शिकायतकर्ता को धमकी देते हैं और उन्हें शिकायत वापिस लेने या अदालत में मुकर जाने पर मजबूर कर देते हैं। इसके बाद सरकारी वकील भी मुकदमे को और कमजोर बना देते हैं। इनमें से अधिकतर उच्च जाति के होते हैं और वे फौरन अभियुक्त के साथ मिल जाते हैं तथा आपराधिक मामले को नुकसान पहुंचाना शुरू कर देते हैं। वे जरूरी गवाहों को बुलाते ही नहीं। वे अभियोजन पक्ष के गवाहों को सलाह देते हैं कि वे ऐसी गवाही दें, जिससे अभियोजन का मामला कमजोर हो जाए। वे जरूरी अदालती सबूत पेश नहीं करते। अंततः वे जोरदार तरीके से दलील नहीं देते जिससे न्यायाधीश को यह समझ आता है कि कि मामले में कोई दम नहीं है।

समूची न्यायिक प्रणाली, जिसमें दलितों का बहुत कम प्रतिनिधित्व है, अत्यंत घिनौने अपराधों में पीड़ितों के हित में काम नहीं करती है। अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व हालांकि सुधर रहा है, फिर भी यह बहुत कम है। वर्ष 2002 में उच्चतम न्यायालय में 26 न्यायाधीशों में से केवल एक न्यायाधीश अनुसूचित जाति का था। उच्च न्यायालयों में 625 पदों में से केवल 25 दलितों के पास थे। ब्राह्मणों की जनसंख्या देश की कुल जनसंख्या की 5 से 9 प्रतिशत है, लेकिन उनके पास

78 प्रतिशत न्यायिक पद हैं। नतीजन अत्याचार निरोधक अधिनियम पर अमल नहीं होता क्योंकि न्यायाधीश, वकील, सरकारी वकील और पुलिसकर्मी इसे लागू करने के लिए बिल्कुल इच्छुक नहीं होते। तमिलनाडु में पीपुल्स वॉच और आंध्र प्रदेश में साक्षी संगठनों द्वारा किए गए अध्ययन से पता चलता है कि ऐसे मामलों में दोषी ठहराए जाने की दर एक प्रतिशत से कम है। अत्याचार निरोधक अधिनियम पर 2001–2002 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार 2002 में इस अधिनियम के अंतर्गत लाए गए कुल मामलों में से केवल 2.31 प्रतिशत मामलों में दोषी ठहराया जा सका।[58]

तमिलनाडु के पेरम्बूर जिले के अरुणागिरीमंगलम गांव का बेलावेन्द्रन और अन्य

जमीन के झगड़े के कारण दलित की हत्या

धोबी समुदाय के बेलावेन्द्रन ने उच्च जाति के परयार समुदाय के एक व्यक्ति से मकान पट्टे पर लिया था। वह इस मकान में 15 वर्ष से रह रहा था। मकान मालिक ने इस मकान को बेलावेन्द्रन को बेचने का वादा किया था, लेकिन उसने इसे परयार समुदाय के अन्य व्यक्ति को बेच दिया, क्योंकि परयार जाति का गणेशन यह नहीं चाहता था कि परयार समुदाय के पड़ोस में कोई धोबी जाति का परिवार स्थाई रूप से रहे। बेलावेन्द्रन और उसके भाइयों ने 2006 में सड़क पार जमीन खरीद ली। उन्होंने इस जमीन पर मकान बनवाया। गणेशन के उकसावे पर चिन्नैयन, चिन्नापिल्लै और अन्य ने सार्वजनिक पंचायत सड़क पर कब्जा कर लिया। उन्होंने जमीन पर अपनी गाय और बकरियां बांध दीं और कूड़ा फेंक दिया तथा बेलावेन्द्रन और उसके भाई के लिए घर तक पहुंचना नामुमकिन कर दिया। जब सार्वजनिक पंचायत सड़क से अतिक्रमण हटाने का आदेश दिया गया तो अभियुक्त ने पीड़ितों को धमकी दी और उन्हें जातिवादी गालियां दीं। पीड़ितों को साझा सड़क और सार्वजनिक नल से पानी लेने से रोका गया। अभियुक्त ने 19 फरवरी 2007 को शाम 5.30 बजे शराब पीकर सड़क पर कांटेदार झाड़ियां डालकर बाधा खड़ी कर दी और पीड़ितों को गालियां दीं। पीड़ितों के आपत्ति करने पर अभियुक्त ने उनकी पिटाई की। पीड़ित की एक रिश्तेदार टेरेसा जब पुलिस को बुलाने गई तो अभियुक्त ने उससे धक्का–मुक्की और बदसलूकी की। गणेशन के उकसाने पर 28 मार्च 1987 को 15–20 महिला और पुरुषों ने पीड़ितों को पीटा। बेलावेन्द्रन पर दरांती से हमला किया गया और उसे सिर पर गंभीर चोट आई। एक अन्य व्यक्ति अरुलदॉस की टांग पर भी दरांती से चोट आई। दो घंटे बाद पुलिस गांव में पहुंची। बेलावेन्द्रन और अरुलदॉस को अस्पताल भेजा गया। उनके समुदाय के अन्य सदस्यों सिमिओन, ज्ञानप्रकाशम, सेनगोलमैरी, स्टेला और कनिकामैरी को अस्पताल ले जाने के बहकावे से पुलिस थाने ले जाया गया। एक पीड़ित बूढ़ी बीमार महिला कनिकामैरी को देर रात छोड़ गया जबकि बाकी चार को आरपीसी की

---

58 ह्यूमन राइट्स वाच, हिडन अपार्थिड, कास्ट डिस्क्रिमनेशन अगेंस्ट इंडियाज "अनटचेब्लस" शैडो रिपोर्ट टू दि यूएन कमेटी आन दि एलिमिनेशन आफ रेशियल डिस्क्रिमनेशन। यूआरएल संदर्भ 14.08.07 http://www.hrw.org/reports/2007/india0207/india0207web.pdf

धारा–307 के अंतर्गत हिरासत में में भेज दिया गया। उनका पूरे दिन किसी प्रकार का उपचार नहीं करवाया गया। बेलावेन्द्रन लगभग पूरी तरह अंधा हो गया और अभियुक्तों को नहीं पहचान सका। एक संगठन टीएलएम पीड़ितों के हितों की रक्षा में लगा है। जिन–जिन सरकारी अधिकारियों से सम्पर्क किया गया उनकी ओर से रत्ती भर भी कार्रवाई नहीं कई गई और पीड़ित इस समय गांव के बाहर रह रहे हैं।

यह घटना निम्नलिखित प्रावधानों का उल्लंघन है–

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3 (1) और पीसीआर अधिनियम की धारा–7 (1) (6) और (सी)

उड़ीसा के पुरी जिले का नुआगांव

दलित महिला से जबरन कर्ज के कागजात पर दस्तखत कराना और उसके परिवार पर हमला

यह घटना उस महिला समिति की वजह से उत्पन्न हुई जिसे गांव में बनाया गया था और जिसकी लगभग 100 सदस्य थीं। उच्च जाति के सदस्य समिति में नीची जाति के लोगों को सदस्य नहीं बनाना चाहते थे मगर उन्होंने अनुदान लेने के लिए ऐसा किया। सरकार से फायदा उठाने मात्र के लिए इस संगठन में दलित महिलाओं को शामिल किया गया। उन्हें बैठक में या निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल नहीं होने दिया जाता था। उन्हें उच्च जाति के सदस्यों द्वारा पारित प्रस्तावों पर राजी होने पर मजबूर किया जाता था और प्रश्न करने या प्रस्तावों पर सुझाव देने का मौका नहीं दिया जाता था। इस संगठन के उस निर्णय से इस घटना की शुरुआत हुई जिसमें बैंक से दस महिलाओं के नाम से कर्ज लेने की अनुमति दी गई थी। इनमें दो दलित महिलाएं थीं। पीड़िता उन्हीं में से एक थी। यह कर्ज 1,80,000 रुपये का था और संगठन की सदस्यों में वितरित किया जाना था। उन सभी को अपने हिस्से के अनुरूप कर्ज वापसी करनी थी। समस्या उस समय खड़ी हुई जब पीड़ित महिला ने जोखिम जानते हुए इस प्रस्ताव को मानने से इंकार कर दिया। इससे उच्च जाति के सदस्यों को गुस्सा आ गया, क्योंकि उनका मानना था कि उसकी आपत्ति निराधार है। संगठन ने पीड़ित के परिवार को धमकी देकर उस पर दबाव डालने की कोशिश की। इतना ही नहीं गांव की एक बैठक में आठ घंटे तक पीड़ित के पिता को परेशान किया गया और उससे धक्का–मुक्की की गई। अपने पिता को इस हालत से मुक्त कराने के लिए पीड़ित ने हार मान ली और उसने उच्च जाति का फैसला न मानने के लिए 20,000 रुपये के जुर्माना देने पर सहमति व्यक्त की। निर्धारित समय तक गांव समिति के पास जुर्माना नहीं जमा कर सकने पर पीड़ित की फिर पिटाई की गई और उसे गालियां दी गईं। उसे गांव में नंगा घुमाया गया और उसके परिवार पर हथियारों से वार किए गए जिससे उन्हें गंभीर

चोटें आईं। इस परिवार का सामाजिक बहिष्कार किया गया और उन्हें सार्वजनिक स्थानों पर नहीं जाने दिया गया। बहिष्कार और अपमान दिन–ब–दिन तेज होता गया और आखिरकार उन्हें गांव छोड़ने को मजबूर होना पड़ा। पीड़ित ने पुलिस थाने में शिकायत लिखवाई, जिला कलक्टर से संपर्क किया और राजनीतिक दल के प्रतिनिधियों के पास भी गई। पुलिस की छानबीन के बाद मामला अदालत में भेजा गया। अदालत के सामने 161 बयानों और चिकित्सा रिर्पोटों समेत सभी प्रासंगिक दस्तावेज रखे गये। अदालत ने यह कहते हुए अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया कि मामले की छानबीन डीएसपी स्तर से कम के पुलिस अधिकारी ने की है। न्यायाधीश ने कहा कि कानून की आवश्यकता को देखते हुए तथा मामले की छानबीन पुलिस एएसआई से कराने के कारण एससी/एसटी कानून की धारा–3 के अंतर्गत अपराध साबित नहीं होता है। न्यायाधीश ने यह भी कहा कि गवाहों के बयान में खामियां भी दोषमुक्ति के आधार हैं। न्यायाधीश ने तब भी कोई कार्रवाई नहीं की जब अदालत के अंदर अभियुक्त ने पीड़ितों के खिलाफ अपमानजनक और गालियों की भाषा का इस्तेमाल किया। परिवार का अब भी सामाजिक बहिष्कार जारी है।

आन्ध्र प्रदेश के खम्माम जिले के कोटापल्ली गांव की कोप्पुला वेंकटम्मा

दलित महिला की निर्मम हत्या

स्व. कोप्पुला नागेश्वर राव की 35 साल की पत्नी कोप्पुला वेंकटम्मा अनुसूचित जाति की है। वह खम्माम जिले के चेरला मंडल के कोटापल्ली गांव में रहती है। उसके दो लड़के और एक लड़की है। वह दो एकड़ भूमि पर खेती कर के अपनी आजीविका चलाती है। वह शीरे से बनी देशी शराब बेचा करती थी, जिस कारण उसकी पेडा लक्ष्मय्या के पुत्र गुंटुपल्ली गणपति से घनिष्ठता हो गई जो कि वदरंगी जाति का है और उसी गांव में रहता है। वेंकटम्मा के पति को जब इस संबंध का पता चला तो उसने आत्महत्या कर ली। यह नौ वर्ष पहले की घटना है। वेंकटम्मा के उस व्यक्ति के साथ संबंध जारी रहे। गणपति और उसी गांव की सुजाता के बीच संपर्क होने पर वेंकटम्मा के साथ उसके संबंधों में खटास आई। गणपति से वेंकटम्मा से 20,000 रुपये उधार लिए थे, जो उसने लौटाए नहीं थे। कोप्पुला वेंकटम्मा ने रकम लौटाने और खेती के लिए कुछ जमीन मांगने पर जोर दिया। अभियुक्त गणपति उसकी जान लेना चाहता था और उसने वेंकटम्मा को एक दूसरे अभियुक्त की मदद से खेत में बुलाया। वेंकटम्मा ने खेत में पहुंच कर अपनी रकम लौटाने को कहा तो अभियुक्त ने उसको पीटा। दोनों अभियुक्तों ने मिलकर उसकी गर्दन पर तौलिया डाल कर गला दबा दिया। गुंटुपल्ली गणपति लाश को गोट्टीमुक्काला सीतारामराजू की खाली पड़ी इमारत में ले गया और उसे पत्थरो से ढंक कर भाग गया। कोप्पुला वेंकटम्मा के पिता वीति सीतय्या को 11 फरवरी 2005 को अपनी लड़की की मौत का पता चला। उसे किसी अज्ञात व्यक्ति पर हत्या का शक था। चेरला पुलिस थाने में मामला दर्ज किया गया। यह मामला आइपीसी की धारा–34 और 201 के साथ धारा–302 के अंतर्गत वर्ष 2005 की अपराध संख्या 14 के रूप में दायर किया गया।

पुलिस ने छानबीन के दौरान घटनास्थल जा कर गवाहों के बयान लिए। चिकित्सा अधिकारी ने पोस्टमार्टम में बताया कि फांसी के कारण मौत हुई। दोनों अभियुक्तों को गिरफ्तार कर खम्माम के अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश की अदालत में पेश किया गया। अदालत ने कहा कि गवाहों के मुकरने और अभियोजन पक्ष के सबूत कमजोर होने के कारण अभियुक्त पर शक साबित नहीं किया जा सका। नतीजन पहले अभियुक्त को आइपीसी की धारा–302 के साथ धारा–34 के अंतर्गत दोषी नहीं पाया गया और दोनों अभियुक्तों को बिना किसी वाजिब संदेह के कारण आइपीसी की धारा–201 का दोषी नहीं पाया गया और उन्हें सीआरपीसी की धारा–235(1) के अंतर्गत दोषमुक्त कर दिया गया। पीड़ितों ने अभी उच्च न्यायालय में याचिका दायर नहीं की है।

आन्ध्र प्रदेश के महबूबनगर के चिन्ना अदिराला गांव का कोटा लक्ष्मैया

दलित के जीवन के अधिकार का उल्लंघन

स्व. कोटा रमैया का 25 वर्षीय पुत्र कोटा लक्ष्मैया दलित था और महबूबनगर में जदचेरला मंडल में चिन्ना अदिराला गांव में रहता था। वह गांव में वेंकट रेड्डी के खेत पर काम करता था। कोटा के उच्च जाति की एक लड़की के साथ अंतरंग संबंध हो गए थे। उस लड़की का नाम यरमा था। उसकी शादी बायरामोनी वेंकटैया के साथ तय थी। बायरामोनी को यरमा के संबंध की जानकारी अपने दोस्त चापला वेंकटैया से मिली। उन्होंने लक्ष्मैया को मारने की साजिश रची। 28 मई 2003 को वेंकट रेड्डी का दामाद लक्ष्मैया के पास आया और उससे 1000 रुपये देने को कहा। 23 मई 2003 को पीड़ित एकवइपल्ली के अमरनाथ रेड्डी से पैसे लेने के लिए गांव से गया। अभियुक्त चापला वेंकटैया और बायरामोनी वेंकटैया की काकुनूर में पीड़ित से मुलाकात हुई और उन्होंने एक दुकान से शराब खरीदी। एकवइपल्ली बस स्टॉप पहुंचने तक वे तीनों शराब के नशे में धुत थे। साजिश के तहत दोनों अभियुक्तों ने पीड़ित को खेतों की ओर भगाया और उस पर चाकुओं से हमला किया। उसे कई जगह घायल करने के बाद गद्दम सिरीसेलम के खेत में उसे मार दिया। पहले अभियुक्त चापला वेंकटैया ने पीड़ित के सिर पर बड़ा पत्थर फेंका और उसे मार दिया। कोटा रमैया को 29 मई 2003 को एकवइपल्ली गांव में गद्दम सिरीसेलम के खेत में अपने पुत्र कोटा लक्ष्मैया का शव मिला। उसने शव पर छुरा घोंपने के निशान और नजदीक ही खून से सना पत्थर भी देखा। जदचेरला पुलिस ने आइपीसी की धारा–302 के साथ 34 तथा एससी/एसटी एक्ट पीओटी अधिनियम, 1989 की धारा–3(2)(v) के अंतर्गत 2003 के अपराध संख्या 93 का मामला दर्ज किया।

पुलिस मौके पर पहुंची और शव को पोस्टमॉर्टम के लिए भेजा। चिकित्सा अधिकारी ने पोस्टमॉर्टम में बताया कि महत्वपूर्ण अंगों (फेफड़ों और मस्तिष्क) पर चोट के कारण मौत हुई। अभियुक्त ने पुलिस के सामने अपराध स्वीकार किया। एसडीपीओ ने मामले की छानबीन की और अभियुक्त को न्यायिक हिरासत में भेज दिया। अदालत ने कहा कि कानून में यह मान्य स्थिति है कि संभावनाएं भले ही कितनी मजबूत क्यों न हों और शक कितने ही गंभीर क्यों न हों, इन्हें कभी भी सबूत का दर्जा नहीं मिल सकता। इस मामले में अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए कोई सामग्री प्रस्तुत नहीं की। अतः अभियुक्त को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। ह्यूमन राइट्स वॉच ऑफ आन्ध्र प्रदेश और डीबीएसयू ने मामले पर जोर दिया है और न्याय के लिए संघर्ष में पीड़ित पक्ष की मदद की है।

मराठवाडे, महाराष्ट्र

दलित महिला पर पुलिस हमला

सुनीता काले विधवा है और उसके पांच बच्चे हैं। वह महाराष्ट्र राज्य के एक गांव में रहती है। वह दूर के एक स्थान पर काम करती है और उसने कुछ दिन की छुट्टी ली। उसके बच्चे औरंगाबाद के स्कूल में पढ़ते हैं। उनके घर से कुछ किलोमीटर दूरी पर एक मंदिर है, जहां धार्मिक मेले लगते हैं और देवी देवताओं की फिल्में दिखाई जाती हैं। एक दिन सुनीता अपने बच्चों के साथ वहां फिल्म देखने गई। घर लौटते हुए एक पुलिस वैन ने उनका पीछा किया। उसे रुकने के लिए कहा गया। पुलिस ने थोड़ी देर पूछताछ के बाद उसकी पिटाई की। वह बेहोश हो गई। उसने सबसे छोटे बच्चे को गोदी में उठा रखा था वह भी गिर गया। पुलिस ने उसके कपड़े भी फाड़ दिए और उसके बच्चों को भी बुरी तरह पीटा। उसके बाद सुनीता और उसके बच्चों को जीप में धकेला गया और उन्हें गांव के नजदीक छोड़ दिया गया। उसे धमकी दी गई कि वह इस घटना का जिक्र किसी से न करे वरना उस पर मुकदमा बना कर जेल में डाल दिया जाएगा। अगले दिन जब गांववालों को इस घटना का पता चला तो वे एसपी और डीएम से मिलने गए। गांववासी एफआइआर दर्ज कराना चाहते थे, मगर एसपी ने उन्हें एक दिन इंतजार करने को कहा। सुनीता के बड़े बच्चे को सरकार की एक योजना का फायदा मिलना था। वह तहसील गया और उसने उस दिन की घटना की एफआइआर लिखवाने की मांग की। इस पर उसे गिरफ्तार कर लिया गया और उसके परिवार को उसका अता–पता नहीं मालूम। कैम्पेन फॉर ह्यूमन राइट्स ने इस मामले को उठाया है। संगठन ने अदालत से इस मामले पर कार्रवाई करने को कहा है, क्योंकि पुलिस ने कोई मदद नहीं की।

इससे निम्नलिखित प्रावधान का उल्लंघन होता है –

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–4

(xii) भेदभाव की अन्य प्रथाएं और हिंसा

भंडारा जिला, ताह मोहादी, महाराष्ट्र

दलित माता और बेटी का नंगा घुमाना, सामूहिक बलात्कार और हत्या

सिद्धार्थ गजभिए एक दलित है, जिसे मानदेय पर पुलिस सहायक रखा गया है। उसके कांग्रेस पार्टी में राजनीतिक संपर्क हैं। इससे उसे गरीब परिवारों में उच्च जाति से डर को सामने लाने का मौका मिला। यह भय अक्सर दलित परिवारों पर मंडराता रहता है। ऐसा ही एक परिवार है 45 साल की सुरेखा भोटमांगे का, जो खेरलांजी गांव में अपने पति भैयालाल के साथ अपने पांच एकड़ के खेत पर धान और कपास की खेती करती थी। वर्ष 1996 में उनके खेत से दो एकड़ भूमि सड़क बनाने के लिए ले ली गई, ताकि उच्च जाति के पोवार और कोलार समुदाय के पड़ौसी किसान अपने ट्रैक्टर अन्य गांवों में ले जा सकें। अब ये लोग सिंचाई के पानी के लिए और जमीन चाहते थे। 3 सितम्बर 2006 को भीड़ में आए लोगों ने गजभिए की पिटाई की। इसका कथित कारण था उसका सुरेखा भोटमांगे के साथ कथित अवैध संबंध। गजभिए ने खेरलांजी गांव के 15 लोगों के खिलाफ पुलिस में शिकायत दर्ज कराई। इनमें से 12 को गिरफ्तार किया गया। सुरेखा ने एफआइआर पर गवाहों में से एक के रूप में हस्ताक्षर किए और शिनाख्त परेड में 12 लोगों की पहचान भी की। 26 दिन बाद 29 सितम्बर को जब 12 लोगों को जमानत पर छोड़ा गया तो उन्हें उनके रिश्तेदार ट्रेक्टर से ले गए। उन्होंने शराब पी और भोटमांगे की झोपड़ी पर गए और पूरे परिवार को खत्म करने की धमकी दी। उसके बाद उन्होंने गजभिए और इंजीनयरी कर रहे उसके भाई राजन की तलाश शुरू की। इन दोनों को नहीं ढूंढ पाने के बाद शराब पिए कुछ लोग भोटमांगे की झोपड़ी पर पहुंचे और उसका दरवाजा तोड़ दिया। तथ्यों का पता लगाने आई समिति को रिश्तेदारों द्वारा दिए गए विवरण के अनुसार, निर्मम तरीके से भैयालाल की 45 साल की पत्नी सुरेखा, उसकी 18 साल की लड़की प्रियंका तथा 23 साल के बेटे रोशन और 21 साल के बेटे सुधीर को पहले नंगा किया गया, झोपड़ी से खींच कर 500 मीटर दूर चौक ले जा कर मौत के घाट उतार दिया। सुरेखा और उनकी बेटी प्रियंका को अपमानित किया गया, बेदर्दी से पीटा गया और एक घंटे तक खुले आम उनसे बलात्कार किया गया और बाद में उन्हें मार दिया गया। हमलावरों ने उनके गुप्त अंगों में डंडे डाले। दोनों बेटों को घूंसे मारे गए और कई बार छुरे से वार किया। हमलावरों ने उनके गुप्त अंगों को भी कुचला, उनके चेहरे विकृत कर दिए गए और उन्हें हवा में उछाला गया और फिर दोनों को मार दिया गया। अंधेरा गहरा हो गया था और दलित परिवार की चार लाशें गांव के चौक में बिखरी पड़ी थीं और हत्यारे अब भी उन पर लात और घूसे मार रहे थे। यह कहर अभी जारी था। कुछ क्रुद्ध लोगों ने दो महिलाओं के क्षत–विक्षप्त लाशों से बलात्कार किया। ये आरोप सुरेखा के भतीजे राहतरापाल नरनावारे ने लगाए। आश्चर्य की बात यह है कि पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट के अनुसार सुरेखा और प्रियंका

से बलात्कार नहीं हुआ था। दलितों का आरोप है कि रिपोर्ट में गड़बड़ी की गई। अगले दिन जब भैयालाल भोटमांगे एफआइआर लिखवाने थाने गया तो उसकी बातों पर एसएचओ सिद्धेश्वर भर्ने ने विश्वास नहीं किया। पुलिस गश्ती दल ने जब क्षत–विक्षप्त शवों के मिलने की सूचना वायरलेस पर देनी शुरू की तो अगले दिन उसने एफआइआर दर्ज की। कांस्टेबल मेशराम और एसएचओ भर्ने दोनों को निलम्बित कर दिया गया है। पीड़ित को कोई मुआवजा नहीं मिला है, मुकदमा कोर्ट में लंबित है। इस निर्मम घटना में 44 लोग शामिल हैं। बहुत कम लोग गिरफ्तार किए गए हैं और गवाहों को धमकियां दी जा रही हैं। यह घटना देश में जातिगत पूर्वाग्रह का क्रूर और स्पष्ट उदाहरण है। इस घटना से राजनीतिक फायदा उठाने के बावजूद कोई भी राजनीतिक दल इस घटना के एकमात्र जीवित सदस्य भैयालाल की मदद को आगे नहीं आया।

इस घटना से निम्नलिखित प्रावधानों का घोर उल्लंघन होता है–

- आईपीसी की धारा–302
- आईपीसी की धारा–376
- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3

हरियाणा के जीन्द जिले का दहोला गांव

पीड़ित की कहानी

इस गांव में उच्च जाति के जाट बहुसंख्यक हैं और दलित अल्पसंख्यक हैं। गांव के सभी दलित, दो परिवारों को छोड़कर, भूमिहीन हैं और दिहाड़ी मजदूरी करते हैं। ये लोग जाटों के लिए दैनिक मजदूरी के अलावा रिक्शा चलाने, कूड़ा बीनने का काम करते हुए आजीविका कमाते हैं। 3 सितम्बर 2006 को एक दलित मोहर सिंह एक विवादित गली के पीछे पेशाब कर रहा था। इसे देख कर एक जाट प्रताप सिंह ने मोहर को गालियां देनी शुरू कर दीं। इस कारण सुधारिया दलितों और प्रताप, अनुराग, श्रीमती चन्द्र और अन्य लोहारिया जाटों के बीच कहा–सुनी और झड़प हुई। कुछ दलित घायल हुए और इस कारण सुधारिया दलितों ने विवादित गली में प्रताप द्वारा किए जा रहे निर्माण कार्य में बाधा उत्पन्न की। उस रात चार दलितों ने सरपंच से समस्या हल करने के लिए सम्पर्क किया। कई बार सरपंच के पास जाने के बाद वह 14 सितम्बर 2006 को गांव आया, लेकिन वह कोई हल नहीं निकाल पाया। ये चारों दलित अन्य लोगों के साथ पुलिस थाने भी गए, जहां उन्हें बताया गया कि इस घटना की जांच कराई जाएगी और कोई शिकायत दर्ज नहीं की गई। वे लोग शाम को डीसी के पास गए, वहां भी उन्हें आश्वासन मिला। उसी दिन दो अभियुक्तों ने दो अन्य लोगों के साथ मिलकर पुलिस में 12 दलितों के खिलाफ शिकायत दर्ज कराई। अगले दिन 12 दलित डीसी के पास गए और उसी दिन एसएचओ ने रिपोर्ट जारी की कि दलितों के पास उस जमीन का कब्जा नहीं था और उन्होंने उस जमीन पर प्रताप के निर्माण कार्य को गैरकानूनी ढंग से तोड़ा। मामला अदालत में गया और प्रताप ने 29 मई 2001 की तारीख वाले कागजात पेश किए, जिससे उसके मालिकाने का सबूत मिलता था। दलितों ने भी कागजात पेश किए जिनके अनुसार

यह जायदाद 20 अप्रैल 1957 को कैथपट्टी जाटों को दी गई थी, जिन्होंने 19 फरवरी 1981 को उसे दलितों को दान में दे दी थी। दोनों समुदायों के बीच तनाव की आशंका देखते हुए अदालत ने 13 सितम्बर 2006 को दिए आदेश में नायब तहसीलदार को रिसीवर नियुक्त कर दिया। प्रताप के उस आदेश का उल्लंघन करने की कोशिश की, लेकिन उस मामले में स्थगन आदेश जारी हो गया और मामला अब अदालत में लम्बित है। प्रताप और उसके परिवार द्वारा दलितों को दी गई धमकियों के कारण मामला बिगड़ गया है। उन्होंने 19 अक्तूबर 2006 को दलितों से कहा कि खून की नदियां बहेंगी। अपनी जान के खतरे को देखते हुए 17 दलित परिवार गांव छोड़ कर डीसी के निवास–कार्यालय के बाहर आ कर धरने पर बैठ गए। सरपंच तीन बार दलितों से मिलने आया और विवादित जायदाद को बांटने और बीच में दीवार खड़ी करने पर राजी हो गया, मगर यह समझौता लागू नहीं किया जा सका। दलित अब भी धरनास्थल पर हैं और उनके पास पीने के पानी तक की सुविधा नहीं है। उनका दावा है कि उन्होंने खाने–पीने की जरूरत पूरी करने के लिए 27,000 रुपये (इसमें से 3 प्रतिशत दर से 17,500 रुपये का ब्याज शामिल है) का क़र्ज लिया है। वे काम नहीं कर रहे हैं और कर्ज, दान तथा दूसरे लोगों की सहायता से काम चला रहे हैं। वे गांव जाने से डरते हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि जाटों से लड़ाई का वे लोग बदला लेंगे। पुलिस ने उन्हें सुरक्षित लौटने का कोई आश्वासन नहीं दिया है। इस घटना का हल निकालने के लिए भी कुछ नहीं किया गया। एनसीडीएचआर के एक दल ने 22 जनवरी 2007 को गांव जा कर तथ्यों का पता लगाया।

यह पीड़ितों के साथ निम्नलिखित प्रावधान के तहत भेदभाव की घटना है –

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3 (1) (v)

बिहार के भोजपुर जिले के नट समुदाय के लोगों की हत्या

भीड़ ने चार दलितों की मार–मार कर की हत्या

जिन चार युवकों की हत्या की गई वे नट समुदाय के दलित थे। उनमें से तीन खालसपुर गांव के और एक रामपुर गांव में रहता था। गांव में नट समुदाय को मूलभूत सुविधाओं से वंचित रखा जाता है। इनमें से जलावन की लकड़ी बेचते हैं और भैंसे पालते हैं या अन्य काम करते हैं। गांववालों ने कथित रूप से पीट–पीट कर बंगाली नट के 16 साल के पुत्र पप्पू नट, पप्पू नट के पुत्र पप्पू नट, भदई नट के 17 साल के संतोष नट और आरा के लालन नट के 17 साल के पुत्र दीपक नट की हत्या कर दी। उनकी मां की गवाही के अनुसार ये चारों युवक 6 अगस्त 2006 को भैंसों के व्यापार के लिए बाजार जा रहे थे। उनके पास नकद दस हजार रुपये थे। उनपर एक दिन पहले कृष्णा रजत की भैंस चुराने का आरोप लगाया गया था। यादव जाति के कुछ लोग श्याम रजत, कमलेश, अनिल यादव, सुनील यादव, इतवारू यादव, सुशील यादव, भोला

यादव तथा विमल पांडे उन्हें एक तरफ ले गए और उनसे रकम छीन ली। उसके बाद उन्होंने उनका पीछा किया और उन्हें चोर–चोर कहने लगे। उन्हें बलबतरा गांव के पास पकड़ लिया गया और वहां एक बड़ी भीड़ ने मिलकर उनकी हत्या कर दी। कहा जाता है कि पुलिस भी उस समय मौके पर थी। पुलिस का भेदभावपूर्ण रवैया उसकी कथनी से स्पष्ट होता है "क्या देख रहे हो, मारो, चारों चोरों को मारो।" चारों को गांववासियों द्वारा मार दिए जाने के बाद पुलिस शवों को पोस्टमॉर्टम के लिए ले गई। पुलिस ने अपराध रोकने के लिए कुछ नहीं किया। यह आरोप है कि महेन्द्र राम के पुत्र राजेश रजक ने इसकी शुरुआत की। इस घटना के पीछे दो कारण हैं। पहला यह कि लालबाबू यादव, कामेश्वर यादव और नुनहक यादव ने बीरेन्द्र नट की रिश्ते की साली और सत्येन्द्र नट की पत्नी का बलात्कार करने की कोशिश की थी। बडकी सांडिया और पीड़ित परिवार ने हमलावरों के खिलाफ मामला दर्ज कराया, जो अदालत में है। दूसरा कारण यह था कि हमलावर पीड़ितों की जमीन पर कब्जा कर उन्हें गांव से बेदखल करना चाहते थे। पप्पू नट के पिता बाबूलाल नट की इसी तनाव में मृत्यु हो गई। इसी अभियुक्त ने दो माह बाद पीड़ित के घर और पशुओं को जला दिया। मारे गए परिवारों के बचे हुए सदस्यों का सामाजिक बहिष्कार किया गया। मारे गए पप्पू की माता चन्ना देवी बेघर है। उसने राज्य सरकार के अधिकारियों को कई पत्र लिखे हैं। उसे मदद और साथ देने के लिए अब कोई सामने नहीं आया है। मुख्यमंत्री नीतीश कुमार, पूर्ववर्ती मुख्यमंत्री राबड़ी देवी और लालू यादव ने भी कोई जवाब नहीं दिया। राम विलास पासवान ने भरोसा दिया था कि उसे पांच लाख रुपये का मुआवजा और अन्य सुविधाएं दी जाएंगी, मगर अभी तक कुछ नहीं हुआ और न ही अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया है। राज्य के मुख्य सचिव और डीजीपी के हस्तक्षेप से राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग से मामले की विस्तृत जांच का अनुरोध किया गया है।

यह घटना निम्नलिखित का उल्लंघन होता है –

- आईपीसी की धारा–302
- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3(1)(x)

उत्तर प्रदेश के दासनीपुर गांव की दलित आबादी

अनेक अत्याचार

उच्च जाति के सदस्यों ने नृत्य प्रतियोगिता का आयोजन किया। दासनीपुर गांव के कुछ लड़कों ने इस में भाग लेने की तैयारी की। इन लड़कों के शामिल होने की सूचना मिलने पर उच्च जाति के आयोजकों ने उनके प्रतियोगिता स्थल पर पहुंचते ही उन्हें शामिल करने से मना कर दिया। इतना ही नहीं उन्हें भद्दी गालियां दी गईं और बुरी तरह पीटा गया। लड़के किसी तरह भाग निकले। उच्च जाति के लोगों ने उन लड़कों के गांव पर ईंटों और लाठियों से हमला कर दिया। काफी हिंसा हुई और छोटे बच्चों को भी नहीं छोड़ा गया। उच्च

जाति के हमलावरों ने जायदाद को नुकसान पहुंचाना भी शुरू कर दिया। एक हमलावर ने शीशा तोड़ा जिससे एक लड़की घायल हो गई। कई गांववालों पर हमला किया गया। एक पीड़ित का नाम सूरज था, जब उसका चाचा उसे बचाने आया तो उसकी जमकर पिटाई की गई जिससे उसके हाथ–पैर में काफी चोट आई। सूरज के पिता शंकर की भी पिटाई की गई। इसी तरह सूरज की माता को भी पीटा गया। पुलिस को घटना की जानकारी दी गई। पुलिस लड़ाई खत्म होने पर पहुंची। पुलिस ने कहा कि गांव के दलितों ने अपने आप पत्थर, ईंटें, शीशे और लाठियां बिखेरे हैं। कोई एफआइआर दर्ज नहीं की गई क्योंकि दलितों ने सोचा कि रिपोर्ट दायर करने से ज्यादा जरूरी घायलों का उपचार है। पंडित दीन दयाल अस्पताल पहुंचने पर डॉक्टर ने सूरज से अपने घायल चाचा को अपने कमरे में लाने को कहा। डॉक्टर ने उपचार करने से पहले 700 रुपये मांगे। सूरज ने डॉक्टर को बताया कि उसके पास रुपये नहीं हैं। यह सुनते ही डॉक्टर ने मरीज को बाहर फेंक दिया। सूरज को किसी ने बताया कि राशन कार्ड दिखाने पर मुफ्त इलाज होता है। लेकिन एक्सरे करने के लिए डॉक्टर ने 250 रुपये देने की बात कही। सूरज के पास उस समय राशन कार्ड नहीं था तो उसने 250 रुपये दे दिए। बाद में जब उसके पास राशन कार्ड आ गया तो उसने डाक्टर से रकम वापस मांगी। डॉक्टर ने इसके लिए मना कर दिया और कहा कि अब यह संभव नहीं होगा, क्योंकि बिल में इसे दर्ज कर लिया गया है। पट्टी कराते हुए भी सूरज को नर्स को और रुपये देने पड़े। टूटी हड्डी पर प्लास्टर लगाने में कई बहाने बना कर देरी की गई, जबकि यह काम एक सप्ताह के भीतर किया जाना था। पीड़ित को दूसरी जगह पर भुगतान करके उपचार कराना पड़ा। चोट लगने के 15 दिन बाद प्लास्टर किया गया। उच्च जाति के सदस्यों ने जमानत पर रिहा होने के बाद दलितों पर आरोप लगाए। उन्होंने शिकायतें कीं, लेकिन पुलिस ने कोई सुनवाई नहीं की। गांव की दलित आबादी को हर रोज परेशानी का सामना करना पड़ता है। उनके पास पानी, बिजली की जरूरी सुविधा भी नहीं है।

यह निम्नलिखित का स्पष्ट उल्लंघन है –

अनुजाति/अनुजनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3 (1) (x) और धारा–4

तमिलनाडु के नागपट्टनम जिले के मनालमेडु गांव का शंकर भूपति

पुलिस की फर्जी मुठभेड़ में दलित की मृत्यु

आदि द्रविड़ार परयार समुदाय का दलित शंकर भूपति अपने माता–पिता तथा छोटी बहन के साथ तमिलनाडु के नागपट्टनम जिले के मनालमेडु गांव में रहता है। वह कुछ अवैध गतिविधियों में लिप्त था। इन कार्यों में उसके भागीदार इसी गांव के उच्च जाति के लोग थे। उनमें से एक पंचायत प्रमुख अंजाप्पन था। शंकर का जीवन सुधारने के लिए शंकर के माता–पिता ने उसे लॉरी ड्राइवर का काम करने के लिए सेलम भेजा। इससे अंजाप्पन को गुस्सा आ गया और उसने शंकर के पिता और पत्नी को जातिगत आधार पर गालियां दीं। शंकर को जब इसका पता चला तो उसने लौट कर अंजाप्पन

की हत्या कर दी। इससे दोनों गुटों के बीच लड़ाई शुरू हो गई और शंकर ने अपनी सुरक्षा के लिए अंजाप्पन के एक साथी को मार दिया। यह आरोप है कि डीएसपी मूर्ति ने उन्हें समाप्त करने में शंकर की मदद मांगी थी।

उसे 1998 में गिरफ्तार किया गया था और तब से अपनी मृत्यु तक वह विभिन्न जेलों में रहा था। इस बीच स्थानीय इंस्पेक्टर और डीएसपी ने यह तय किया कि उसे फर्जी मुठभेड़ में मारा जाएगा। इसके लिए अंजाप्पन के साथियों ने बड़ी रकम भी दी थी। इस बारे में भूपति की माता को चेतावनी के तौर पर बताया गया कि अदालतों में धक्के खाने का कोई नतीजा नहीं निकलेगा। उसने एक एनजीओ पीपुल्स वॉच की मदद ली। इस संस्था ने मामले को उठाया और घटना की पुष्टि के लिए 30 अक्तूबर 2006 को जेल में शंकर से भी मुलाकात की। अगले दिन आइजी पुलिस और कई अन्य आयोगों को शिकायत भेजी गई। राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग, दिल्ली ने कार्रवाई की। आयोग की सलाह पर शंकर ने 21 नवंबर 2006 को कीरानूर की अदालत में बयान दिया कि हिरासत में उसका जीवन सुरक्षित नहीं है और पुलिस ने उसे फर्जी मुठभेड़ में मारने की योजना बनाई है। भूपति की माता को एक खास स्रोत से पता चला कि बयान के बावजूद वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों ने यह तय कर लिया था कि शंकर को मारा जाना है। इसलिए उसने मामले का विवरण देते हुए मद्रास उच्च न्यायालय में रिट याचिका दायर की। उस समय उसे एक झूठे मामले में फंसाया गया, ताकि उसे हिरासत में लिया जा सके। उसके पति मनियन ने उच्चतम न्यायालय में दस्तक दी। इस याचिका पर 5 दिसम्बर 2006 को सुनवाई निश्चित हुई। अपने पुत्र को बचाने की परिवार की कोशिशों में बाधाएं आईं, क्योंकि पुलिस अधिकारियों ने उन्हें धमकी दी और उन्हें उनके गांव से बाहर नहीं जाने दिया गया। इन कोशिशों में उस समय कामयाबी मिली जब 5 फरवरी 2007 को कांतरवाकोट्टई मेन रोड पर शंकर की हत्या कर दी गई। फर्जी मुठभेड़ के गवाह भी मौजूद है जिन्होंने कहा कि उन्होंने शंकर को बांधे जाते हुए देखा, शंकर को गोली मारने के बाद पुलिस उसे नजदीकी अस्पताल ले गयी जहां उसे मृत घोषित कर दिया गया। वर्तमान में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग इस मामले पर पीपुल्स वॉच के साथ मिल कर नए सिरे से कार्रवाई कर रहा है।

यह निम्नलिखित का स्पष्ट उल्लंघन है –

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3 (1) और (2) और धारा–4

मध्यप्रदेश के सागर जिले के धनबिल्ला गांव का फूलबंद अहीरवार

दलित के दोनों कान काटे और बाईं जांघ की हड्डी तोड़ी

पैंतालीस साल का फूल चन्द अहीरवार सागर जिले में धनबिल्ला पुलिस थाने के अंतर्गत बांदा तहसील की शाहगढ़ पंचायत के छनबिल्ला गांव की दलित बस्ती में रहता है। वह चमार जाति का है। इस गांव में दलितों के लगभग 100 और यादव जाति के लगभग 400 परिवार हैं। सभी चमार

भूमिहीन हैं। कुछ दलितों ने मिलकर मध्यप्रदेश सिंचाई विभाग के अंतर्गत बीला बांध के निकट खेती के लिए कुछ भूमि किराए पर ली। दबदबे वाली गांव की यादव जाति के पास 50 से 100 एकड़ भूमि है और वे राजनीतिक तौर पर असरदार भी हैं। दलितों को अपनी आजीविका के लिए उन पर निर्भर रहना पड़ता है। 20 दिसम्बर 2006 को शाम को लगभग 6 बजे भूपत यादव और पंचायत सचिव नाथू राम गौड़ नौकरी का झांसा देकर फूलचंद को पंचायत भवन में ले गए और उसे दो से तीन घंटे तक बैठाए रखा। बाद में वे उसे बस स्टॉप पर एक दुकान के पीछे ले गए, जहां अभियुक्त श्रीराम यादव उनका इंतजार कर रहा था। उसने पीड़ित को जातिवादी गालियां दीं और भूपत यादव से उसके दोनों कान पकड़ने और नाथूराम गौड़ से उसकी टांगें पकड़ने को कहा। उसने एक ब्लेड निकाला और उसके दोनों कान काट दिए। फूलचंद दर्द से चिल्लाया। उसे मौन करने के लिए उन्होंने उसे गिरा दिया और दुकान की छत से एक लाठी निकाल कर उसकी बाईं टांग पर तब तक मारी जब तक उसकी जांघ की हड्डी टूट नहीं गई। पीड़ित अचेत होकर गिर गया और उन्होंने लाठी से उसके सिर पर वार किया। उसे अचेत पाकर अभियुक्त उसे सड़क पर ही छोड़कर भाग गए। इसी गांव के संजय विश्वकर्मा ने घर लौटते हुए रात 10 बजे फूलचंद को देखा और उसके परिवार को सूचित किया। शीघ्र ही उसकी पत्नी पान बाई, पुत्र पप्पू अहीरवार और कुछ अन्य लोग मौके पर पहुंचे। उसी रात पीड़ित का पुत्र पप्पू अहीरवार छनबिल्ला पुलिस थाने शिकायत लिखवाने पहुंचा लेकिन एसएचओ एसबीएस चौहान ने खाली कागज पर उसके दस्तखत करवा कर उसे वापिस भेज दिया। 21 दिसम्बर 2006 को फूलचंद को होश आया और उसे पूरी घटना याद आई। उसके परिवार के सदस्य और अन्य दलित सुबह श्रीराम यादव, भूपत यादव और नाथूराम गौड़ के खिलाफ मामला दर्ज कराने के लिए उसे थाने ले गए। पुलिस ने उन्हें कहा कि वे फौरन फूलचंद को जिला अस्पताल ले जाएं। पुलिस ने हमलावरों के साथ मिलीभगत से 20 दिसम्बर 2006 को पीड़ित के खिलाफ आइपीसी की धारा–279 (सार्वजनिक मार्ग पर लापरवाही से तेज वाहन चलाने) और धारा–337 (घायल करके जीवन को जोखिम में डालने या अन्य की व्यक्तिगत सुरक्षा) के अंतर्गत 75/06 संख्या का मामला दर्ज किया। पुलिस ने आठ दिन बाद पीड़ित का बयान दर्ज किया। इस प्रकरण को हिन्दी दैनिक जागरण ने प्रकाशित किया।

इस घटना से अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3(1) का घोर उल्लंघन हुआ है।

राजस्थान के सीकर जिले के पीठमपुर गांव का दलित समुदाय

उच्च जाति के सदस्यों ने दलित बस्ती में गंदा पानी भरा

पीठमपुर गांव, राजस्थान में सीकर जिले के नीम का थाना तहसील में है। यह राज्य की राजधानी जयपुर से 80 किमी दूर है। इस गांव में उच्च जाति के लोग बहुसंख्यक हैं। ये लोग पहाड़ियों की ऊंचाई पर रहते हैं, जबकि दलित उनके ठीक सामने नीचे घाटी में रहते हैं। उच्च जाति के

सत्यनारायण शर्मा ने ऊंचाई के इलाके से घाटी में बहने वाले नाली के पानी को रोकने के लिए दीवार बनाई। इसके फलस्वरूप गंदा पानी दलितों के घरों के इर्द–गिर्द जमा हो गया। सत्यनारायण शर्मा ने गांव पंचायत और पुलिस अधिकारियों से मिलकर नालियों की निकासी दलितों के घरों की ओर कर दी। पंचायत और पुलिस अधिकारियों में ज्यादातर उच्च जाति के हैं। दलितों के घरों के इर्द–गिर्द स्थाई तौर पर गंदा पानी रुका रहने से वे कई घातक बीमारियों के शिकार हो गए। गांव पंचायत और अन्य स्थानीय अधिकारियों ने उच्च अधिकारियों को तथ्यों से परे गलत रिपोर्टें भेजी। उच्च अधिकारियों और विभिन्न आयोगों को भी गलत जानकारी दी गयीं कि दलित परिवारों को राहत सुनिश्चित करने के लिए समुचित कार्रवाई कर ली गई है।

सुरक्षित पर्यावरण तक समुचित पहुंच से जानबूझ कर वंचित रखना निम्नलिखित का उल्लंघन है –

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम की धारा–3(1) (ii) (xv) और (v) तथा 4 और आईपीसी की धारा–207

तमिलनाडु के तिरुनेलवेल्ली जिले के पल्लीनुर गांव का दलित समुदाय

दलित परिवारों के साथ तरह–तरह के भेदभाव

पल्लीनुर गांव में तीन परिवार हैं जो धोबी समुदाय के हैं। वे मूल रूप से विल्लुपुरम जिले के कट्टासीतामुर गांव के हैं। इन क्षेत्रों के प्रभावशाली उच्च जाति के परयार इन परिवारों को सुरक्षा और गांव में धोबी की जरूरत के बारे में भरोसा दिला कर पल्लीनुर गांव में लाए थे। उन्होंने इन परिवारों को रहने के लिए घर भी दिया। इनमें से एक चिन्नामन के पति की मृत्यु हो गई और उन्हें अन्तिम संस्कार करने के लिए अपने गांव जाना पड़ा। इस दुख को भूल जाने के लिए वे दो साल तक कट्टासीतामुर में रहे। जब वे पल्लीनुर गांव लौटे तो उन्होंने देखा कि परयार समुदाय ने उनका घर और सारा सामान बेच दिया है। उनके लिए कुछ नहीं बचा था। जमीन का प्लॉट भी बेच दिया गया था। यह पूरा घटनाक्रम गांव के दो गुटों की दुश्मनी से उत्पन्न हुआ। दोनों गुट इन धोबियों को अपने–अपने गुट के लिए बंधक धोबी बनाना चाहते थे। जब एक गुट उन्हें सेवा के लिए लाया तो दूसरे गुट ने उनका सामान बेचने की वजह उनके गांव में न होना बताया हालांकि सामान दोनों गुटों ने मिलकर उपलब्ध कराया था। तभी से धोबी बेघर हैं। 70 साल की चिन्नामन को 35 परिवारों का काम करने को मजबूर किया जाता है और उसे कोई दूसरा काम करने के लिए गांव से बाहर भी जाने नहीं दिया जाता है। उसे मेहनताना भी बहुत कम दिया जाता है। आर्थिक तंगी झेल रही चिन्नामन ने गांव के एक निवासी से एक हजार रुपये कर्ज लिया। उस आदमी ने उसे परेशान करना शुरू कर

दिया तथा चिन्नामन से तीन बार इतनी ही रकम वापिस ले ली। चिन्नामन के पति को इसलिए बुरी तरह पीटा गया था क्योंकि उसने प्रतिबंधित जातिगत नियम नहीं माने थे। आमतौर पर नीची जाति का आदमी अपनी धोती की गांठ पीछे नहीं बांध सकता है। इसे खुला रखना होता है। उसे इस रिवाज का पालन नहीं करने के लिए उच्च जाति के शराब पिये एक आदमी ने पीटा था। इस घटना के बाद स्थानीय पंचायत बुलाई गई और उसे वही रकम फिर लौटाने के लिए कहा गया जो पहले ही तीन बार लौटाई जा चुकी थी। उच्च जाति की महिलाओं ने सुझाव दिया कि वे अपना भोजन नहीं पकाएं बल्कि भीख मांगें। वे साफ कपड़े नहीं पहनें। इतना ही नहीं उन्हें गांव तक सीमित कर दिया गया और उन्हें बाहर नहीं जाने दिया जाता था। एक कार्यकर्ता ने शिकायत दर्ज कराई और पंचायत को चेतावनी देने गांव में पुलिस आई। इस समय वे दूसरे गांव में रहते हैं और उनके पास न तो अपनी जमीन है और न ही अपने मकान। सरकार के स्तर पर इस वर्ग को पुदरीवानाल समुदाय अधिसूचित किया गया है, लेकिन इसका प्रमाणपत्र केवल त्रिचूर जिले से आगे राज्य के दक्षिणी भागों में जारी किया जाता है। उत्तरी तमिलनाडु में इन्हें आदि द्रविड़ार अधिसूचित किया गया है। इस समय सरकार के पास ऐसे अलग–थलग माने जा रहे समुदाय के आंकड़े नहीं हैं। एक ही जैसे समुदाय के दो प्रमाणित जाति स्तर हैं। उन्हें दोगुना भेदभाव का सामना करना पड़ता है, क्योंकि वे ईसाई हैं। इस समुदाय को पिछड़ी वर्ग की जाति घोषित किया गया है। इस प्रकार ये लोग अनुसूचित जाति के लाभ हासिल करने से वंचित हो गए हैं। दक्षिणी जिलों में भी निचली जाति के लोगों को प्रमाणपत्र हासिल करने के लिए मशक्कत करनी पड़ती है। सरकार उन्हें अनुसूचित जाति में नहीं मानती है, इसलिए वे अनुसूचित जाति अधिनियम के अंतर्गत कानूनी राहत नहीं ले पाते हैं।

दिल्ली – दलित ईसाइयों के साथ भेदभाव के बारे में दलित कार्यकर्ता के अनुभव

दलित ईसाइयों की दुर्दशा को लोग बहुत कम जानते हैं और इसकी कभी–कभी चर्चा होती है। यह समुदाय इतना कमजोर और अन्य समुदायों के मुकाबले बहुत कम तादाद में है कि अधिकतर मामलों में उनकी सामाजिक न्याय तक पहुंच नहीं है। इस समुदाय पर होने वाली ज्यादतियां इन लोगों के दिलो–दिमाग में बस गई हैं। सामाजिक कार्यकर्ता फ्रैंकलिन जो प्रशिक्षित इंजीनियर और वकील भी हैं, अल्पसंख्यक मुद्दों को लेकर काफी चिंतित हैं। उन्होंने ट्राइब्यूनल को अपने अनुभवों और कार्यकर्ता के रूप में सक्रिय होने के नाते अपने निष्कर्षों से अवगत कराया। फ्रैंकलिन का बयान ऐसा विवरण है जिसने देश में दलित ईसाइयों की दुर्दशा उजागर की है जो कि निम्नानुसार है। उनके अनुसार इस देश में मीडिया काफी समस्याएं पैदा करता है। दलित ईसाइयों का देशभर में खून बह रहा है, मगर मीडिया कभी इसे रिपोर्ट नहीं

करता। दलितों को भी समझ नहीं आता कि उनका शोषण हो रहा है। उन्हें जब तक महसूस नहीं कराया जाएगा कि वे गुलाम हैं वे विद्रोही नहीं बनेंगे। "मैं शुरू में अपने साथ हुए भेदभाव का विवरण देता हूं। मैं प्रशिक्षित इंजीनियर और कानून में भी प्रशिक्षित हूं। मैंने गरीब अल्पसंख्यकों के बीच काम करने का निश्चय किया और इस काम में सात वर्ष तक लगा रहा। एक बार जब मैं अपने दादा के घर गया तो उस समय मूसलधार वर्षा हो रही थी। वर्षा से बचने के लिए मैं किराने की दुकान में घुस गया। यह दुकान एक चेट्टियार की थी। मैंने कुछ पूछने के लिए उसे छू लिया। उसने कहा कि तुम तो दलित हो, तुम्हें ऐसा करने की कैसे हिम्मत आई। मैंने आपत्ति की तो उसने कुछ शरारती लोगों को बुला कर मुझे धमकी दी। उसने अपनी चप्पल उतार कर मुझे मारने की कोशिश की। पिछले वर्षों में मैं जहां भी गया, मुझे दलित ईसाइयों पर कहर के किस्से सुनाई दिए। मेरे भीतर पहले ही गुस्सा भरा हुआ था, इसलिए उस समय मैं बर्दाश्त नहीं कर सका। मैंने फौरन उसे मारा। मैं मानता हूं कि मैंने अपने आत्म–सम्मान की रक्षा की। मैं न्यायालय में आस्था नहीं रखता पर अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम में भी मामला नहीं डाल सकता। दलित ईसाई इस वजह से मनोवैज्ञानिक तौर से भेदभाव की स्थिति में हैं। इससे वे कानून या न्यायपालिका के दरवाजे पर दस्तक नहीं दे सकते। मेरे पैतृक स्थान के निकट एक बस्ती–गोंडेकुडी है। यहां दलित समुदाय बहुत अजीब हालत में रहता है। बहुसंख्यक समुदाय वनियार है जो कि ईसाई है। अंत्येष्टि के दिन की परम्परा के अनुसार पादरी पहले दलितों की कब्र को पवित्र करता है और बाद में उच्च जाति की। हाल में जब उच्च जाति के सदस्य को पादरी बनाया गया तो उसने उल्टा क्रम शुरू कर दिया। दलित ईसाइयों ने मुझे इसकी जानकारी दी, मगर मैंने उसको अनसुना कर दिया। इस बात को लेकर दलितों की उच्च जाति के सदस्य से कहासुनी हो गई। लेकिन अंत में पादरी ने पहले उच्च जाति की कब्रो को पवित्र किया। इस प्रकार यह जातिगत व्यवस्था अब सभी गिरिजाघरों में जारी है।

जाति प्रथा और इसके अंतर्गत जारी शोषण के कई तरीके हैं। एक बस्ती में 10 दलित ईसाइयों पर हमला किया गया और उन्हें अस्पताल में दाखिल कराना पड़ा। चर्च ने अन्य दलित ईसाइयों को समझाया और उच्च जाति के सदस्यों के खिलाफ मुकदमा वापिस ले लिया गया। धोबी समुदाय के ईसाइयों के साथ शोषण और भेदभाव तो और भी ज्यादा है। गिरिजाघरों में बिशप, पादरी और अन्य पदों पर ज्यादातर उच्च जाति के ईसाई कायम हैं। 160 बिशप में से केवल नौ दलित समुदाय के हैं। जब कोई दलित ऊंचे पद पर पहुंच जाता है तो वह विशेष वर्ग का अंग बन जाता है और मौजूद व्यवस्था उनके फायदे में होती है। यह एक विचित्र तथ्य है कि राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग यह मानता है कि अस्पृश्यता केवल हिन्दुओं में है न कि ईसाइयों में। इस प्रकार हिन्दू दलितों को अनुसूचित जाति का दर्जा मिलता है हालांकि संविधान के अनुच्छेद–17 में स्पष्ट लिखा है कि किसी को भी अस्पृश्यता को बढ़ावा नहीं देने दिया जाएगा। इसलिए अनुसूचित जाति/

अनुसूचित जनजाति अधिनियम के तहत धार्मिक आधार पर भेदभाव पर भी मुकदमा होना चाहिए। लेकिन राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग बताता है कि केवल हिन्दू धर्म में ही अस्पृश्यता को बढ़ावा दिया जाता है। यह क्या विरोधाभास नहीं है। इस मौके पर मैं इस तथ्य के बारे में ट्राइब्यूनल का ध्यान आकर्षित कर रहा हूं और सुझाव देता हूं कि वह कैथोलिक चर्च से कहे कि दलित ईसाइयों के कष्ट दूर करने के लिए कुछ करे। निचले स्तर के सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में मैंने पाया है कि जो समुदाय कुख्यात माने जाते थे वही आज सत्तारूढ़ समुदाय हैं। पुलिस बल में इन समुदायों के 60 प्रतिशत लोग हैं। इसलिए मैं कहता हूं कि राजनेता और अन्य नेता इस समुदाय को बढ़ावा दे रहे हैं। सत्ता की शक्ति इस समुदाय के पास केन्द्रित है। दलितों को न केवल कष्ट सहने पड़ते हैं बल्कि उन्हें पूरी तरह नष्ट किया जाता है। इसे जोरदार तरीके से सरकार के सामने प्रस्तुत किया जाना चाहिए ताकि दलित समुदाय के अधिकारी इस का ध्यान रख सकें। उच्च जाति के सदस्यों ने सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्रों में सभी महत्वपूर्ण पद हथिया लिए हैं और वे हर तरीके से दलितों के रास्ते बंद कर रहे हैं। आरक्षण के लिए भी बड़ा खतरा है। ये लोग अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम के भी विरोधी हैं। अदालतें जब तक इस मुद्दे के समाज शास्त्रीय और मानवशास्त्रीय पहलुओं पर विचार नहीं करेगी तब तक उनके फैसलों का कोई असर नहीं होगा। मैं बता रहा हूं कि तमिलनाडु में 65 प्रतिशत राजनेता उच्च जाति के हैं। हमें जातिवाद को समाप्त करना होगा और इसके लिए जागरूकता लानी होगी। ऐसी जागरूकता बच्चों में खास तौर पर लाई जानी चाहिए, ताकि जातिवाद को पूरी तरह खत्म किया जा सके। हमें लोगों को आज देश में जारी अस्पृश्यता का आभास कराना होगा तभी वे जातिवाद के बारे में अपना दृष्टिकोण बदलेंगे और इसे समाप्त करेंगे। ईसाई संस्थान बड़ी–बड़ी सेवाएं चलाते हैं, जो गरीबों के लिए हैं। उनमें भी आरक्षण केवल हिन्दू दलितों के लिए है न कि दलित ईसाइयों के लिए।

"ईसाई संस्थानों में भी दाखिल हिन्दू दलितों की संख्या बहुत कम है। चर्च के साथ काम कर रहे एनजीओ और ईसाई एनजीओ भी ऐसा भेदभाव जारी रहने के मुद्दे को नहीं उठा रहे। मेरा ट्राइब्यूनल से आग्रह है कि वह अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति आयोग से कहे कि वह दलित ईसाइयों को अनुसूचित जाति की सूची में शामिल करे; इससे बड़ी मदद मिल सकेगी। यह ऐतिहासिक भूल रही है कि उच्च जाति के सदस्यों के व्यवहार में ऊपर से सुधार लाया जाए। आज भी निचली जाति के सदस्य भले ही वह आईएएस क्यों न हो, उसे गांव में जाति के नाम से पुकारा जाता है और इसलिए उस विशेषाधिकार का लाभ उठाने में कोई बुराई नहीं है जिसे संविधान ने दलितों को दिया है। यह अनुरोध केवल मेरा नहीं है अपितु नस्लीय भेदभाव पर अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसियों ने भी केन्द्र सरकार से इसकी सिफारिश की है। यह दर्जा मिलने से हमें अत्याचार होने पर कानूनी राहत हासिल करने में मदद मिलेगी। यह महत्वपूर्ण और जरूरी है कि जातिवादी व्यवस्था को नेस्तनाबूत करने के लिए जोरदार आन्दोलन चलाया जाए। मेरा मानना है कि इस मुद्दे पर फौरन विचार किया जाना चाहिए और इस पर ट्राइब्यूनल में चर्चा होनी चाहिए।"

(xiii) निर्णायक मंडल के सदस्यों की राय/टिप्पणी और भाषण

अस्पृश्यता पर आईपीटी के पैनल से 13 मई, 2007 को दक्षिण अफ्रीकी उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश याकूब का परिचय कराया गया

न्यायाधीश मोहम्मद जकरिया याकूब दक्षिण अफ्रीका में संवैधानिक न्यायालय में न्यायाधीश हैं। यह न्यायालय दक्षिण अफ्रीका में भारत के उच्चतम न्यायालय की तरह है। वह न्यायाधीश और व्यक्तिगत रूप से मानवाधिकारों के मुद्दे पर बहुत सक्रिय रहे हैं। उन्होंने आवास मामले में एक बहुत मशहूर फैसला सुनाया था। भारत में जैसे कि हम देखते हैं कि बड़े पैमाने पर तोड़फोड़ की जाती है लेकिन दक्षिण अफ्रीका के संवैधानिक न्यायालय ने ऐसे मामले में लोगों के आवास के अधिकार की रक्षा की। जस्टिस याकूब अफ्रीकन नैशनल कांग्रेस के भी सक्रिय सदस्य रहे हैं और उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के शासन के खिलाफ कई आंदोलनों में भाग लिया। रंगभेद के जमाने में अफ्रीकी लोगों को भारतीयों जैसा वोट देने का अधिकार नहीं था। अर्थात् केवल श्वेत लोग ही वोट दे सकते थे।

जस्टिस याकूब का वक्तव्य

"आज तक मुझे यह नहीं मालूम था कि अस्पृश्यता क्या है और आज की तमाम बातचीत सुनने के बाद मुझे लगता है कि मैं न केवल इसे समझ रहा हूं बल्कि महसूस भी कर रहा हूं। मैं खुद को इंसान सोचकर शर्म महसूस कर रहा हूं, क्योंकि मुझे पता चला है कि किस तरह एक इंसान के साथ दूसरा इंसान ऐसा असभ्य और दर्दनाक व्यवहार कर सकता है। फिर भी कह सकते हैं कि भारत के अछूत लोग दक्षिण अफ्रीका के काले लोगों से बेहतर स्थिति में हैं, क्योंकि उनके पास वोट का अधिकार है। अफ्रीकी लोग तो श्वेत लोगों के लिए अस्पृश्य थे। हजारों दक्षिण अफ्रीकी लोगों को उनकी जमीन और घरों से जबरन हटा दिया गया। लेकिन यह रंगभेद की व्यवस्था के खिलाफ पीड़ित लोगों का संघर्ष था। इस संघर्ष में अदालतों और नागरिक–प्रशासन की ओर से कोई सहयोग नहीं मिला, क्योंकि इन दोनों का संचालन श्वेत लोग किया करते थे, जो कि रंगभेद नीति के समर्थक थे। अफ्रीकन नैशनल कांग्रेस को 1961 में करारा झटका लगा। यह संघर्ष दो भागों में विभाजित हो गया। पहले भाग के अंतर्गत दक्षिण अफ्रीका के बाहर से संघर्ष चलाया गया और विभिन्न देशों से सहयोग लिया गया और उन्हें चिंताजनक हालात से अवगत कराया गया। अंदरूनी संघर्ष के तहत पीड़ित अश्वेत लोगों को संगठित और जागरूक बनाया गया। इसका मकसद मिलकर दमन का प्रतिरोध करना था। प्रतिरोध के अंतर्गत बड़े पैमाने पर कुर्बानी देनी पड़ी, क्योंकि सरकार मौन नहीं बैठी थी। लोकतंत्र के लिए हमारे संघर्ष में हजारों लोगों ने कुर्बानी दी। हजारों लोग बिना मुकदमे के मार दिए गए। सरकार ने हजारों लोगों को प्रताड़ित किया। श्वेत सरकार ने

राय जाहिर की कि अफ्रीकी लोग इंसान नहीं हैं, इसलिए उनके साथ पशुओं जैसा व्यवहार किया गया। जैसे–जैसे उन्होंने रंगभेद के खिलाफ आंदोलन करने वाले नेताओं को बड़े पैमाने पर मारना शुरू किया, वैसे–वैसे संघर्ष आगे बढ़ता गया। साथ ही, नए–नए नेता उभरकर सामने आये। लोगों ने अपनी बात रखनी और सरकार के विरोध में खड़े होना शुरू किया।

जस्टिस के. रामास्वामी का वक्तव्य

हमने जो दो दिन यहां बिताये हैं वे सचमुच उदासी भरे थे। जिन पीड़ितों ने अपनी शिकायतों का समाधान निकालने के लिए हमसे संपर्क किया वे सचमुच भावुक थे और उन्होंने हमें भी भावुक बना दिया। लेकिन ऐसे ट्राइब्यूनल के सदस्य होने के नाते हम संबंधित लोगों को कुछ सुझाव देना चाहेंगे। मुझे विश्वास है कि वे संघर्ष को समुचित स्तर और संगठनों तक ले जाएंगे। वे प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति और सत्तारूढ़ लोगों से मिलने वाले हैं। मुझे भरोसा है कि वे लोग इन मुद्दों पर अवश्य कुछ कार्रवाई करेंगे। हमने कुछ महत्वपूर्ण सिफारिशें की हैं। पहली यह कि जिन पीड़ितों को अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) नियम के अंतर्गत मुआवजा मिलना है उन्हें उसका 50 प्रतिशत एफआईआर लिखे जाने के समय, 25 प्रतिशत मामले की सुनवाई के समय और बाकी 25 प्रतिशत मामला निपटने के समय दिया जाना चाहिए। यह एक महत्वपूर्ण सुझाव है, लेकिन इस पर अमल के लिए एफआइआर महत्वपूर्ण है। एफआइआर लिखने में कितने थाने सहयोग करेंगे और कितने पुलिस अधिकारी ऐसा करेंगे? हमने दूर–दराज से आई बिलखती महिलाओं को सुना है, जिनकी बेटियों को बलात्कार के बाद मार दिया गया। इसके बाद भी पुलिस अधिकारियों ने कोई कार्रवाई नहीं की। इसलिए हमें संघर्ष करना है। यह संघर्ष दलितों को ही नहीं हम सभी को करना है, भले ही हम किसी भी जाति के हों। इस संघर्ष में अधिकार हासिल करने के लिए गरीब लोगों सहित सभी का साथ जरूरी है। मैं यह इसलिए कह रहा हूं क्योंकि कुछ ऐसे भी लोग हैं जो दलित नहीं हैं लेकिन इन लोगों के लिए लड़ने को तैयार हैं। इन लोगों का सहयोग भी लिया जाना चाहिए। तीसरा सुझाव यह है कि सिर पर मैला ढोने के उन्मूलन के अधिनियम को भी लागू किया जाना चाहिए। इस प्रकार की घिनौनी जाति प्रथा को समाप्त किया जाना जरूरी है। इतना करके आप रुकिए नहीं। अपने घरों में जाइए और खुद को संगठित और मजबूत बनाइये। मुझे नारायण गुरु के शब्द याद आते हैं, जिन्होंने केरल में 1888 में जाति प्रथा समाप्त की थी। उन्होंने कहा था कि सभी इंसानों के लिए एक ईश्वर है, एक धर्म है और सभी इंसान समान गरिमा और अधिकार के साथ पैदा होते हैं। दलितों और जनजातीय लोगों के भी समान अधिकार हैं। आप गरीब दलितों के हित की रक्षा का बीड़ा उठाएं और संघर्ष करते रहें। जीत आपकी अवश्य होगी।

डा. ए. रमैया का वक्तव्य

जैसे–जैसे मैंने एक–एक मामले का विवरण सुना, मुझे लगा कि हम असल में असभ्य भारतीयों के साथ रह रहे हैं। प्रत्येक सुनवाई से मुझे भरोसा हुआ कि हम इंसानों के साथ नहीं बल्कि पशुओं के

साथ रह रहे हैं। दलितों के साथ किए गए विभिन्न प्रकार के अत्याचारों के कारण ऐसा बार–बार महसूस होता है। दरअसल पशु भी ऐसे घृणित कार्यों में कभी शामिल नहीं होंगे। लेकिन हमें अपने ही देशवासियों की ओर से ऐसे अपमानजनक अत्याचारों का सामना करना पड़ता है। अब समय आ गया है कि देशभर के दलित समझें कि वे ऐसे सभ्य इंसानों के साथ नहीं रह रहे हैं, जिन्हें भारत का नागरिक मान सकें। इतना ही नहीं अब हर किसी व्यक्ति को यह समझना होगा कि हम सभ्य इंसानों के बीच नहीं रह रहे हैं। जब मैं स्कूटर चलाना सीख रहा था उस समय जो व्यक्ति मुझे सिखा रहा था उसने बताया कि जब आप सड़क पर वाहन चलाते हैं तो यह सोचो कि चारो ओर मस्तिष्कहीन लोग हैं और कभी–भी कुछ भी हो सकता है और उसके लिए तैयार रहो। मैं समझता हूं कि यह उदाहरण ऐसे समय के लिए आदर्श है जब हमारे गांवों में हमारे देश में किसी लोग पर इस तरह का अत्याचार करते हैं। हम बददिमाग लोगों के बीच रह रहे हैं जो इंसानों को और उनकी गरिमा को नहीं समझते और हर प्रकार के अत्याचार, हिंसा और अपमान करने का काम करते हैं। मैं समझता हूं कि यह हम सबके लिए स्पष्ट संदेश है। लेकिन जब हम यह महसूस करते हैं कि हम ऐसे असभ्य लोगों के साथ रह रहे हैं जिन्हें हम भारत का नागरिक कहते हैं तो ऐसे में हमें क्या करना चाहिए? मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि हरेक गैर–दलित ऐसा नहीं होता। हमारे देश में कई महान, दयालु और अच्छे लोग भी हैं जो दूसरे लोगों के दुख–दर्द को समझते और बांटते हैं। मैं यहां किसी का नाम नहीं लेना चाहता। कुछ भारत से हैं और कुछ विदेशों से। ये लोग ऐसे हैं जिनको गिना जा सकता है और उन्हें किसी जाति के साथ नहीं जोड़ा जा सकता, क्योंकि उन्होंने अपनी जाति को भुला दिया है। जब कोई गैर–दलित, दलित के साथ काम करता है तो वह ब्राह्मण होने की अपनी पहचान खो देता है, क्योंकि आप ब्राह्मण होते हुए दलित आंदोलन के अंग नहीं हो सकते। इसी तरह कई गैर–दलित हैं, जिन्होंने अपनी जाति की पहचान खत्म कर दी है और जो दलित अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं। इसलिए हमें उन्हें मान्यता देनी होगी। इनमें जवान विद्यार्थी, युवा, वकील, बुद्धिजीवी और कार्यकर्त्ता हैं, लेकिन उनकी संख्या बहुत कम है। न्यायिक प्रणाली, पुलिस, अदालतों और न्याय के बारे में मैंने जो अध्ययन और शोध किया है उससे और यहां पैनल सदस्य के रूप में बैठकर पता चलता है कि न्याय बहुत मंहगा है और दलित इसका खर्च वहन नहीं कर सकते हैं। हर बार जब ज्यादती होती है तो कई जांच कराई जाती हैं, जिनमें पूछा जाता है कि क्या आपने एफआइआर दर्ज कराई, हां मैंने एफआइआर दर्ज कराई, क्या आप मानवाधिकार आयोग में गए, आप कितने आयोगों में गए, क्या आपने अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति आयोग को सूचित किया। ऐसा 50 वर्ष से जारी है। कानून और आयोगों में कोई खामी नहीं है और जो हमने तंत्र बनाया है उसमें भी कोई खामी नहीं है। मैं समझता हूं कि कोई ऐसा देश नहीं है कि जहां इस मुद्दे के समाधान के लिए सुव्यवस्थित और व्यापक तंत्र मौजूद हो। समस्या है कि इन मुद्दों पर कौन कार्रवाई करता है। क्या इस कानून को लागू करने की सचमुच इच्छाशक्ति है। मैं कहना चाहता हूं कि इस देश में कोई भी इस कानून को लागू नहीं करना चाहता। लेकिन कुछ लोग इसके अपवाद

हैं जो यहां उपस्थित हैं। ऐसी स्थिति में इस समस्या का कैसे स्थाई समाधान निकाला जाए। आप किस प्रकार इस समस्या को पूरी तरह समाप्त कर सकेंगे। आप किस प्रकार निर्दोष अल्पसंख्यकों की रक्षा कर सकेंगे। मैं जो विचार रखना चाहता हूं वह नया नहीं है। 1920 के दशक में डॉ. बीआर आम्बेडकर ने दलित समुदाय के लिए अलग बस्तियों क़ी बात की थी जिनमें केवल दलित रहेंगे और जिसमें छूत और अछूत समुदाय की कोई अवधारणा नहीं होगी।

विमला देशपांडे का वक्तव्य

सबसे पहले मैं मायावती को उत्तर प्रदेश के चुनावों में शानदार कामयाबी पर बधाई देना चाहती हूं। इस कामयाबी से मिला संदेश अत्यंत महत्वपूर्ण है। छुआछूत के खिलाफ अभियान के बारे में मैं एक कार्यकर्त्ता होने के नाते कहना चाहूंगी कि हमने इसे आजादी के बाद भी छह दशक से जीवित रखा है। देश में जहां भी अन्याय होता है वहां हमसे जो बन रहा है हम कर रहे हैं। हाल में दिल्ली के एम्स अस्पताल में भी जो अन्याय हुआ हमने उसे संसद में उठाया है। संसद के कई सदस्यों ने हस्ताक्षर करके प्रधानमंत्री को याचिका दी है। मुझे खुशी है कि प्रोफेसर थोरात की अध्यक्षता में जांच समिति ने इस मामले की बारीकी से जांच की है और भेदभाव के सबूत के तौर पर दर्दनाक विवरण दिए हैं। यह हमारे हाथ में ऐसा हथियार है जो हमें लोगों के अधिकार के लिए संघर्ष करने में मदद देगा। ऐसा करना हमारा कर्त्तव्य है। हम इसके माध्यम से संसद में फिर मामला उठायेंगे। लेकिन इस मामले से एक महत्वपूर्ण सवाल पैदा होता है कि हमने अपनी नाक के नीचे ऐसा क्यों होने दिया। अस्पृश्यता समाप्त करने के लिए लगातार दस्तखत कराये गये, लेकिन उसके अनुरूप काम नहीं हुआ। प्रश्न यह है कि प्रत्येक अच्छा नागरिक किस प्रकार मानवता के हित के लिए सक्रिय बन सकता है। इसके लिए जरूरी है कि हमारे दिमाग से गंदगी हटाई जाए, गंदे विचार हटाए जाएं। हमें अपने दिमाग से गंदगी को बुहारना होगा। ऐसी सफाई कैसे की जाए। हम सबने फैसला किया है कि पुरानी जातिवादी मानसिकता समाप्त की जानी चाहिए। इसकी शुरुआत कैसे की जाए। इसका एक उदाहरण यह है : पिछले कुंभ मेले के दौरान सफाई कर्मचारियों के बारे में ऐसी शुरुआत की गई। हमने उनके पांव धोये, उनके माथे पर तिलक लगाया, उन्हें भोजन परोसा और उन्हें उपहार दिए। मैं समझती हूं कि नया समाज बनाने की कोशिश करना महत्वपूर्ण है। ऐसा समाज जिसमें समानता हो।

स्वामी अग्निवेश का वक्तव्य

मैं सबसे पहले कॉलिन गोन्साल्विस और पॉल दिवाकर को बधाई देना चाहता हूं, जिन्होंने हमें यहां एकत्रित किया। मैं भैयालाल और बंतसिंह तथा उर्मिला का भी धन्यवाद करना चाहता हूं जो यहां आये और जिनकी पीड़ा और बिलखती वाणी हमारे दिलों को छू गयी। ऐसी पीड़ा कुछ हद तक बोलकर और कुछ हद तक बिना बोले महसूस कराई गई। यह पीड़ा अकेले उनकी नहीं है, यह पूरे देश, पूरी सभ्यता, पूरी संस्कृति की है। आज यहां हम एक अभियान शुरू करने के लिए एकत्रित हैं।

एक ऐसा प्रयास जिसकी श्रीमती विमला देशपांडे ने चर्चा की और जिसके लिए जस्टिस एच. सुरेश लगातार संघर्ष करते रहे हैं। आज एक महत्वपूर्ण मौका है। आज महत्वपूर्ण दिन है जब मायावती की जीत की खबरें सुर्खियों में हैं। यह जीत अकेले मायावती की नहीं बल्कि भारत के दलितों की जीत है। यह गरीबों, पिछड़े, दबे हुए लोगों और उन लोगों की जीत है जिनकी आवाज छीन ली गई है। मैं समझता हूं कि हम पहली बार महसूस कर रहे हैं कि वोटिंग मशीन पर लगा छोटा सा बटन देश की तकदीर और तस्वीर बदल सकता है, अगर उसका सही तरीके से इस्तेमाल किया जाए। और उन्होंने अपने उस नारे को सही साबित कर दिया है कि "वोट हमारा, जीत तुम्हारी, नहीं चलेगा। नहीं चलेगा।" जो लोग अपने–आप को विशेषाधिकार संपन्न मानते थे और जो सत्ता की कुर्सियों पर बने रहने के आदी थे उन्हें लोगों ने धकेलकर धूल में मिला दिया है और एक दलित की बेटी ने आज उत्तरप्रदेश की फिर कमान संभाली है। आज ऐसा लगता है कि बाबा भीमराव आम्बेडकर का आर्शीवाद स्वर्ग से प्राप्त हो रहा है। बाबा आम्बेडकर ने कहा था कि अगर हमें जातिवाद के खिलाफ संघर्ष करना है तो छुआछूत हटाना ही काफी नहीं होगा, बल्कि हमें जातिवाद की प्रथा को जड़ों से समाप्त करना होगा। यह एक ऐसी बीमारी है जिसे जड़ से समाप्त करना है और जब यह समाप्त होगी तो सत्ता का सामाजिक वर्गीकरण भी समाप्त होगा। अमीर तथा गरीब के बीच बड़ी खाई भी दूर होगी। मैं पिछले 40 वर्ष से संघर्ष कर रहा हूं। मैंने जातिवाद और भाग्यवाद को हटाने का नारा दिया है। हमें इन्हें भी समाप्त करने का संकल्प लेना होगा। हम इनको और बर्दाश्त नहीं करेंगे। हम जाति और अस्पृश्यता को बर्दाश्त करते हैं तो हम दोषी हैं। हमने इसे काफी लंबे समय तक बर्दाश्त किया है, लेकिन यह अब भी कायम है और फैल रही है। आज हमने भेदभाव की व्यवस्था समाप्त करने की बड़ी जिम्मेदारी ली है। यह संघर्ष काफी पहले से जारी है। गौतम बुद्ध, गुरु नानक, कबीर, गांधी, बाबा साहेब आम्बेडकर, पेरियार और महात्मा फुले के समय में भी यह संघर्ष जारी था। यह समूचे देश में था और अब यह उत्कर्ष पर पहुंचा है। अब विज्ञान और टेक्नालॉजी के युग में उन लोगों को वोट का हथियार मिला है लड़ने के लिए, अपने संघर्ष को आगे बढ़ाने के लिए। हम जातिवाद को समाप्त करेंगे और इसे आगे बिल्कुल बर्दाश्त नहीं करेंगे। मैं एक बार फिर पॉल दिवाकर और कॉलिन गोन्साल्विस का इस जन सुनवाई के लिए धन्यवाद कर रहा हूं। मुझे भरोसा है कि यहां से एक नई आवाज बुलंद होगी। मुझे याद है कि मैं जहां भी गया वहां मैंने अपने दलित भाइयों से कहा था कि वे अब सिर पर मैला ढोने का काम नहीं करें। मैंने कहा कि अगर उन्हें भूख से मरना पड़े, रिक्शा चलाना पड़े, भले ही चोरी करनी पड़े पर इस काम को न करें। इस काम को समाप्त करने के लिए हमें इस काम के खिलाफ विद्रोह की भावना पैदा करनी होगी। हमारा समूचा समाज सड़ा हुआ है और इसका कारण जातिवाद है और इसके लिए धर्म के ठेकेदार जिम्मेदार हैं। ये लोग देशभर में छुआछूत और जातिवाद फैला रहे हैं। राजनीतिक नेता भी पीछे नहीं है। हमारे प्रतिनिधि संसद में जातिवादी शक्तियों के साथ हाथ मिलाते हैं, इसलिए कई वर्ष से जातिवाद का अंत नहीं हुआ और हमें यह सुनवाई करने को मजबूर होना पड़ा। हम

जनता को जागरूक बना रहे हैं, जिससे छुआछूत और जातिवाद के खिलाफ जन आंदोलन खड़ा करने में कामयाबी हासिल हो सके। मैं मीडिया के सदस्यों को यहां उपस्थित होने के लिए बधाई देना चाहता हूं, हालांकि वे यहां कम संख्या में हैं। मैं नहीं समझता वे यहां कैसे आये। यदि यहां अमिताभ बच्चन होता तो मीडिया से पूरा हॉल भरा होता और हमारे लिए बैठने की कोई जगह नहीं होती। मैं मायावती को बधाई देना चाहता हूं जिसने अपनी शानदार जीत से अमिताभ बच्चन को पीछे छोड़ दिया है और मीडिया को आकर्षित किया है।

मुझे याद आ रहा है कि जब मैं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में भाषण दे रहा था तो एक शिक्षित व्यक्ति ने जो वकील था, खड़े होकर कहा कि स्वामीजी आप जो कह रहे हैं वह ठीक है, लेकिन हम उन लोगों को कैसे गले लगा सकते हैं जो सफाई का और सिर पर मैला ढोने का काम करते हैं। हम उन्हें कैसे छू सकते हैं और उन्हें कैसे खाना बनाने जैसे काम में शामिल कर सकते हैं। मैं भगतसिंह के जीवन की एक घटना बताना चाहता हूं जब उन्हें फांसी दी जानी थी तो उन्होंने अपनी माता के हाथ का बना भोजन खाने की इच्छा जाहिर की थी। अधिकारियों को दिक्कत हो रही थी कि यह इच्छा कैसे पूरी की जाए, क्यों उनकी फांसी का समय निकलता जा रहा था। भगत सिंह ने कहा कि परेशान होने की जरूरत नहीं है मेरी मां बहुत दूर है और मुझे खुशी होगी अगर मेरी वह मां मेरे लिए खाना बनाए जो हर रोज मेरा शौचालय साफ करने आती है। ऐसे थे भगतसिंह। और अब मैं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के उस आदमी के बारे में सोचता हूं जो उस समय दुविधा में था। मैंने उसे कहा कि इस बारे में ज्यादा चिंता न करें। उसे यह भी कहा कि वह पंचायत की बैठक बुलाए और एक प्रस्ताव पारित करने को कहे कि जो भी सिर पर मैला ढोने का काम करेगा उसे अछूत या भंगी पुकारा जायेगा। लेकिन ऐसा प्रस्ताव पास करने से पहले आपको अपने दिल पर हाथ रखकर खुद से पूछना होगा कि आपका जन्म होते ही सबसे पहले आपके शौच को किसने साफ किया था तो आप पायेंगे कि यह काम आपकी माता ने किया था, तो क्या आप उसे भंगन या अछूत कहेंगे और अगर आप इसे स्वीकार करेंगे कि आपकी माता यह हो सकती है तो उसके बाद आपको दलित बहिनों और माताओं को भंगन या अछूत कहने का अधिकार होगा। इसके बाद वह मुस्कराया और उसने उत्तर दिया कि मेरी मां बच्चों का शौच साफ करती है, न कि बड़ों का, तब मैंने उससे पूछा कि आप सोचते हैं कि उस शौच से कोई खुश्बू आती है या यह खाने लायक है और क्या यह चंदन के लेप जैसा है? यदि ऐसा है तो आप इसे अपने ऊपर उस तरह क्यों नहीं लगाते जैसे पंडित माथे पर चंदन का तिलक लगाते हैं? मित्रो, आप देखेंगे कि यह समाज कैसा विचित्र है। हमें इस समाज को बदलना है, जिसके लिए हमें विद्रोही बनना होगा। यह सम्मेलन विद्रोह के लिए है। यह समाचार बनाने या मौजमस्ती के लिए आयोजित नहीं किया गया है। यह पीड़ितों के दर्द को जज्ब करने के लिए भी नहीं हो रहा है। पिछली कई शताब्दियों की अमानवीयता की पीड़ा का दर्द आज यहां मौजूद है जो हमारे लिए एक चुनौती है। अगर हम आज के बाद खामोश रहे तो यह हमारी बड़ी गलती बन जायेगी और हमारा जीवन बेकार हो जायेगा और उसका कोई अर्थ

नहीं होगा। यदि ऐसा होता रहा तो हमें इतिहास माफ नहीं करेगा। भैयालाल के साथ खैरलांजी में जो हुआ वह उसके बारे में ठीक से बता भी नहीं पाया। उसके दिल में बहुत पीड़ा है। जिस तरीके से उसका परिवार, उसकी लड़कीं और उसकी पत्नी का कत्ल हुआ, उसे भुलाया नहीं जा सकता। उन्हें काट–काट कर टुकड़े कर दिया गया। खैरलांजी की घटना के बाद भी सरकार जैसी थी, वैसी ही चल रही है। इतना ज्यादा अन्याय और अमानवीयता हुई, फिर भी किसी को कोई फर्क नहीं पड़ा। हर रोज अन्याय होता है, लेकिन किसी को कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता। हमें इस प्रथा को समाप्त करने की दिशा में काम करना है।

(आईपीटी अर्थात जन न्यायाधिकरण के साथ–साथ निर्णायक मंडल के सदस्यों की कई बैठकें हुयीं जिनमें अत्याचार के मामलों का विश्लेषण किया गया। इनको सिफारिशों के रूप में सारांश बनाकर पेश किया गया। निर्णायक मंडल के सदस्यों के लिए यह एक अथक प्रयास की प्रक्रिया थी और जन न्यायाधिकरण की सुनवाई के बाद ये सिफारिशें पीड़ितों, मीडिया, महत्वपूर्ण व्यक्तियों और कार्यकर्त्ताओं को भेजी गयीं।)

3 अस्पृश्यता पर निर्णायक मंडल के सदस्यों की प्रारंभिक टिप्पणियां और सिफारिशें

12–13 मई 2003
आईएसआई, नयी दिल्ली

हम, अस्पृश्यता पर इंडियन पीपुल्स ट्राइब्यूनल (भारतीय जन न्यायाधिकरण) के निर्णायक मंडल के सदस्यों ने राष्ट्रीय दलित मानव अधिकार अभियान (एनसीडीएचआर) और ह्यूमन राइट्स लॉ नेटवर्क (एचआरएलएन) द्वारा राज्य और राष्ट्रीय स्तर के 56 दलित संगठनों के साथ मिल कर दिल्ली में 12–13 मई 2007 को आयोजित सुनवाई में अस्पृश्यता और अत्याचार के 65 मामलों से संबंधित पीड़ितों का दुख–दर्द और गवाहों के बयान सुने।

जन सुनवाई दो दिन हुई और इसके लिए तीन सत्र आयोजित किए गए। 12 मई से प्रथम पूर्ण सत्र में निर्णायक मंडल के सदस्यों ने पीड़ितों/घटना में बचे लोगों की चार मामलों में सुनवाई की। 12 मई को दूसरे सत्र तथा 13 मई को तीसरे सत्र में निर्णायक मंडल के सदस्यों ने दो अलग–अलग दलों में पीड़ितों/घटना में बचे लोगों और उनके रिश्तेदारों की सुनवाई की। इसके साथ ही हम अपनी प्रारंभिक टिप्पणियां और सिफारिशें प्रस्तुत करते हैं।

(i) अस्पृश्यता का स्वरूप

स्कूलों में जारी अस्पृश्यता : ग्रामीण भारत में बच्चे बहुत कम उम्र में जातिवाद के कथित नियम समझ जाते हैं। ये नियम बिना रोकटोक के 21वीं शताब्दी में उनके जीवनकाल में भी कायम हैं। भारत के 11 प्रमुख राज्यों के 565 गांवों में ऐसी प्रथाओं के बारे में कराए गए सर्वेक्षण–'ग्रामीण भारत में अस्पृश्यता' से पता चलता है कि 38 प्रतिशत सरकारी स्कूलों में दलित बच्चों को खाने के समय अलग बैठना होता है। दलित बच्चों को 20 प्रतिशत स्कूलों में साझा स्रोत से पानी भी पीने नहीं दिया जाता।

राज्य संस्थाओं में अस्पृश्यता प्रथा : देश में कायम अस्पृश्यता पर संभवतः प्रथम राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण की हाल में जारी रिपोर्ट से पता चलता है कि ऐसी अस्पृश्यता सभी स्थानीय और राज्य स्तर की संस्थाओं में है। यह चौंकाने वाला तथ्य है कि 27.6 प्रतिशत दलितों को पुलिस थानों तथा 25.7 प्रतिशत को राशन की दुकानों में घुसने नहीं दिया जाता है। तैंतीस प्रतिशत स्वास्थ्यकर्मी

दलितों के घर में जाने से इंकार कर देते हैं और 23.5 प्रतिशत दलितों को आज भी घरों में पत्र वितरित नहीं किए जाते। 30.8 प्रतिशत स्व–सहायता समूहों और सहकारिताओं में दलितों के लिए बैठने की अलग व्यवस्था है। लगभग 29.6 प्रतिशत पंचायतों में भी ऐसा ही है। करीब 14.4 प्रतिशत गांवों में तो दलितों को पंचायत भवन में घुसने तक नहीं दिया जाता है। उन्हें मतदान केन्द्रों तक जाने की छूट नहीं है और जिन गांवों में सर्वेक्षण किया गया उनमें से 12 प्रतिशत गांवों में अलग लाइन में खड़े होने को मजबूर किया जाता है। सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के संवैधानिक निर्देश के बावजूद भारत में विभिन्न स्थानीय संस्थाएं अस्पृश्यता को साफतौर पर बर्दाश्त करती हैं और इसमें मदद देती हैं।

आवास नीति में अस्पृश्यता : दलित बस्तियों को मुख्य गांव से अलग रखा जाता है और सरकार द्वारा भी ऐसा ही दृष्टिकोण अपनाया जा रहा है। इसके अनेक उदाहरण हैं – दलितों के लिए इन्दिरा आवास कॉलोनियां या एनजीओ द्वारा गुजरात में 2001 के भूकम्प के बाद पुनर्निर्माण कार्यक्रम, उड़ीसा में प्राकृतिक आपदा के बाद पुनर्वास तथा अन्य राज्यों में ऐसे कार्यक्रम। सर्वेक्षण किए गए लगभग आधे गांवों (48.4 प्रतिशत) में दलितों की साझा जलस्रोत तक पहुंच नहीं है। एक तिहाई से अधिक (35.8 प्रतिशत) गांवों में दलितों को दुकानों में प्रवेश नहीं करने दिया जाता है। उन्हें दुकान से कुछ दूर इंतजार करना पड़ता है, दुकानदार बिक्री की गई वस्तु जमीन पर रखते हैं और इसी प्रकार दलितों के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क में आए बिना भुगतान लेते हैं। लगभग एक तिहाई गांवों में चाय की दुकान में दलितों को बैठने नहीं दिया जाता और वे अलग कप इस्तेमाल करते हैं।

सार्वजनिक स्थानों पर जारी अस्पृश्यता : समूचे ग्रामीण भारत में दलितों द्वारा सार्वजनिक मार्गों से बारात निकाले जाने पर हिंसा के मामले दिखाई देते हैं। सैंतालीस प्रतिशत से अधिक गांवों में गली, सड़कों से दलितों की बारात निकाले जाने पर प्रतिबंध है, क्योंकि उच्च जाति के लोगों का मानना है कि इन सड़कों और सार्वजनिक रास्तों पर केवल उनका हक है। दस से 20 प्रतिशत गांवों में दलितों को साफ, रंग–बिरंगे फैशन वाले कपड़े या धूप का चश्मा भी नहीं लगाने दिया जाता। वे सड़कों पर अपनी साइकिल पर नहीं बैठ सकते, छाता नहीं खोल सकते, चप्पल नहीं पहन सकते, धूम्रपान नहीं कर सकते। वे उच्च जाति के लोगों के सामने बिना सिर झुकाए खड़े भी नहीं हो सकते।

मंदिरों और अन्य धार्मिक संस्थाओं में जारी अस्पृश्यता : ग्यारह राज्यों में 64 प्रतिशत मामलों में मंदिरों में दलितों के प्रवेश पर प्रतिबंध है। उत्तर प्रदेश में 47 प्रतिशत और कर्नाटक में सबसे अधिक 94 प्रतिशत मामलों में ऐसी स्थिति है। शोध में पता चला है कि दलितों द्वारा अन्य धर्मों में शामिल होने के बाद भी ऐसे प्रतिबंध जारी हैं। पंजाब में सर्वेक्षण किए गए 51 में से 41 गांवों में दलितों के लिए अलग गुरुद्वारे हैं और जहां गुरुद्वारों में दलित मत्था टेक सकते हैं वहां भी उच्च जाति के जाट उन पर आपत्ति करते हैं। दलितों को लंगर में अलग लाइन में बिठाकर खाना

दिया जाता है और उन्हें पवित्र भोजन बनाने या बांटने नहीं दिया जाता है। महाराष्ट्र में व्यापक स्तर पर दलितों के बौद्ध बनने के बावजूद 51 प्रतिशत गांवों में दलितों को मंदिर में नहीं आने दिया जाता है। केरल और आंध्र प्रदेश से मिली खबरों के अनुसार दलितों से ईसाई बने लोगों और अन्य ईसाइयों के बीच बड़ी खाई है और दलित पादरियों के साथ भी भेदभाव जारी है।

मौत में अस्पृश्यता : मौत होने पर भी भेदभाव कायम है। सर्वेक्षण किए गए लगभग आधे गांवों (48.9 प्रतिशत) में दलितों की श्मशान गृहों तक पहुंच पर प्रतिबंध था। महाराष्ट्र में जहां दलितों के अलग श्मशान गृह हैं वहां भी दलितों को केवल पूर्व की ओर संस्कार करने की अनुमति दी जाती है, ताकि उच्च जाति के लोग पश्चिम से पूर्व की ओर बहने वाली हवाओं से प्रदूषित न हों।

भूमि और सिंचाई तक पहुंच में अस्पृश्यता : दलितों का बहुत बड़ा वर्ग भूमिहीन है, फिर भी कुछेक मामलों में जहां दलितों के पास जमीन है उन्हें एक–तिहाई से अधिक गांवों में सिंचाई के पानी से वंचित रखा जाता है। इक्कीस प्रतिशत गांवों में उनकी चरागाहों और मछली के तालाब तक पहुंच नहीं है। जब दलित खेती के लिए या मकान बनाने के लिए या अपने मवेशियों को चराने के लिए जमीन पर कब्जा करते हैं या उन्हें सरकार जमीन आवंटित करती है तो उच्च जाति के लोगों द्वारा हिंसक विरोध की खबरें मिलती हैं।

श्रम बाजार में अस्पृश्यता : अध्ययन में श्रम बाजार में भी दलितों के साथ भेदभाव किए जाने का विवरण दिया गया है। कृषि मजदूरी में आमतौर पर दलितों का विपरीत स्थितियों में उत्पीड़न किया जाता है और कई बार यह बंधुआ मजदूरी का रूप ले लेता है। खेतों में कम काम होने के दौरान उन्हें काम नहीं दिया जाता और उच्च जाति के लोगों को काम देने में प्राथमिकता दी जाती है। पच्चीस प्रतिशत गांवों में दलितों को अन्य मजदूरों से कम मेहनताना दिया गया। उन्हें बहुत ज्यादा समय तक काम में लगाए रखने, देर से मजदूरी देने, गालियों और मारपीट का भी शिकार होना पड़ता है। ऐसा बिहार जैसे जातिवादी राज्य में ही नहीं बल्कि पंजाब में भी होता है। सैंतीस प्रतिशत गांवों में दलित मजदूरों को दूर से मेहनताना दिया जाता है ताकि उनसे शारीरिक संपर्क न हो। अध्ययन में गैर–दलितों और दलित मजदूरों के बीच भेदभाव के सबूत मिले हैं और जातिवाद श्रमजीवी एकता पर भी हावी होता है।

उपभोक्ता बाजार में अस्पृश्यता : अस्पृश्यता और तो और उपभोक्ता बाजार में भी है। पैंतीस प्रतिशत गांवों में दलित उत्पादकों को अपनी वस्तुएं बेचने से रोका जाता है। उन्हें दूरदराज के शहरी बाजार में चुपचाप बेचने को बाध्य होना पड़ता है। ऐसे बाजार में उनकी जाति का पता नहीं चल पाता मगर उन्हें सामान वहां तक ले जाने में ज्यादा लागत और समय लगाना पड़ता है, जिससे उनका लाभ और स्पर्धा शक्ति कम हो जाती है। दूध के उत्पादों के बारे में जाति का साया बना हुआ है। सहकारिता वाले 47 प्रतिशत गांवों में दलितों को सहकारिताओं और यहां तक कि लोगों को दूध बेचने नहीं दिया जाता। दलित शुरू से ही गरीबी से बेहद दबे होते हैं और इसके बाद श्रम और उपभोक्ता बाजार में उन्हें ज्यादा काम के बदले कम मजदूरी और अनिश्चित रोजगार

मिलता है। इसके अलावा उन्हें प्राकृतिक संसाधनों और उनके उत्पाद के लिए बाजार तक पहुंच से वंचित रखा जाता है।

निजी क्षेत्र में भी अस्पृश्यता हावी : धर्मनिरपेक्ष और धार्मिक सार्वजनिक स्थानों के अलावा ग्रामीण क्षेत्र में उच्च जाति के घरों में भी अस्पृश्यता की प्रथा जारी है और लोग इसे व्यक्तिगत मामला मानते हैं। सर्वेक्षण ने पुष्टि की है कि 73 प्रतिशत गांवों में दलितों को गैर–दलितों के घरों में आने नहीं दिया जाता है और 70 प्रतिशत दलित अन्य लोगों के साथ बैठ कर नहीं खा सकते हैं। इतना ही नहीं दलित शोधकर्ताओं को भी उच्च जाति के घरों में प्रवेश नहीं करने दिया गया।

अस्पृश्यता की मानसिकता सर्वत्र : स्कूलों और थानों जैसी सरकारी संस्थाओं में अस्पृश्यता बेरोकटोक जारी है। मंदिरों और दुकानों, खेतों और बाजारों तथा घरों और दिलोदिमाग में भी यही स्थिति है। फिर भी दलित भारत में रह कर उम्मीद और उत्सुकता से समानता और गरिमा की सुखदायक सुबह की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

हमारे सामने दिए गए बयानों से यह बहुत स्पष्ट है कि दलितों की देश के आर्थिक विकास में नौ प्रतिशत की भी भागीदार नहीं है। स्वतंत्रता के 60वें वर्ष में भी वे सही मायने में आजादी का सुख नहीं उठा पा रहे हैं और अस्पृश्यता और जातिवादी बंधनों और अलगाव की जंजीरों में जकड़े हुए हैं। उन्हें जाति व्यवस्था में अपनी निम्न और अशुद्ध स्थिति के कारण लगातार बहिष्कार, अपमान, शोषण, बदसलूकी, गालियों और हिंसा का शिकार होना पड़ता है।

(ii) अस्पृश्यता और संबंधित हिंसा

14 राज्यों से पीड़ितों/घटना में बचे लोगों ने यहां हमारे सामने आपबीती बताई। कुल मिलाकर 85 मामलों पर गौर किया गया।

सभी मामलों से समाज में कुल मिलाकर मौजूद जातिवादी मानसिकता पर आधारित पारंपरिक और नए स्वरूप के छुआछूत और घिनौनी हिंसा की जारी प्रवृत्ति स्पष्ट हुई। सार्वजनिक स्थानों और सेवाओं से वंचित रखने के दो मामले, साझा जमीन और प्राकृतिक संसाधनों से वंचित रखने के 12 मामले, शिक्षा संस्थाओं और कार्यस्थल में भेदभाव के छह मामले और आपराधिक न्याय प्रणाली और न्यायपालिका में भेदभाव के पांच मामले थे। चार मामले पंचायतों तथा अलगावपूर्ण अनुभवों, नौ मामले जबरन/अनिवार्य मजदूरी और भेदभाव, नौ मामले आवास समेत सरकारी नीतियों और कार्यक्षेत्रों में भेदभाव से संबंधित थे। ग्यारह मामले यौन शोषण और हमले, तीन मामले धर्म में अलगावपूर्ण व्यवहार और चार मामले अन्य भेदभावपूर्ण व्यवहार और हिंसा से संबंधित थे।

पीड़ितों/घटना में बचे लोगों में व्यक्तिगत रूप से बच्चे, महिलाओं और पुरुषों के साथ–साथ समूचा दलित समुदाय शामिल है। पीड़ितों द्वारा बताई गई घटनाएं क्रूर, अपमानजनक और कुछ मामले में अमानवीय और निर्मम हैं। पीड़ित देश में विभिन्न भागों से आए हैं, मगर निर्णायक मंडल के सदस्यों ने देश भर में अस्पृश्यता की प्रकृति और स्वरूप को एक जैसा महसूस किया। हिंसा

के कारण भी लगभग एक जैसे हैं, जिनके सामाजिक और आर्थिक दोनों पहलू हैं। पीड़ित/घटना में बचे हुए लोग जब अपनी आपबीती सुना रहे थे तब यह बात स्पष्ट रूप से सामने आई कि हमलावरों के सामने उनकी स्थिति असहायों जैसी थी और वे उन पर रोजी–रोटी के लिए निर्भर थे। अधिकारियों की कर्तव्य निर्वहन में लापरवाही तथा निर्धारित दायित्वों और कानूनी प्रावधानों को अमल में नहीं लाने से हमलावरों को अस्पृश्यता की प्रथा और दलितों पर हिंसा करने के लिए शह मिली। संवैधानिक प्रावधानों, विधायी उपायों, संस्थागत व्यवस्था और तो और विशेष संरक्षण उपायों के बावजूद जातिवाद का बोलबाला बना हुआ है। इस जन न्यायाधिकरण ने भारत के 111 प्रमुख राज्यों के 565 गांवों में किए गए सर्वेक्षण पर आधारित सेज प्रकाशन के 2006 के संकलन 'ग्रामीण भारत में अस्पृश्यता' में वर्णित अस्पृश्यता के व्यापक चलन की भी पुष्टि की।

(iii) समग्र सिफारिशें

आजादी के 60वें वर्ष में हम सरकार से सिफारिश करते हैं कि सरकार सबसे पहले यह स्वीकार करे कि अस्पृश्यता अपने पूरे स्वरूप में न केवल मौजूद है अपितु पिछले वर्षों में यह बढ़ी है और इसका प्रभाव तेज हुआ है। सरकार को इस बात से इंकार नहीं करना चाहिए कि अस्पृश्यता की प्रथा अब भी मौजूद है। हम सिफारिश करते हैं कि भारत सरकार और समाज दोनों को स्वीकार करना चाहिए कि केवल अस्पृश्यता के कारण लाखों दलित संयुक्तराष्ट्र के सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्य हासिल नहीं कर सकेंगे।

एनसीडीएचआर की जनसुनवाई की रिपोर्ट 2000, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग और राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग की कई रिपोर्टों के बावजूद सरकार और सरकारी आयोग दलितों के अलगाव की जारी व्यवस्थित प्रथा के प्रति आंखें मूंदे हैं जिसके फलस्वरूप दबदबे वाली उच्च जातियों ने पूरी तरह मान लिया है कि उनके पास भेदभाव और अत्याचार करने का लाइसेंस है। इस सार्वजनिक धारणा को शीघ्र समाप्त किए जाने की आवश्यकता है।

सरकार में प्रशासन, पुलिस और अन्य अर्द्धसरकारी एजेंसियों के अधिकारी भी जातिवाद से प्रभावित हैं। हम सिफ़ारिश करते हैं कि सभी विभाग अपने कार्य क्षेत्र में अस्पृश्यता के प्रभाव से संबंधित दिशानिर्देश जारी करें। हम जोरदार आग्रह करते हैं कि प्रधानमंत्री के सर्वोच्च स्तर पर उस इस प्रथा को जड़ से उखाड़ने के लिए कार्रवाई की जाए, जिसे हाल में जस्टिस एम. काटजू ने 'राष्ट्र का अभिशाप' कहा था।

सुनवाई से हमारी यह राय बनी है कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम और पीसीआर कानून के अंतर्गत अपराधों में सजा की दर के आंकड़ों के प्रभावहीन होने के अलावा न्याय प्रणाली आमतौर पर अस्पृश्यता और अत्याचार के मामलों से निपटने में नाकाम रही है। अनुसूचित जाति पर अत्याचारों की राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट के निष्कर्षों और जस्टिस पुन्नैया आयोग तथा साक्षी – ह्यूमन राइट्स वॉच रिपोर्ट ने पाया कि ऐसे

मामलों की देश में सजा की दर एक प्रतिशत थी। यह प्रशासन की संवैधानिक प्रणाली की विफलता का सबूत है।

मामले–दर–मामले की सुनवाई में हमने पाया कि केवल बहुत कम मामलों में कानूनी प्रणाली तक पहुंच संभव हुई, क्योंकि पुलिस एफआइआर लिखने से इंकार करती है। इतना ही नहीं जो एफआइआर लिखी जाती हैं उन्हें मजिस्ट्रेटों के पास नहीं भेजा जाता है। एक के बाद एक मामले में पीड़ितों को हिंसा, सामाजिक तथा आर्थिक बहिष्कार के जरिए समझौता करने और ऐसे मामले निपटाने पर मजबूर किया जाता है, जिनके फलस्वरूप गंभीर से गंभीर मामले धमकियों की वजह से वापिस ले लिए जाते हैं। हमने प्रभावशाली उच्च जाति और अभियोजन पक्ष के बीच मिलीभगत पाई है। न्यायपालिका में भी सभी स्तरों पर जातिवादी पूर्वाग्रह की बार–बार रिपोर्टें मिली हैं। हमने पाया कि दलितों के मुकदमों को गंभीरता से नहीं लिया गया और अनुच्छेद–17 के अंतर्गत घिनौने अपराधों को सजा योग्य नहीं माना गया। न्यायपालिका में आरक्षण विरोधी रवैया है। हम इसलिए निष्कर्ष निकालते हैं कि नीचे से ऊपर तक समूची न्याय प्रणाली दलित विरोधी है और मौजूदा स्वरूप में इस प्रणाली में न्याय पाना संभव नहीं है।

हम सिफारिश करते हैं कि उच्चतम न्यायालय समेत सभी स्तरों पर न्यायपालिका में आरक्षण होना चाहिए। भारत में नस्लीय भेदभाव उन्मूलन की संयुक्त राष्ट्र समिति की 2007 की रिपोर्ट में भी यही सिफारिश की गई है।

हम जोरदार सिफारिश करते हैं कि सभी सरकारों को विशेष अदालतों के फैसलों और उन पर अपीलों का सामाजिक–वैधानिक ऑडिट करवाना चाहिए ताकि इस बात की निगरानी की जा सके कि किस प्रकार कानूनों को अमल में लाया जा रहा है।

हमने यह भी पाया कि बड़ी संख्या में गंभीर अपराधों से जुड़े महत्वपूर्ण मुकदमों को मात्र तकनीकी आधार पर निपटा दिया जाता है। ऐसे तकनीकी आधार में यह भी शामिल है कि डीएसपी स्तर से नीचे के अधिकारी द्वारा मामले की छानबीन की गई थी। इसके अलावा बड़ी संख्या में मामले जांच एजेंसियों की जानबूझ कर की गई भूल के कारण निपटा दिए जाते हैं। इसके फलस्वरूप पीड़ित को न्याय नहीं मिलता और उसे सबकुछ सहना पड़ता है।

हम जोरदार सिफारिश करते हैं कि पुलिसबल में दलितों का प्रतिशत कम से कम जनसंख्या में उनके प्रतिशत के अनुरूप होना चाहिए। दरअसल यह प्रतिशत इससे भी ज्यादा होना चाहिए। इसी प्रकार सरकारी वकीलों में दलितों की संख्या भी जनसंख्या में उनके प्रतिशत के अनुरूप होनी चाहिए।

हमने यह भी पाया कि कई मामलों में 1995 में निर्धारित नियमों के अनुसार मुआवजा नहीं दिया जाता है। **हम सिफारिश करते हैं कि सरकार को सभी मामलों में 1995 के नियमों के अनुरूप मुआवजा देना चाहिए और पुनर्वास करना चाहिए।**

अस्पृश्यता पर निर्णायक मंडल के सदस्यों की प्रारंभिक टिप्पणियां और सिफारिशें

तथ्य हालांकि यह है कि अस्पृश्यता का विस्तार हुआ है और इसकी प्रवृत्ति और गंभीर हुई है पर आश्चर्य की बात है कि राज्यों के उच्च न्यायालयों और देश के उच्चतम न्यायालय ने अपने कार्यक्षेत्र के अंतर्गत अपनी उस असाधारण शक्ति के इस्तेमाल की जरूरत नहीं समझी, जिससे इस अभिशाप पर काबू पाया जा सके। पिछले दशक के दौरान इन अपराधों पर शायद ही कोई फैसला आया हो। **न्यायिक अकादमी को अस्पृश्यता की प्रथा और उसके स्वरूप, विशेष कानूनों, उच्चतम न्यायालय के विभिन्न निर्णयों और अनुकूल नीतियों के बारे में न्यायिक अधिकारियों के लिए ओरिएन्टेशन यानी पुनश्चर्या कार्यक्रम आयोजित करना चाहिए ताकि वे इस अभिशाप को समाप्त करने में अपनी न्यायिक शक्तियों का सही उपयोग कर सकें।**

उन जिलों के कलक्टरों और एसपी को सेवा से हटा दिया जाना चाहिए जिन्होंने अस्पृश्यता के मामलों का पता लगाने के बाद भी कोई कार्रवाई नहीं की गयी। जातिवादी प्रथा को बर्दाश्त करने वालों के लिए आइएएस, आइपीएस और अन्य सेवाओं में कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

हम सिफारिश करते हैं कि केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा अस्पृश्यता के विरोध में बड़ा अभियान चलाया जाना चाहिए। इसके अंतर्गत होर्डिंग, प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के इस्तेमाल से यह बताया जाना चाहिए कि अस्पृश्यता की विभिन्न प्रथाएं क्या हैं, और उनकी निंदा की जानी चाहिए। लोगों को इस प्रकार की शिकायतों से निपटने के तौर–तरीके बताए जाने चाहिए तथा यह भी सूचित किया जाना चाहिए कि वे ऐसी परिस्थितियों में किस प्रकार सरकारी और गैर–सरकारी एजेंसियों की मदद ले सकते हैं।

हम सिफारिश करते हैं कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम 1989 और नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955 के अमल पर निगरानी के लिए प्रधानमंत्री के सीधे नियंत्रण में समानता परिषद गठित की जाए।

हम राष्ट्रीय डाटा बैंक स्थापित करने का सुझाव देते हैं जिससे दलित और अन्य लोग सूचना के अधिकार अधिनियम के अंतर्गत सभी सरकारी प्रावधानों के तहत समानता और पहुंच पर निगरानी रख सकें।

हम एम्स, नयी दिल्ली में अस्पृश्यता प्रथा की कड़ी निंदा करते हैं, जैसा कि डॉ. थोरात समिति रिपोर्ट में तथा आईपीटी की सुनवाई से पता चलता है। हमारे लिए इस बात पर विश्वास करने का आधार है कि ऐसी प्रथा शिक्षा संस्थाओं में आम है। **हम सिफारिश करते हैं कि प्रधानमंत्री, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष और सभी शिक्षा संस्थाओं के प्रमुखों को इन संस्थानों में जारी अस्पृश्यता प्रथा के लिए जिम्मेदार ठहराया जाए और उन्हें ऐसी प्रथा के उन्मूलन के लिए कारगर उपाय करने चाहिए।**

हमें पिछले प्रधानमंत्रियों और राज्य सरकारों के बीच पत्राचार की जानकारी दी गई है जिसमें

दलित समुदाय को विभिन्न कार्यक्रमों में उनकी जनसंख्या के अनुरूप राशि नहीं दी जाती है, लिहाजा इसलिए विशेष संघटक योजना लागू करने का आग्रह किया जाता है। इसके अंतर्गत हरेक योजना में दलितों के लिए अलग से विशेष प्रावधान किया जाता है। विशेष संघटक योजना के बारे में उच्च स्तर से दिए गए निर्देशों के बावजूद ऐसी योजना बनाई नहीं गई या अमल में नहीं लाई गई। और तो और राजधानी दिल्ली में भी ऐसा नहीं किया गया। **हमें यह सिफारिश करते हुए कोई संकोच नहीं होता कि विशेष संघटक योजना या तो कानून या फिर कार्यपालिका के आदेश से अनिवार्य बनाई जाए और इसे समूचे देश में तुरंत अमल में लाया जाए।**

आइपीटी के सामने सिर पर मैला ढोने के मामले प्रस्तुत किए गए। यह घृणित प्रथा संवैधानिक और कानूनी प्रावधानों के बावजूद आज भी जारी है। यह अत्यधिक दुख का विषय है। साथ ही यह संकेत देता है कि दलितों के कल्याण के प्रावधानों के अमल के प्रति चिंता का अभाव है। **सिर पर मैला ढोने की प्रथा तत्काल समाप्त की जानी चाहिए। सभी नगरपालिकाओं और राज्य सरकारों में काम कर रहे सिर पर मैला ढोने वाले तथा कूड़ा इकट्ठा करने वालों को वैकल्पिक काम देकर नियमित और स्थाई कर्मचारी बनाया जाना चाहिए क्योंकि अस्पृश्यता के इस रूप के उन्मूलन का एकमात्र तरीका है कि उनके काम की परिस्थितियों को सुधारा जाए और बेहतर बनाया जाए।**

(iv) अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम, 1989 को लागू करने के संबंध में विशिष्ट सिफारिशें

हमें बताये गए मामले–दर–मामले में पुलिस ने पीड़ितों की शिकायत दर्ज नहीं की थी। जब कभी शिकायत दर्ज भी की गई तो उनमें जानबूझकर गलतियां की गईं। किन शब्दों में जातिवादी गाली दी गई यह नहीं बताया गया या हमला करने वालों के नाम और घटना के स्थान का वर्णन नहीं किया गया। हमें ऐसे मामलों का भी पता चला है जिनमें एफआइआर मजिस्ट्रेटों को नहीं भेजी गई। नियम 7 (2) के अंतर्गत निर्धारित समयसीमा में हर बार की तरह आरोपपत्र दायर नहीं किए गए। नियम 7 (1) के अंतर्गत निर्धारित स्तर के अधिकारी से निचले स्तर के अधिकारी द्वारा मामले की छानबीन की गई। ऊपर से कई बार सही छानबीन नहीं की गई। दलितों पर अत्याचार के लिए जिम्मेदार अभियुक्त को जमानत दे दी गई, जिसका सरकारी वकील ने कोई विरोध नहीं किया। इतना ही नहीं सरकारी वकील ने अभियुक्त को जमानत दिलाने में मदद दी, ताकि वह जेल से बाहर आकर पीड़ितों और गवाहों पर दबाव डाल सके। मुकदमे भी इस तरह चलाए गए कि अभियुक्त दोषमुक्त हो जाएं। घिनौने अपराधों के मामले में भी सरकार ने निचली अदालतों के निर्णय के विरोध में अपील नहीं की।

सभी मामलों की समीक्षा उच्चाधिकार प्राप्त समिति को करनी चाहिए। इस समिति में दलित संगठनों के प्रतिनिधि शामिल किए जाने चाहिए। जिन मामलों में छानबीन अधि

अधिकारी की लापरवाही का पता चले उनके खिलाफ अधिनियम की धारा–4 के अंतर्गत मुकदमा चलाया जाना चाहिए। इसके अलावा अनुशासनात्मक कार्रवाई भी की जानी चाहिए। ऐसे अधिकारी को निलंबित किया जाना चाहिए और अंततः बर्खास्त कर दिया जाना चाहिए।

हम सिफारिश करते हैं कि सरकार को सभी थानों को निर्देश जारी करने चाहिए कि दलितों से संबंधित सभी मामले अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम, 1989 के तहत दर्ज किए जाएं।

सभी मामलों में गवाहों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए व्यापक गवाह संरक्षण कार्यक्रम चलाया जाना चाहिए। हम यह भी सिफारिश करते हैं कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के मुकदमों की सुनवाई कर रहे न्यायिक अधिकारियों को पीड़ितों और गवाहों का बयान बंद कमरे में दर्ज करना चाहिए।

नियमों के अनुलग्नकों में हालांकि एफआइआर दर्ज कराने से लेकर मुआवजा देने तक का चरणबद्ध तरीके से विवरण दिया गया है मगर हमने महसूस किया कि मुआवजे का भुगतान अपवाद था। इसलिए हम सिफारिश करते हैं कि प्रत्येक राज्य को उच्चाधिकार प्राप्त समिति द्वारा दलितों के साथ अत्याचार के प्रत्येक मामले को मुआवजा भुगतान के आधार पर समीक्षा करानी चाहिए। इसके बाद ब्याज सहित मुआवजे का भुगतान किया जाना चाहिए। दोषी अधिकारी को दंडित किया जाना चाहिए। नियमों के अंतर्गत चिकित्सा सहायता, कानूनी सहायता, यात्रा भत्ता, दैनिक भत्ता, पेंशन, सरकारी नौकरी और मकान के पुनर्निर्माण जैसी सुविधाओं के बारे में भी इसी प्रकार का रवैया अपनाया जाना चाहिए।

अत्याचार और अस्पृश्यता दोनों तरह के मामलों में सरकार का कर्तव्य बनता है कि प्रभावशाली समुदाय से हथियार वापिस लिए जाएं और कमजोर वर्गों को अपनी रक्षा के लिए लाइसेंस दिए जाएं। यह प्रावधान नियम (3) में है। धारा–16 के अंतर्गत राज्य का कर्तव्य बनता है कि सामूहिक जुर्माना लगाया जाए। धारा–17 के अंतर्गत जिन इलाकों में अत्याचार की घटनाएं हों उन्हें अत्याचार आशंकित क्षेत्र घोषित कर वहां ऐहतियाती उपाय किए जाने जरूरी हैं। धारा–21 और नियम (3) के अंतर्गत हिंसा फैलने की स्थिति में अधिकारियों को प्रभावित व्यक्तियों और नुकसान की सूची बनानी चाहिए ताकि फौरन मुआवजा दिया जा सके। नियम–8 के अंतर्गत एक केन्द्रीय अधिकारी नियुक्त किया जाना चाहिए। नियम–10 के अंतर्गत एक विशेष अधिकारी नियुक्त किया जाना चाहिए। नियम–15 के अंतर्गत प्रत्येक सरकार को राजकीय राजपत्र में आपात योजना अधिसूचित करनी चाहिए जिसमें कृषि भूमि और आवासीय जमीन का आवंटन, मृतक के आश्रित को सरकारी नौकरी, विधवाओं के लिए पेंशन, पीड़ितों के लिए मकान आदि समेत राहत उपायों के पैकेज का वर्णन होना जरूरी है।

एक के बाद एक मामले में हमने महसूस किया कि उपरोक्त प्रावधानों का पूरी तरह उल्लंघन हुआ है। ऐसा लगता है कि संबंधित अधिकारियों को कानून की जानकारी नहीं थी। हम एक ही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सरकार ने दलितों के कष्ट के बदले केवल आश्वासन दिये और उसका कानून लागू करने का कोई इरादा नहीं है। ऐसा लगता है कि सरकार के सर्वोच्च स्तर से यह संदेश दिया गया है कि ऐसे मामलों में कोई कार्रवाई न की जाए। सरकार के सभी स्तरों पर कानून की लगातार खुली अवमानना के लिए कोई और स्पष्टीकरण नहीं दिया जा सकता है।

ऐसी स्थिति की जिम्मेदारी सीधे सरकार के वरिष्ठतम अधिकारी की होनी चाहिए। इसके लिए देश के प्रधानमंत्री और राज्यों के मुख्यमंत्रियों पर भी जिम्मेदारी डाली जानी चाहिए। जब तक वे सार्वजनिक तौर पर प्रतिबद्धता और संकल्प व्यक्त नहीं करेंगें तब तक कोई परिवर्तन आने वाला नहीं है। इसलिए हम उन्हें ही जिम्मेदार ठहराते हैं और आपराधिक न्याय प्रणाली में सुधार की मांग करते हैं ताकि ऐसे निर्मम अपराधों का समाधान निकाला जा सके। **हम सिफारिश करते हैं कि देश का प्रधानमंत्री और राज्यों के मुख्यमंत्री अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम 1989 और नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955 को पूरी तरह से लागू करने के अपने संवैधानिक और कानूनी कर्तव्यों के पालन के लिए तुरंत कदम उठायें।**

हमने पाया कि दलित ईसाइयों और दलित मुसलमानों पर अत्याचार किए गए और उनके साथ छुआछूत बरती गई। पुलिस गलत मामले दर्ज करने के लिए मजहब को आधार बनाती है और प्रभावशाली जाति के हमलावरों के साथ उसकी सांठगांठ होती है। **इसीलिए हम सिफारिश करते हैं कि दलित ईसाइयों और मुसलमानों के पास धर्म के आधार पर समान पहुंच होनी चाहिए और उन्हें अनुसूचित जाति का दर्जा देकर आरक्षण के सहारे अधिकार दिये जाने चाहिए। भारत रिपोर्ट, 2007 के बारे में यूएनसीईआरडी की समापन टिप्पणी में भी यही सिफारिश की गई है।**

अस्पृश्यता के विरुद्ध राष्ट्रीय अभियान

इंडियन पीपल्स ट्राइब्यूनल (भारतीय जन न्यायाधिकरण) के निर्णायक मंडल के सदस्यों ने अस्पृश्यता के विरुद्ध राष्ट्रीय अभियान की मांग की है जिसका नेतृत्व प्रधानमंत्री करें। इसकी घोषणा संविधान निर्माता बाबा साहेब आम्बेडकर की जयंती 14 अप्रैल को की जानी चाहिए। हर प्रकार की अस्पृश्यता पर काबू पाया जाना चाहिए परंतु इस अभियान में अस्पृश्यता के अंत, जातिगत अलगाव और सार्वजनिक स्थानों पर भेदभाव के अंत पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए। इसका प्रारंभ स्कूलों से करना चाहिए, जिन्हें भेदभावहीन क्षेत्र घोषित किया जाए। बच्चे इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इस क्षेत्र में स्कूलों में बैठने के लिए कोई अलग व्यवस्था नहीं होगी, दोपहर के भोजन के समय बैठने की अलग परंपरा नहीं होगी। दलित विद्यार्थी और दलित शिक्षकों के साथ कोई भेदभाव नहीं होगा और स्कूल में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों का

अधिक दाखिला सुनिश्चित किया जाएगा तथा बीच में पढ़ाई छोड़ कर जाने की दर में कमी लाई जाएगी। इसी तरह पीने के पानी के सार्वजनिक स्थानों जैसे हैंडपम्प पर भेदभाव भी रोकना होगा। मतदान केन्द्रों तथा पंचायत कार्यालयों में भी भेदभाव समाप्त करना होगा।

इन प्रथाओं को समाप्त करने की सीधी जिम्मेदारी जिलों में जिला मजिस्ट्रेट और एसपी की और राज्यों में मुख्य सचिव की होनी चाहिए। अगर वे अपने कर्तव्य के पालन में लापरवाही करते हैं तो इसे दंडनीय अपराध माना जाना चाहिए और ऐसे अधिकारियों की गोपनीय रिपोर्ट में विपरीत प्रविष्टि की जानी चाहिए। संबंधित नियमों में समुचित संशोधन कर अनुशासनात्मक कार्रवाई की जानी चाहिए। ऐसे मामलों में जांच जल्दी पूरी की जानी चाहिए और समुचित सजा दी जानी चाहिए।

इस अभियान में सिर पर मैला ढोने की घृणित प्रथा समाप्त करने का भी आह्वान है। जिलों में जिला मजिस्ट्रेट और राज्यों में मुख्य सचिव को एक बार पुनः इस अधिनियम को तेजी और कारगर तरीके से अमल में लाने के लिए जिम्मेदार बनाया गया है।

हम हैं निर्णायक मंडल के सदस्य

- **जस्टिस के. रामास्वामी**
  भारत के उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश, एनएचआरसी के पूर्व सदस्य
- **जस्टिस एच. सुरेश**
  मुम्बई उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश
- **डा. एस. बालारामन**
  पूर्व अध्यक्ष, केरल राज्य आयोग
- **डॉ. ए. रमैया**
  प्रोफेसर, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज
- **स्वामी अग्निवेश**
  संयोजक, बंधुआ मुक्ति मोर्चा
- **डॉ. माजा दारूवाला**
  निदेशक, कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव
- **श्री के.बी. सक्सेना**
  पूर्व वरिष्ठ आइएएस अधिकारी
- **श्री हर्ष मंदर**
  पूर्व आइएएस तथा संस्थापक निदेशक, अमन बिरादरी
- **प्रो. नन्दू राम**
  प्रोफेसर समाजशास्त्र, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय
- **श्री संदीप पांडे**
  निदेशक, आशा

***

ह्यूमन राइट्स लॉ नेटवर्क

एचआरएलएन के निम्न कार्यालयों से आप हमारे संगठन के बारे में अधिक जानकारी ले सकते हैं। इन कार्यालयों से हमारे तमाम प्रकाशन और कॉम्बैट लॉ पत्रिका (हिन्दी–अंग्रेजी) भी प्राप्त कर सकते हैं।

पंजाब / चंडीगढ़
2439, सेक्टर 37–सी,
चंडीगढ–160036,
फोन:0172–23094478, मो : 9815072279

हरियाणा
राजकुमार, ग्राम–नारायणा, तह. समालका,
पानीपत–132150, मो. 09315551130

हिमाचल प्रदेश
(i) उत्तम भवन, विकास नगर
शिमला–171002, हिमाचल प्रदेश
फोन : 0177–2621108 मो : 09418141894

(ii) कमलेश जनरल स्टोर, पहली मंजिल,
वीपीओ सिद्धबरी, तहसील–धर्मशाला
जिला–कांगड़ा, मो.9418018983

सिक्किम
दूसरी मंजिल, सत्ते बाजार,
नहश सैलून के ऊपर, अपर सिचे,
डिस्ट्रिक्ट कोर्ट के पास, गंतोक–737101
फोन : 03592–203557, मो. : 09434382200

अंडमान–निकोबार द्वीपसमूह
एफ–31 अबरदीन बाजार,
बाबू लेन, पोर्टब्लेयर–744101
फोन: 03192–230756, मो. : 09434281880

राजस्थान
फ्लैट नं. 202, सी–ए, सुफल अपार्टमेंट,
भाई जयसिंह हाईवे, बनी पार्क, जयपुर–302006
फोन : 0141–4030369

उत्तर प्रदेश
(i) 105, अशोक नगर,
इलाहाबाद–211001
फोन: 0532–2623893, मोबाइल: 09415985414

(ii) जे–19 / 66–67, बड़ी बाजार,
थाना–जैतपुरा, वाराणसी–221002
फोन: 09235667692, 09452037615

उत्तराखंड
ईश्वरी भवन वेस्ट पोखरखाली,
रानीधारा रोड, अल्मोड़ा–263601
मोबाइल: 09412092159

तमिलनाडु
319 / 155, दूसरी मंजिल,
लिंघी चेट्टी स्ट्रीट,
चेन्नई – 600001, तमिलनाडु
फोन : 044–25243246मो. 09841091674

मध्य प्रदेश
10–बी, पहली मंजिल, अमन काम्प्लेक्स,
गोविन्द गार्डन, (अप्सरा टाकिज और पंजाब
नैशनल बैंक के पास), नोबल इलेक्ट्रॉनिक के ऊपर,
गोविन्दपुरा, भोपाल–462023
फोन: 0755–4700012, मोबाइल: 9826569013

आंध्र प्रदेश
म. नं. 1–9–312 / 5 / 2,
श्री प्ले स्कूल के पीछे, अच्युतरेड्डी मार्ग,
विद्यानगर, हैदराबाद–500044
फोन : 40–27661883, मोबाइल: 9849488022

पश्चिम बंगाल
सोहिनी अपार्टमेंट्स
फ्लैट 1–ए, 3, पार्वती चक्रवर्ती लेन,
कालीघाट, कोलकाता–700026
फोन : 33–30967154, मोबाइल: 9830172462

गुजरात
जनहित
बी–5, सुशील नगर सोसाइटी, आक्ट्रोई नाका के पास, गांधी
लेबर इंस्टीट्यूट के सामने,
क्राइव–इन–रोड, अहमदाबाद–380052
फोन : 079–7475815

उड़ीसा
फ्लैट 403–बी ब्लॉक, रश्मि विहार अपार्टमेंट्स,
सुबेश्वरी कॉलोनी, कटक रोड,
भुवनेश्वर–751006
फोन : 0674–2314260, मो.: 9861023282

महाराष्ट्र
(I) इंडिया सेंटर फॉर ह्यूमन राइट्स एंड लॉ,
पहली मंजिल, मोतीवाला मैंशन,
56 डॉन्टन स्ट्रीट (डामर गली),
मस्जिद (वेस्ट), मुंबई–400009
फोन : 022–23439851, 234336692
(II) द्वारा वाईएमसीए
140, महात्मा गांधी रोड,
नागपुर–440001
फोन : 0712–2524834, 2524789
(II) 147, अशोका पैविलियन,
31, डॉ. आम्बेडकर रोड,
कैम्प, पूणे – 01
फोन : 020–26050746

मणिपुर
केवीआइसी बिल्डिंग, दूसरी मंजिल,
वीडियोकॉन हाउस के सामने
पनोआ बाजार, इम्फल–795001
फोन: 0385–2442165

जम्मू–कश्मीर
बी.डी. हाउस, पहली मंजिल,
हुर्रियत ऑफिस के पास,
कूर्सू राज बाग, श्रीनगर–190001, कश्मीर
मो. : 09906667957

केरल
(I) टीसी–25/2952, ओल्ड जीपीओ भवन,
अम्बुजा विलासोम रोड,
तिरुवनन्तपुरम–695001
फोन: 0471–5581466,2450652
(II) 41/3881, एम्पल्स बिल्डिंग
मूल्य स्ट्रीट, आफिस प्रोविडेंस रोड,
कोच्चि – 682018
फोन: 0484–2390580

कर्नाटक
20, पार्क रोड,
टास्कर टाउन, शिवाजी नगर,
बेंगलूर–560051
फोन: 080–55524757

अरुणाचल प्रदेश
क्वार्टर 7, टाईप–4,
राजनिवास क्षेत्र, इटानगर,
अरुणाचल प्रदेश
फोन: 0360–2292561, मो.09436050907

बिहार
एचआरएलएन
बी–25, मजिस्ट्रेट कालोनी
प्लट नं. 4
पटना–800025
मो. 09835441778

झारखंड
हिरन बाला निवास, ईस्ट जेल रोड,
नीयर प्लाजा चौक, रांची–834001
मो. 09431103047

गोवा
रोसले सोलेमन
149डी, गीना मैना कर्टोरियम,
सलीत, गोवा–403709
मो. 09850832990

असम
मकान नं.26, आइकोन एकेडमी के सामने,
राजघर रोड, गुवाहाटी – 781203
मो. 09864034505

...और जारी है यात्रा जन न्यायाधिकरण की

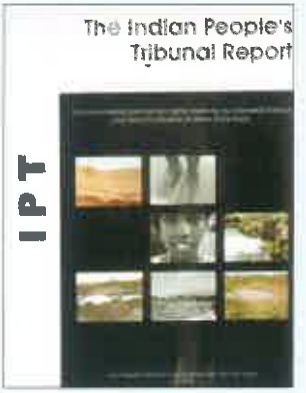

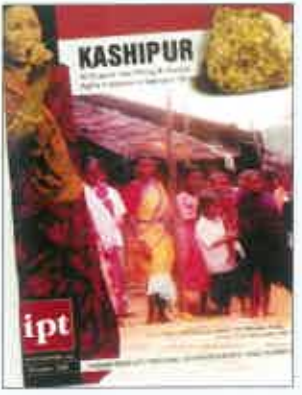

मानवाधिकारों की सरासर अनदेखी और अवहेलना के चलते सही सोच वाले संगठन मिलजुलकर जन न्यायाधिकरणों के माध्यम से चला रहे हैं मानवाधिकारों का अभियान!

इस पुस्तक में दिल्ली में 2007 में जबर्दस्त गर्मी के दो दिनों के दौरान हुई आईपीटी अर्थात् भारतीय जन न्यायाधिकरण की कार्रवाई को रिकॉर्ड करने का प्रयास किया गया है। साथ ही इस कार्रवाई को उस दलित मुद्दे के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने की भी कोशिश की गई है जो सदियों से हमारे समाज को झिंझोड़ रहा है। न्यायाधिकरण में साधनहीन साधारण लोगों ने अपने साथ किए जा रहे अत्याचार का प्रभावपूर्ण वृतांत सुनाकर महत्वपूर्ण काम किया है। न्यायाधिकरण के सामने अपनी बात रखने में भाषा के अवरोध के कारण भले ही उनकी भावनाएं पूरी तरह स्पष्ट न हुई हों मगर उनकी पीड़ा को महसूस किया जा सकता है। दलितों ने जिस स्तर पर अत्याचार और कष्ट सहे हैं उनका वर्णन करने के लिए तो अनेक जनसुनवाइयों की जरूरत है। निर्णायक मंडल ने अपने वक्तव्य में उन तमाम गंभीर मुद्दों पर ध्यान देने का आह्वान किया है जो दलितों के लिए कष्ट,का कारण बने हुये हैं।

ipt
www.iptindia.org

576, मस्जिद रोड, जंगपुरा
नयी दिल्ली–110014 भारत
फोन : +91–11–24376922, 24374501, 65908842
Email: publications@hrln.org

ISBN 81-89479-42-1
9788189479428